UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182492

UNIVERSAL
LIBRARY

८४३

सामाजिक उपन्यास

द त्ता

शरत्चंद्र

अनुवादक

बलभद्र ठाकुर

संशोधक

सत्यनारायण व्यास

प्रकाशक

किताब महल • इलाहाबाद

प्रथम संस्करण, १९४७

CHECKED 1950
By SL. & L.

Checked 1969

Checked 1965

मुद्रक—बी० एल० वार्ष्णेय, वार्ष्णेय प्रेस, इलाहाबाद

दत्ता

१

प्राचीन हुगली ब्रांच स्कूल के हेडमास्टर साहब जिन तीन छात्रों को विद्यालय के 'रत्न' कहकर निर्देश करते, वे तीनों तीन विभिन्न ग्रामों से प्रति दिन एक-एक कोस पैदल चलकर आया करते। तीनों में क्या ही प्रेम था! इनका ऐसा नियम बन गया था कि ये तीनों मित्र पथ पर अवस्थित सूखे वट-वृक्ष के नीचे प्रतिदिन एकत्र होकर ही विद्यालय में प्रवेश करते! तीनों के घर हुगली के पश्चिम में ही पड़ते थे। जगदीश आया करता सरस्वती का पुल पार होकर दिघड़ा गाँव से, और वनमाली एवं रासविहारी आया करते आस-पास के दो गाँवों—कृष्णपुर और राधापुर से। जगदीश जिस प्रकार उन सबों में अधिक प्रतिभावान था, उसकी आर्थिक स्थिति थी उसी प्रकार सबसे बुरी! पिता एक ब्राह्मण-पंडित थे। जजमानी कराके, ब्याह-शादी कराके किसी तरह गुजर-बसर करते। वनमाली था घरका सम्पन्न। उसके पिता को लोग कृष्णपुर का जमीनदार कहते थे। रासबिहारी की स्थिति भी अच्छी ही थी। ज़मीन-जायदाद, चास-वास, पोखर-तालाव, बाग-बगीचा—गवई-गाँव में जिनके होने से गुजर-बसर अच्छी तरह चल जाया करता है, वे सभी थे। इन समस्त साधनों के बावजूद ये लड़के शहर में कोई मकान भाड़ा न करके—आँधी-पानी, जाड़ा-गर्मी की परवाह किये बगैर प्रतिदिन इतनी दूर पैदल चलकर जो आया-जाया करते उसका कारण था। उस ज़माने के कोई भी माता-पिता अपने लाड़लों की इस

तकलीफ़ को तकलीफ़ में शुमार ही नहीं करते थे; बल्कि उनका ख्याल था कि बिना कुछ कष्ट उठाये माँ-सरस्वती की कृपा हो नहीं सकती! सो कारण जो कुछ भी हो, उन तीनों ने इसी प्रकार इन्ट्रेन्स पास किया था। उस वटवृक्ष के नीचे बैठ बड़ को साक्षी रखकर तीनों मित्र प्रतिदिन यही प्रतिज्ञा करते—'जीवन में वे कभी एक दूसरे से अलग न होंगे, कभी विवाह न करेंगे, और वकील बनकर तीनों जने एक ही मकान में रहेंगे; पैसा कमा-कमाकर एक ही सन्दूक में जमा करेंगे, और उसके द्वारा देशोद्धार का काम करेंगे।'

यह तो हुआ बचपन का स्वप्न। किन्तु जो स्वप्न नहीं, सत्य है, वह अन्त में जाकर किस रूप में उपस्थित हुआ, वही संक्षेप में बता रहा हूँ। मित्रता के प्रथम चरण में शिथिलता आई बी० ए० क्लास में। उन दिनों कलकत्ते में केशव सेन का प्रचंड प्रताप था। वक्तृता का जबर्दस्त ज़ोर था। उस ज़ोर के सामने गँवई-गाँव के ये तीन बच्चे अचानक सम्हल न सके—बह गये। बह तो गये, किन्तु वनमाली और रासविहारी ने जिस प्रकार खुले आम दीक्षा लेकर ब्राह्म-समाज में प्रवेश किया, जगदीश वैसा कर न सका—इतस्ततः करने लगा। वह सब की अपेक्षा मेधावी तो था, किन्तु था अत्यन्त दुर्बल-चित्त। तिस पर उसके पिता उस वक्त भी जीवित थे, पर वे दोनों इस बला से फ़ुर्सत पा चुके थे। कुछ समय पहले पिता के स्वर्गीय हो जाने से वनमाली कृष्णपुर का ज़मीनदार बन गया और रासविहारी अपनी राधापुर की समस्त सम्पत्ति का एकच्छत्र सम्राट् था। अतः कुछ समय बाद ही दोनों मित्र ब्राह्म-परिवार में ब्याह करके विदुषी पत्नी के साथ अपने-अपने घर वापस आये। किन्तु दरिद्र जगदीश को ऐसी सुविधा मिली नहीं। उसे यथासमय कानून की परीक्षा पासकर एक गृहस्थ ब्राह्मण की ग्यारह साल की कन्या से ब्याह करके अर्थोपार्जन के लिये इलाहाबाद चले जाना पड़ा। परन्तु जो रह गये, उन्हें जो काम कलकत्ते में अत्यन्त सहज प्रतीत हो रहा था, गाँव वापस

आनेपर वही अत्यन्त कठिन मालूम पड़ने लगा। बहूजी ससुरालमें आकर घूँघट काढ़ती नहीं, जूता-मोज़ा पहनकर रास्तेपर निकलतीं—तमाशा देखने के लिये पाँच गाँव के लोग इकट्ठे होने लगे और गाँवभर में इस प्रकार की कुत्सित काना-फूसी शुरू हो गई कि अत्यन्त निरूपाय होने परही पत्नी के साथ कोई वहाँ बास कर सकता था। वनमाली को उपाय था। इसलिये गाँव छोड़कर कलकत्ते में उसने बास किया और एकमात्र ज़मीनदारी पर निर्भर न रहकर व्यापार शुरू कर दिया। किन्तु रासविहारी की आय थी अल्प। इसीलिये एक अपनी पीठ पर और अपनी विदुषी पत्नी की पीठ पर और एक अपमान का बोझ लादकर किसी तरह अपने गाँव के घर में ही *'एक-घरा' बनकर टिका रहा। अतः इन तीन मित्रों में से एक के इलाहाबाद में, एक के राधापुर में और एक के कलकत्ते में बास करने के कारण आजीवन अविवाहित रहने, एक घर में निवास करने और सन्दूक में पैसा जमा करके देश का उद्धार करने की प्रतिज्ञा अन्तत: स्थगित रही; और जो बूढ़ा वटवृक्ष साक्षी था वह किसी के विरुद्ध किसी प्रकार का अभियोग उपस्थित न करके शायद मन-ही-मन हँसने लगा। इसी प्रकार बहुत दिन बीत गये। इस बीच तीनों मित्रों में भेंट-मुलाकात तो जब-तब होती, किन्तु बचपन का प्रेमभाव सर्वथा तिरोहित नहीं हुआ। जगदीश के पुत्र उत्पन्न हुआ। उसने इलाहाबाद से वनमाली को पत्र द्वारा यह शुभ संवाद सूचित करते हुए लिखा—'तुम्हें यदि कन्या होगी, तो उसे पुत्र-बधू बनाऊँगा। इस प्रकार बचपन के पाप का आंशिक प्रायश्चित्त करूँगा। तुम्हारी ही दया से वकील बनकर आज सुखी जीवन बिता रहा हूँ, यह बात मैं कभी नहीं भूलता।'

वनमालीबाबू ने इसके जवाब में लिखा—'अच्छा। तुम्हारे पुत्र के दीर्घायु होने की प्रार्थना करता हूँ। किंतु, मेरे कन्या होने की कोई आशा ही नहीं। फिर भी यदि मंगलमय के अशीर्वाद से कभी संतान का मुख देख पाऊँगा, तो तुम्हें दूँगा।' चिट्ठी लिखकर वनमालीबाबू मन-ही-मन

*समाज-बहिष्कृत।

हँसे। क्योंकि दो साल पहले उनके दूसरे मित्र रासविहारी के जब पुत्र हुआ, उसने भी ठीक यही प्रार्थना की थी। व्यापार के बदौलत इस समय बड़े धनाढ्यों में उनकी गणना होती है। सभी उनकी कन्या अपने घर लाना चाहता है।

२

दो-चार महीने नहीं, बल्कि २५ साल बाद की कहानी सुना रहा हूँ। वनमाली ा. पुराने प्रतिष्ठित हो चुके हैं। वर्षों से रोगी रहने के बाद इस बार शय्या पकड़ ली है, उन्हें इसका आभास मिल चुका था कि अब शायद पुनः उठ खड़े होने की कोई आशा नहीं। वे सदा से ईश्वर-भक्त एवं धर्म-निष्ठ व्यक्ति थे। मृत्यु का भय उन्हें था नहीं। सिर्फ एक-मात्र सन्तान विजया का विवाह अपने हाथों सम्पन्न करने का अवकाश न मिल सका इसके लिये कुछ दुखी अवश्य थे। उस दिन दोपहर के बाद अचानक विजया का हाथ अपने हाथ में लेकर बोले—'बेटी, मेरे पुत्र नहीं इसका मुझे कोई दुख नहीं। तू मेरे लिये सब कुछ है। अब भी तेरा अठारहवाँ साल पूरा तो नहीं हुआ, लेकिन तेरे कोमल कंधों पर अपने इस विशाल कारोवार का भार छोड़ जाने में मुझे रत्ती भर भी भय नहीं। तेरे माँ नहीं, भाई नहीं, एक चाचा-ताऊ तक नहीं। फिर भी मुझे विश्वास है, मेरा सब कुछ सुरक्षित रहेगा। सिर्फ एक अनुरोध किये जा रहा हूँ बेटी, जगदीश का आचरण जैसा भी हो, या वह स्वयं जैसा भी हो, वह मेरा बचपनका साथी है। देन-पावने में उसके घर-द्वार पर कब्जा मत करना। उसके एक पुत्र है—उसे आँखों से देखा तो नहीं, पर सुना है, वह बड़ा अच्छा लड़का है। बाप के कर्ज में उसे निराश्रय न करना बेटी, यही मेरा अन्तिम अनुरोध है।'

विजया ने रुँधे स्वर में कहा था—'पिताजी, तुम्हारी आज्ञा का मैं कभी अनादर नहीं कर सकती। जगदीशबाबू जितने दिन बचे रहेंगे,

उनकी मैं तुम्हारी ही तरह इज़्ज़त करूँगी ; पर उनकी अनुपस्थिति में सारी जायदाद मुफ़्त में उनके पु के लिये छोड़ क्यों दूँगी ? उन्हें तुमने भी कभी अपनी आँखों से नहीं देखा, मैंने भी नहीं देखा। और यदि सचमुच वे लिखे-पढ़े हैं तो अनायास ही पिता का ऋण चुका सकते हैं !'

वनमालीबाबू ने कन्या के मुँहकी तरफ देखकर कहा था—'ऋण तो कम नहीं है बेटी। अभी बच्चा है, अगर वह चुका न सके ?

कन्या ने जवाब दिया—'जो न चुका सके वह कुसन्तान है। पिता-जी, उसके साथ रियायत करना ठीक नहीं।'

वनमालीबाबू अपनी इस सुशिक्षिता तेजस्विनी कन्या को पहचानते थे। इसीलिये अधिक वाद-विवाद करना ठीक न समझा। सिर्फ एक साँस छोड़कर बोले—'सारे कर्मों का फल ईश्वर के अधीन छोड़कर अपना कर्त्तव्य करती जाओ बेटी ! किसी विशेष अनुरोध के द्वारा मैं तुम्हें बाँधकर नहीं जाना चाहता।'—कहकर क्षणभर मौन रहने के बाद पुनः एक निश्वास छोड़कर बोले—'तुझे पता है बेटी विजया, जब यह जगदीश एक मनुष्यकी तरह मनुष्य था, तब तेरे पैदा होने से पहले ही अपने इसी पुत्र के लिये तेरी मँगनी की थी। बिटिया, मैंने भी वचन दे दिया था।'—कहकर वे मानो उत्सुक दृष्टि से ताकने लगे।

अपनी इस कन्या के शिशु काल से ही मातृ-हीन होने के कारण पिता माता दोनों का कर्त्तव्य उन्होंने स्वयं निबाहा था। इसीलिये विजया माँ के समक्ष कही जाने वाली बात को पिता के आगे कहने में कभी संकोच न करती। बोली—'पिताजी, तुमने उन्हें सिर्फ मुँह से वचन दिया था, अपने हृदय से नहीं।'

—'क्यों बेटी ?'

—'हृदय से वचन देने पर क्या तुम एकबार उन्हें अपनी आँखों से देखने की इच्छा नहीं करते ?'

वनमालीबाबू बोले—'रासविहारी के मुँह से जब सुना था कि लड़का अपनी माँ की ही तरह कमजोर है—यहाँ तक कि डाक्टरों को उसे अधिक दिन जीने की कोई आशा नहीं, तब उसे नज़दीक में पाकर भी एकबार बुलाकर देखने की इच्छा न हुई। उन दिनों कलकत्ते में ही किसी बासे में रहकर वह बी० ए० में पढ़ रहा था। उसके बाद तरह-तरह की मुसीबतों में फँसे रहने के कारण वह बात याद ही नहीं रही। पर अब देख रहा हूँ, मेरे लिये वही उपेक्षा अब बड़ी हानिकारक बन गयी है बेटी। फिर भी तुझसे सच बता रहा हूँ विजया, उस समय जगदीश को तेरे सम्बन्ध में अपने हृदय से ही वचन दिया था।' कुछ क्षण रुककर बोले—'आज जगदीश को सब जानता है—एक निखट्टू जुआरी, गोबरगणेश, शराबी! किन्तु यह जगदीश ही एक दिन हममें सबसे अच्छा लड़का था। निरा बुद्धि को लेकर नहीं कह रहा हूँ बेटी, सो तो बहुतों को है, पर इस प्रकार जी-जान से प्यार करते मैंने किसी को देखा नहीं। यह प्यार ही उसके लिये काल बन गया है। उसके अनेक दोष मैं जानता हूँ, पर जब याद आता है, पत्नी की मृत्यु ने शोक में उसे पागल बना दिया है, तब तो तेरी माँ की बात याद करके मैं तो बिटिया उस पर श्रद्धा किये बगैर नहीं रह सकता? उसकी धर्मपत्नी थीं सती-साध्वी। वे मृत्यु-काल में नरेन को नज़दीक बुलाकर सिर्फ बोली थीं—'बेटा केवल यही आशीर्वाद दिये जा रही हूँ कि ईश्वर में तुम्हारा अटल विश्वास रहे।' सुना है कि माँ का यह अन्तिम आशीर्वाद विफल नहीं रहा। नरेन इतनी छोटी-सी उम्र में ही ईश्वर से प्रेम करना अपनी माँ की तरह ही सीख गया है। जिसने यह विद्या सीख ली, संसार में उसके लिये और बाक़ी ही क्या रह गया बेटी?'

विजया ने पूछा—'संसार में क्या इतना सीख लेना ही सबसे बड़ी कामयाबी है पिताजी?'

मरणोन्मुख वृद्ध के सूखे नेत्र गीले हो उठे। सहसा दोनों हाथ फैलाकर पुत्री को छाती से लगाते हुए बोले—'यह कामयाबी ही सबसे बड़ी

कामयाबी है बेटी ! संसार के भीतर, संसार से बाहर—निखिल ब्रह्मांड में इतनी बड़ी सफलता और है ही नहीं विजया। तुम स्वयं यह विद्या कभी सीख सको या न सको बेटी, पर जिसने यह सीख ली है, उसके चरणों में सिर रख सको—मैं भी इस मृत्युकाल में तुम्हें यही आशीर्वाद दिये जा रहा हूँ।'

पिता के वक्ष पर औंधी होकर पड़ी हुई विजया को उस दिन ऐसा प्रतीत हुआ कि मानों कोई अत्यन्त मधुर, अत्यन्त उज्ज्वल दृष्टि के द्वारा उसके पिता के हृदय के भीतर से उसके अपने हृदय के गंभीर अन्तस्तल को निरख रहा है। इस अभूतपूर्व परम-आश्चर्यमयी अनुभूति ने उस दिन क्षण-भर के लिये उसे विभोर बना दिया। वनमालीबाबू ने कहा—'लड़के का नाम है नरेन्द्र। उसके बाप के मुँह से सुना है, वह डाक्टर बन गया है—लेकिन डाक्टरी करता नहीं। इस समय यदि वह देश में होता, इसी वक्त बुलवाकर एकबार उसे अपनी आँखों से देख लेता।'

विजया ने पूछा—'इस समय वे हैं कहाँ ?'

वनमालीबाबू बोले—'अपने मामा के यहाँ—बर्मा में ! जगदीश की तो इस वक्त सारी बातें स्पष्ट करके बताने की हालत है नहीं, फिर भी उसके मुँह से अचानक निकली दो-एक बातों से प्रतीत होता है कि उस लड़के ने अपनी माँ के समस्त सद्गुण पाये हैं। ईश्वर करे, जिस जगह जिस रूप में भी रहे, जीवित रहे।'

शाम हो गई थी। नौकर लालटेन जलाकर दे गया, विलासबाबू के आगमन की सूचना भी देता गया। वनमालीबाबू बोले—'तो फिर तुम अब नीचे जाओ बेटी, मैं ज़रा आराम करूँ।'

विजया पिता के सिरहाने तकिया वगैरह रख, शाल से उनके पैरों को अच्छी तरह ढककर, रोशनी को आँख के सामने से आड़ में करके नीचे चली गई, और पिता के जीर्ण वक्ष को भेदनकर सिर्फ एक दीर्घ

निश्वास निकल पड़ा! उस दिन विलास के आगमन की खबर से कन्या के मुख पर जो लाली दौड़ती दीख पड़ी, उससे वृद्ध को व्यथा ही पहुँची थी।

विलासबिहारी रासबिहारी का पुत्र है। वह इस कलकत्ते में ही रहकर बहुत दिनों से एफ० ए० और उसके बाद बी० ए० में पढ़ रहा है। वनमालीबाबू समाज त्यागने के बाद से शायद ही कभी देश जाते। यद्यपि व्यापार की उन्नति के साथ-साथ देश की जमीनदारी भी उन्होंने काफ़ी बढ़ायी थी, किन्तु उन सब चीजों की देख-भाल करने का भार था उनके बाल-सखा रासबिहारी पर ही। उसी सूत्र से इस घर में विलास का आना-जाना आरंभ होकर अब कुछ दिनों से जिस रूप को धारण कर लिया था वह आगे जाकर प्रगट होगा।

३

दो महीने हुए वनमालीबाबू का देहान्त हो गया है। अपने कलकत्ते के इतने बड़े मकान में विजया अब अकेली है। उसके गाँव की ज़मीनदारी की देख-भाल रासबिहारीबाबू ही करने लगे और उसी जरिये से उसके एक प्रकार के अभिभावक बन बैठे। किन्तु स्वयं तो गाँव में रहते थे, इसीलिये उनके पुत्र विलासबिहारी पर विजया की देख-रेख का भार पड़ा। वास्तविक अभिभावक तो उसका वही बन गया।

उन दिनों प्रत्येक ब्राह्म-परिवार में 'सत्य', 'सुनीति और 'सुरुचि' इन शब्दों का बड़ा ज़ोर था। क्योंकि विदेश से पढ़कर आये हुए हिंदू युवक जब माता-पिता के विरुद्ध, देवी-देवताओं के विरुद्ध, समाज के विरुद्ध विद्रोह करके इस समाज के रजिस्टर में अपना नाम लिखा बैठते, उस वक्त ये शब्द ही सहारा देकर उनके कच्चे मस्तिष्क को गर्दन से ऊपर सीधे रख सकते थे—झुककर टूटने नहीं देते। उनका कहना था—जो सत्य के रूप में समझूँगा वही करूँगा। चाहे माँ के आँसू हों या पिता की लम्बी आहें, इनकी परवाह करने की जरूरत नहीं। इन कमज़ोरियों पर हर प्रकार

से विजय प्राप्त करूँगा, अन्यथा प्रकाश की प्राप्ति होगी ही नहीं। —विजया को भी ऐसी शिक्षा मिली थी।

आज गाँवसे विलासबाबू बूढ़े शराबी जगदीश की मृत्यु की खबर लेकर आये थे। विजया के पिता का यद्यपि वह मित्र था, किन्तु विलास-बाबू जब सुनाने लगे कि किस प्रकार जगदीश शराब पीकर नशे में छत से गिरकर मर गया, उस वक्त ब्राह्म-धर्म की 'सुनीति' का स्मरण करके विजया ने इस अभागे पितृ-सखा के विरुद्ध घृणा से अपने होंठ विकृत करने में जरा भी हिचक महसूस न की। विलास बोलने लगा—'जगदीश मुखर्जी मेरे पिताजी का भी लँगोटिया यार था, पर वे उसका मुँह तक भी न देखते। रुपया कर्ज करने दो बार आया था, पिताजी ने नौकर के द्वारा उसे फाटक से निकाल बाहर करवा दिया। वे हमेशा कहते—इन दुर्नीति-परायण व्यक्तियों के साथ रियायत करना मंगलमय भगवान के श्रीचरणों में महान् अपराध है।'

विजया शह देती हुई बोली—'बिल्कुल सही बात!'

विलास उत्साहित होकर वक्तृता की भंगी से बोलने लगा—'चाहे मित्र ही क्यों न हो, कमज़ोरी में आकर किसी भी तरह ब्राह्म-समाज के चरम आदर्श को धक्का पहुँचाना उचित नहीं। जगदीश की सारी संपत्ति अब न्यायतः हम लोगों की है। उसका लड़का पिता का ऋण चुका दे तो अच्छा ही है; न चुकाये, तो फिर कानूनन इसी वक्त सारी संपत्ति पर हमें अधिकार कर लेना चाहिये। वास्तव में छोड़ने का तो हमारा कोई अधिकार ही नहीं है। क्योंकि इस पैसे को हम अनेक सत्कार्य में लगा सकते हैं। समाज के किसी लड़के को विलायत तक भेज सकते हैं; धर्म-प्रचार में व्यय कर सकते हैं; और भी कितने काम हो सकते हैं। फिर क्यों न ऐसा किया जाय, कहिये? इसके अलावा, जगदीशबाबू अथवा उसका लड़का हमारे समाज का आदमी नहीं, जिससे उस पर किसी प्रकार की दया दिखाई जाय। आपकी सम्मति पाते ही पिताजी

सब ठीक कर लेंगे, इसीलिये आज आपके पास उन्होंने मुझे भेजा है।'

विजया मृत पिता की अन्तिम बातें स्मरण करके सोचने लगी, सहसा जवाब न दे सकी। उसको इतस्ततः करते देख बिलास बड़े ज़ोर से दृढ़ स्वर में बोल उठा—'नहीं, नहीं, मैं आपको किसी भी तरह इतस्ततः करने नहीं दूँगा। दुविधा, दुर्बलता—पाप है! सिर्फ पाप ही क्यों, महापाप है! मैंने मन-ही-मन संकल्प कर लिया है, उसके मकान में आप के नाम पर—जो कहीं नहीं है, कहीं नहीं हुआ—मैं वही करूँगा। गँवई-गाँव में ब्राह्म-मन्दिर की प्रतिष्ठा करके गाँव के अभागे मूर्खों को धर्मशिक्षा दूँगा। आप एकबार सोचकर देखें, इन मूर्खों की मूर्खता की ज्वाला से संतप्त होकर ही तो आपके स्वर्गीय पितृदेव अपने देश छोड़ने को बाध्य हुए थे! उनकी कन्या होकर क्या आपके लिये यह उचित नहीं है कि नोबुल (उत्तम) प्रतिशोध के द्वारा उन्हीं मूर्खों का उपकार किया जाय! कहिये, आप ही इसका जवाब दीजिये!'

विजया विचलित हो उठी। विलास दर्पीले स्वर में बोल पड़ा—'समस्त देश में कितना बड़ा नाम होगा, कितनी बड़ी धूम मच जायगी, ज़रा सोचकर देखिये तो! हिन्दुओं को स्वीकार करना ही पड़ेगा—इसका भार मुझ पर रहा—कि ब्राह्म-समाज में मनुष्य हैं! हृदय है—स्वार्थत्याग है! जिन्हें उन सबोंने अपने देशसे निर्वासित कर दिया था, उसी महात्मा की महीयसी कन्या उन्हीं के मंगल-निमित्त यह विपुल स्वार्थ-त्याग कर रही हैं! समस्त भारतवर्ष पर एक क्या ही विशाल नैतिक प्रभाव पड़ेगा, सोच लीजिये!'—कहकर विलासबिहारी ने सामने के टेबुल पर एक प्रचण्ड कराघात किया। सुनते-सुनते विजया मुग्ध हो गई थी। वास्तव में इतने बड़े नाम के लोभ का संवरण करना एक अठारह साल की नवयुवती के लिये संभव न था। वह पूर्ण सम्मति प्रदान करती हुई बोली—'सुना है उनके लड़के का नाम है नरेन्द्र। इस समय वह कहाँ है, जानते हैं आप?'

—'जानता हूँ। अपने अभागे बापकी मृत्युके बाद घर पर आया है और उसकी श्राद्ध करके अभी देश में ही है।'

—'आपके साथ शायद परिचय है?'

—'परिचय? छिः! आप मुझे समझती क्या हैं, ज़रा सोचें तो!' —कहकर विजया को एकाएक अवाक् करके विलास जरा हँसकर फिर बोला—'मेरी तो समझ में ही नहीं आ रहा है कि मैं जगदीश मुखर्जी के लड़के के साथ परिचय कर ही कैसे सकता हूँ। उस दिन रास्ते पर अचानक एक पागल की तरह नये आदमी को देखकर आश्चर्य हुआ था। सुनने में आया कि यही नरेन मुखर्जी है।'

विजया कौतूहलपूर्ण होकर बोली—'पागल की तरह? सुनने में तो आया है कि वह डाक्टर है?'

विलास घृणा से सर्वाङ्ग को सिकोड़ता हुआ बोला—'ठीक पागल की तरह। डाक्टर? मुझे तो विश्वास ही नहीं हो रहा। सिर पर बड़े-बड़े बाल, कद में जैसा लम्बा वैसा ही कमज़ोर। छाती की हड्डी-हड्डी शायद दूर से ही गिन ली जाय—यही तो चेहरा है। बिल्कुल दुबला पतला!'

वस्तुतः चेहरे पर गर्व करने का अधिकार विलास को था। क्योंकि वह स्वयं कदमें था ठिगना, मोटा और जबर्दस्त जवान। उसकी छाती की हड्डी बम की चोट से भी दिखाई नहीं पड़ सकती थी। वह कुछ और बोलने ही जा रहा था कि विजया ने रोककर पूछा—'अच्छा विलासबाबू, अगर जगदीशबाबू का मकान सचमुच हम दखल कर लें, तो क्या गाँव के बीच कोई अनुचित हो-हल्ला तो नहीं मच जायगा?'

विलास बड़े तपाकसे बोला—'बिल्कुल नहीं। पाँच-सात गाँवों के बीच आपको ऐसा एक आदमी भी नहीं मिलेगा, जिसकी इस शराबी पर रंचमात्र भी सहानुभूति रही हो। उस अंचल में उसके लिये 'हाय' करने वाला कोई नहीं।' जरा हँसकर बोला—'पर यदि ऐसा न भी हो, तो

मेरे जीते-जी आपको इस प्रकार की चिन्ता करनी चाहिये भी नहीं। लेकिन मैं तो कहता हूँ कि आखिर कुछ दिन के लिये भी एकबार अपने गाँव में जाना आपका कर्त्तव्य है।'

विजया ने आश्चर्य के साथ पूछा—'क्यों? हम तो कभी वहाँ गये नहीं?'

विलास उद्दीप्त स्वरमें बोल उठा—'इसीलिये तो कह रहा हूँ कि आपको जाना चाहिये ही! प्रजा को अपनी महारानी का एकबार दर्शन करने का मौका दें। मेरा तो मन निश्चितरूप से कह रहा है कि इस सौभाग्य से उन्हें वंचित करना महापाप है।'

विजया के मुख पर लज्जा की लाली दौड़ गई। वह सिर झुकाये कुछ बोलना चाहती ही थी कि विलास बीच में ही बोल उठा—'इसमें आगा-पीछा करने की जरूरत नहीं। एकबार सोचकर देखें तो कितने काम आपको वहाँ करने हैं! आज मुझे यह बात आपके मुँह पर ही कहने में बिल्कुल संकोच नहीं, कि आपके पिताजी उन सारे गाँवों के मालिक होकर भी कुछ पागल कुत्तों के डर से फिर कभी अपने गाँव वापस नहीं गये, सो क्या उन्होंने ठीक किया था? यही क्या हमारे ब्राह्म-समाज का आदर्श है? यह समाज का आदर्श नहीं है, इसमें कोई सन्देह नहीं।'

विजया क्षणभर चुप रहकर बोली—'पर पिताजी के मुँह से सुना है, हमारे गाँव का घर तो रहने के लायक है नहीं।'

विलास ने कहा—'आप हुक्म दें, एकबार अपने मुँह से कह दें कि वहाँ जायेंगी—फिर मैं दस दिन के अन्दर ही उसे रहने के लायक बना दूँगा। मुझ पर विश्वास रखें, मैं जी-जान से ऐसा प्रबन्ध करने की कोशिश करूँगा जिससे वह मकान आपकी पूरी मर्यादा निभा सके। देखें, एक बात बहुत दिनों से मेरे मन में बार-बार उठ रही है—आपको सिर्फ सामने रखकर मैं क्या से क्या कर सकता हूँ जिसकी कोई सीमा नहीं।'

विजया को राजी करके विलास के चले जाने पर वह उसी जगह चुप-चाप बैठी रही। जो उसका गाँव है वहाँ वह आज तक कभी गई तो नहीं, किन्तु बीच-बीच में पिता के मुख से उसका न जाने कितना बखान सुन चुकी थी। जन्मभूमि की बात करते वक्त उनके उत्साह और आनन्द की सीमा न रहती। किन्तु उस समय वे सारी कहानियाँ उसके मन को बिल्कुल आकृष्ट नहीं कर पाते, जैसे सुनती, वैसे ही भूल जाती। परन्तु आज कहाँ से अचानक लौटकर वे ही समस्त विस्मृत विवरण एका-एक साकार बनकर उसकी आँखोंके समाने आ खड़े हुए। वह सोचने लगी—'उसके गाँव के मकान कलकत्ते की इस अट्टालिका जैसे विशाल एवं आडम्बरपूर्ण तो नहीं हैं, परन्तु वही तो उसके सात-पुरुषों की डीह है! वहाँ यदि उसके दादे-परदादे और उनके भी दादे-परदादे न जाने कितनी पीढ़ियों के सुख-दुख, उत्सव और व्यसन के दिन कट गये हैं, तो फिर उसी के दिन क्यों नहीं कटेंगे?'

गली के सामने के तीन-तल्ले मकान की आड़ में सूर्यदेव अदृश्य हो गये। इसीको लेकर पिताके साथ न जाने उसकी कितनी बातें हुईं। उसे याद आगया, कई दिन शाम को आराम-कुर्सी पर बैठे-बैठे एक लम्बी साँस लेकर उन्होंने कहा था—'विजया, अपने देश के घर में यह दुख कभी न पाया। वहाँ किसी तीन-तल्ले की छत मेरे शेष सूर्यास्त को अपनी आँचल में छिपा के कभी नहीं खड़ी हुई। तुझे तो पता नहीं बिटिया, पर मेरी जो दो आँखें इस हृदय के भीतर से झाँक रही हैं उन्हें स्पष्ट दीख रहा है—हमारी पुष्पवाटिका के किनारे बहती हुई छोटी नदी का जल इस वक्त उन सुनहली किरणों के संस्पर्श से झिल-मिलकर उठा है; और उसके दूसरी तरफ़ जहाँ तक दृष्टि जा सकती है, मैदान ही मैदान है; अन्त में सूयदेव अब भी जाते-जाते करके भी ग्रामकी माया पाश को काटकर जा नहीं पा रहें। यहीं तो बिटिया, गली की मोड़ पर देख तो रही हो, दिन का काम खत्म करके घर की तरफ मनुष्य का स्रोत बहा जा

रहा है, किन्तु उस दस-बारह हाथ ज़मीन को छोड़ उनके साथ जाने के लिये और कोई दूसरा रास्ता नहीं। इसी प्रकार इस सन्ध्या के समय वहाँ भी घरकी तरफ विपरीत स्रोत बहते देखा है, पर उसके प्रत्येक गौ-बछड़े के घर तक से मेरा परिचय था बेटी।' कहकर अकस्मात् एक अत्यन्त गंभीर निश्वास छोड़कर चुप हो बैठ जाते। जिस ग्राम को एक दिन वे त्याग आये थे, इस सुख-ऐश्वर्य के मध्य भी उसी के लिये उनका अन्तःकरण रो पड़ता, इसका आभास जब-तब विजया को मिल जाता था। तथापि एक दिन भी उसने इसके कारण पर विचार नहीं किया, किन्तु आज जब विलास उसी तरफ उसकी दृष्टि आकृष्ट करके चला गया, तो स्वर्गीय पितृदेव की बातें स्मरण कर-करके उनकी समस्त छिपी वेदना का कारण अकस्मात् क्षणभर में ही उसके हृदय के मध्य उद्भासित हो उठा। कलकत्ते जैसे जनसंकुल विपुल अरण्य के बीच वे किसी प्रकार का एकाकी जीवन व्यतीत कर गये हैं, आज उसे आँखों के सामने प्रगट हुआ देख वह बिल्कुल भयभीत हो गई। और आश्चर्य तो यह कि जिस गाँव, जिस डीह के साथ उसका आजन्म परिचय नहीं, वही आज उसे प्रबल शक्ति से अपनी ओर खींचने लगा।

४

ज़मीनदार का मकान बहुत दिनों से सुनसान पड़ा था, विलास की देख-रेखमें उसकी मरम्मत होने लगी। कलकत्ते से अदृष्ट-पूर्व तरह-तरह के सामान असबाब प्रतिदिन बैलगाड़ियों पर लद-लदकर आने लगे। जमीनदार की इकलौती कन्या अपने गाँव में बास करने आ रही हैं, इस समाचार के फैलते ही सिर्फ़ कृष्णापुर में ही नहीं, राधापुर, ब्रजपुर, दिघड़ा आदि आसपास के पाँच-सात गाँवों में तहलका मच गया। योंही तो घरके निकट जमीनदार का निवास सदा से लोगों को अप्रिय रहा है, तिस पर ज़मीनदार की अनुपस्थिति की रैयतोंको आदत पड़ गई थी। इसलिये

नये सिरे से निवास करने की उनकी इच्छा लोगों को एक अनुचित उपद्रव की तरह प्रतीत हुई। मैनेजर रासविहारी के कठोर शासन के अन्तर्गत उनके कष्ट की कमी न थी, फिर जमीनदार-कन्या की वापसी के शुभ उपलक्ष में वह कौनसा नया उपद्रव खड़ा करेगा, यह चलते-फिरते सभी जगह एक अशुभ आलोचना का विषय बन गया। स्वर्गीय वृद्ध जमीनदार वनमालीबाबू जब तक जीवित रहे, तब तक दुख के बीच भी इतना सुख अवश्य था कि किसी प्रकार कलकत्ते जाकर एकबार उनके निकट पहुँच जाने पर किसी को खाली हाथ लौटना नहीं पड़ता। किन्तु जमीनदार-कन्या की उम्र अभी कच्ची है, मिजाज गरम। उन गाँवों में रासविहारी के पुत्र के साथ उसके ब्याह की अफवाह भी फैलने से बाकी न थी—वे मेम साहेब हैं, म्लेच्छ हैं। इसलिये निकट भविष्य में ही रासविहारी की दुष्टता की कल्पना करके किसी का भी हृदय जरा भी सुखी न रहा—यज्ञोपवीतधारी ब्राह्मणों से लेकर यज्ञोपवीत-हीन शूद्रों तक का। इस प्रकार भय की भावना में वर्षा की ऋतु बीत गई। शरद के आरंभ में ही एक मधुर प्रभात में दो विशाल चक्कों पर लुढ़कती खुली फिटन गाड़ी पर सवार होकर हुगली स्टेशन से जमींनदार की तरुणी कन्या सहस्र नरनारियों के सभीत कौतूहलपूर्ण नेत्रों के मध्य से गुजरती हुई अपने पूर्वजों के पुरातन वासस्थान पर आ पहुँची।

बंगाली कन्या; अठारह-उन्नीस साल पार कर चुकी, फिर भी काँरी—खुले आम जूता-मोज़ा पहनती है—भक्ष्याभक्ष्य का विचार नहीं रखती—इत्यादि तरह-तरह की काना-फूसी छिपेतौर पर गाँव के लोगों में ज़ोर पकड़ने लगी। फिर ज़मीनदार के समाने नज़राना भेंट करने एक-एक दो-दो करके वे आने लगे और तरह-तरह से आनन्द-मंगल की अभिलाषा प्रगट करके जाने भी लगे। इस तरह पाँच-छः दिन बीत जाने पर उस दिन सुबह के वक्त चाय-पानी करने के बाद नीचे के बैठकखाने में विजया विलासबाबू के साथ ज़मीनदारी के बारे में बातचीत

कर रही थी कि बेहरा ने आकर खबर दी—'एक बाबू मुलाक़ात करना चाहते हैं।'

विजया ने कहा—'यहां बुला लाओ।'

इन कई दिनों से लगातार उसके अन्य कई संभ्रान्त रैयत नज़राना लेकर जब-तब मुलाक़ात करने आये थे; इसलिये पहले तो उसे कोई खास बात मालूम नहीं पड़ी, किन्तु क्षणभर बाद जिस सम्भ्रान्त पुरुष ने बेहरा के पीछे-पीछे कमरे में प्रवेश किया उस पर दृष्टि पड़ते ही विजया विस्मित हो गयी। उसकी उम्र शायद [illegible] साल की होगी। लम्बा कद, किन्तु उसके अनुपात से हट्टा-कट्टा नहीं, बल्कि दुबला-पतला। स्वच्छ गोरा रंग, दाढ़ी-मूछें स्तूरे से साफ़ की हुई, पैरों में चप्पल, शरीर में कुर्त्ता नहीं, सिर्फ एक मोटी चादर के छिद्र से स्वच्छ यज्ञोपवीत का आभास आ रहा था। वह सिर्फ़ एक सामान्य नमस्कार करके कुर्सी खींचकर बैठ गया। इससे पहले जो भी सम्भ्रान्त व्यक्ति मुलाकात करने आये, वे सिर्फ नज़राना ही लेकर नहीं आये थे, बल्कि कुछ हिचक के साथ प्रवेश किया था। किन्तु इस व्यक्ति के आचरण में संकोच का लेश नहीं। उसके आगमन से सिर्फ़ विजया ही विस्मित हुई हो सो नहीं, विलास को भी कम आश्चर्य नहीं हुआ। दूसरे गाँव में निवास के बावजूद विलास इस प्रान्तके समस्त सम्भ्रान्त व्यक्तियों से परिचित था, पर इस युवक से उसे बिल्कुल जान-पहचान न थी। आगन्तुक ने ही पहले बात शुरू की, वह बोला—'मेरे मामा पूर्ण गांगुली महाशय आपके पड़ोसी हैं, बगल का मकान उन्हीं का है। मैं तो सुनकर अवाक् रह गया हूँ, कि उनके पूर्वजों के समय से होती आई दुर्गापूजा को इस बार क्या आप बन्द करवाना चाहती हैं? इसके मानी क्या हैं?'—कहकर उसने विजया की ओर दृष्टि निबद्ध कर दी। प्रश्न और पूछने के ढंग से विजया को आश्चर्य हुआ और मन ही मन नाराज भी हुई, किन्तु कोई जवाब उसने नहीं दिया।

जवाब दिया विलास ने। वह रूखे स्वर में बोला—'इसीलिये आप मामा की तरफसे झगड़ने आये हैं क्या ? पर किसके साथ बातें कर रहे हैं, सो मत भूल जाइये !'

आगन्तुक ने हँसकर ज़रा जीभ दबाते हुए कहा—'सो मैं भूल नहीं रहा और झगड़ा करने भी नहीं आया। बल्कि इस बात पर विश्वास न होने के कारण ही ज़रा अच्छी तरह जानने आया हूँ।'

विलास ज़रा व्यंगके ढंगसे बोला—'विश्वास क्यों नहीं हुआ ?'

आगन्तुक ने कहा—'विश्वास हो कैसे ज़रा बताइये तो ? अपने पड़ोसी के धार्मिक विश्वासपर निरर्थक आघात कीजियेगा, इस पर विश्वास न करना ही तो स्वाभाविक है।'

धार्मिक विषयों पर तर्क-वितर्क करना विलास को बचपन से ही अति प्रिय रहा है। वह उत्साह से प्रदीप्त हो उठा, गूढ़ व्यंगके स्वर में बोला—'आपको निरर्थक मालूम पड़ने से सभी के लिये तो वह निरर्थक नहीं हो जाता और इसका भी कोई कारण नहीं कि आप जिसे धर्म समझें उसे सभी सिर झुकाकर मान ही लें। मूर्त्ति-पूजा को हम धर्म नहीं मानते और उसका निषेध करना भी हम अन्याय नहीं समझते।'

आगन्तुक ने गंभीर विस्मय के साथ विजया के मुंह की तरफ़ देखकर कहा—'आपका भी क्या यही मत है ?'

उसके विस्मय से विजया को मानों चोट पहुँची, किन्तु उसने वह भाव छिपाकर सहज स्वर में ही जवाब दिया—'मुझसे क्या आप इससे विपरीत मन्तव्य सुनने की आशा से आये थे ?'

विलास गर्वके साथ हँसकर बोला—'शायद। पर ये महाशय परदेशी हैं, हो सकता है कि आपके बारे में इन्हें कुछ पता न हो।'

आगन्तुक क्षणभर विजया के मुँह की ओर चुपचाप तकता रहा, फिर उसीसे बोला—'यह बात ठीक है कि मैं परदेशी न होकर भी इस गाँव का नहीं हूँ, फिर भी मैं सचमुच आपसे ऐसी आशा नहीं करता। मूर्त्ति-पूजा की बात आपके मुखसे न निकलने पर भी साकार-निराकार उपासना का पुराना झगड़ा मैं यहाँ नहीं पेश करना चाहता। आप लोग ब्रह्म समाजी हैं यह भी मैं जानता हूँ। पर यह तो वह बात नहीं है। गाँव के बीच यही एक पूजा है। सब आदमी सालभर से इन तीन दिनों की बड़ी आशा-उत्कण्ठा से प्रतीक्षा करते रहते हैं'—कहकर फिर एकबार तीखी निगाह डालकर बोला—'गाँव है आपका, रैयत आपके बाल-बच्चों की तरह है ; आपके आने के साथ ही साथ गाँवके आनन्द-उत्सव में सौगुनी वृद्धि हो जायगी, यह आशा ही तो सब करते हैं। किन्तु ऐसा न करके इतना बड़ा दुख, इतनी बड़ी उदासी बिना अपराध के अपनी दुखी प्रजा के मत्थे आप स्वयं थोप दीजियेगा ऐसा विश्वास करना क्या आसान है ? मुझे तो विश्वास नहीं हो रहा।'

विजया सहसा जवाब न दे सकी। दुखी प्रजा के नाम पर उसका कोमल हृदय व्यथा से परिपूर्ण हो उठा। क्षणभर किसीके मुँह से कोई बात न निकली। सिर्फ विलास विजया के मौन स्नेहार्द्र मुख की ओर देखकर भीतर ही भीतर घबड़ाकर अवज्ञाके भावसे बोल उठा—'आपने बहुत सी बातें कही हैं। साकार निराकार के बारे में आपके साथ बहस करने के लिये हमारे पास फालतू वक्त नहीं। जहन्नुम में जायँ ऐसी बातें। आपके मामा साहब एक ही क्यों, सौ सौ मूर्त्तियों से घर भरकर अपने घर में बड़े मजे में पूजा कर सकते हैं, इसमें हमें कोई आपत्ति नहीं ; सिर्फ दिन-रात ढोल-ढाल घीटा घड़ियाल उनके कान के निकट पीट-पीटकर उनकी तबीयत खराब कर देने में हमें आपत्ति अवश्य है।'

आगन्तुक ने ज़रा हंसकर कहा—'दिन-रात तो बजता नहीं रहता; थोड़ा बहुत तो शोर गुल सभी उत्सवों में होता ही है' कहकर विशेषतः

विजया को उद्देश करके बोला—'असुविधा अगर कुछ होगी ही तो होने दीजिये। आपकी जाति है माताओं की, इनके आनन्द का अत्याचार-उपद्रव आप न बर्दाश्त करेंगी तो करेगा ही कौन ?'

विजया उसी तरह चुप-चाप बैठी रही। विलास व्यंग की सूखी हंसी हंसकर बोला—'आपने तो काम निकालने की चालाकी में बाल-बच्चे तक की उपमा दे दी, सुनने में भी बुरा नहीं लगा। पर मैं पूछता हूँ यदि आप स्वयं मुसलमान बनकर अपने मामा के कान के निकट मोहर्रम का नगाड़ा पीटना शुरू कर देते तो क्या उन्हें अच्छा लगता ? कुछ भी हो, बकवास करने का वक्त हमारे पास नहीं है। पिताजी ने जो हुक्म दिया है वही होगा। कलकत्ते से उन्हें गांव में लाकर नाहक ढोल-घड़ियाल बजवाकर हम उनका माथा खफ़ा करने नहीं दे सकते—हरगिज नहीं।'

उसके अशिष्ट व्यंग्य और उग्रता से आगन्तुक की आँखें प्रखर हो उठीं। उसने विलास की तरफ आँख उठाकर कहा—'आपके पिताजी हैं कौन और मना करने का उनका अधिकार क्या है मुझे पता नहीं, पर आपने मुहर्रम की जो अद्भुत उपमा दी है यह हिन्दुओं की रसन-चौकी न होकर अगर मुसलमानों के मोहर्रम का नगाड़ा होता तो आप क्या करते, ज़रा बताइये तो ? यह अपनी निरीह जाति पर अत्याचार के सिवा और क्या कहा जायगा !'

विलास अकस्मात् कुर्सी से उछल पड़ा। आँखें लाल-पीली कर चिल्लाकर बोला—'कहे देता हूँ कि पिताजी के संबन्ध में तुम सावधान होकर बातें किया करो, नहीं तो इसी क्षण किसी और तरीके से बता दूँगा कि वे कौन हैं और उनका अधिकार क्या है !'

आगन्तुक ने आश्चर्य के साथ विलास के मुँह की ओर देखा किन्तु भय का ज़रा-सा भी चिन्ह उसके चेहरे पर न दिखाई पड़ा। दिखाई पड़ा तो विजया के चेहरे पर। उसी के घर में बैठकर उसी के एक अपरिचित अतिथि

के प्रति इस नितान्त अशिष्ठ आचरण के फलस्वरूप क्रोध और लज्जा से उसका मुँह लाल हो उठा। आगन्तुक क्षणमात्र विलास के मुँह की ओर देखता रहा ; दूसरे ही क्षण उसकी बिल्कुल उपेक्षा करके विजया की ओर दृष्टि फिराकर बोला—'मेरे मामा कोई अमीर नहीं। उनकी प्रजा का आयोजन भी सामान्य ही है। फिर भी आपकी ग़रीब रैयात का सालभर का यही एकमात्र आनन्द-उत्सव है। हो सकता है आपको कुछ असुविधा हो, पर उनका ख़्याल करके क्या ज़रा बर्दाश्त नहीं कर सकतीं ?'

विलास ने क्रोध से पागल होकर सामने की मेज़ पर कसकर मुट्ठी दे मारी और चिल्ला उठा—'नहीं, बर्दाश्त नहीं कर सकतीं, बिल्कुल नहीं कर सकतीं। इन मूर्ख गँवारों का पागलपन बर्दाश्त करने के लिये कोई ज़मीनदारी नहीं करता। तुम्हें और कुछ न कहना हो तो यहाँ से चले जाओ, हमारा वक्त नाहक बर्बाद मत करो।' कहकर उसने हाथ से दरवाजे की तरफ़ इशारा कर दिया।

उसकी उत्कट उत्तेजना से आगन्तुक मानों क्षणभर के लिये हक्का-बक्का-सा होगया। सहसा उसके मुँख से प्रत्युत्तर नहीं निकला। किन्तु पिता से विजया को विफल शिक्षा नहीं मिली थी, वह शान्त एवं धीर-भाव से विलास की तरफ़ देखकर बोली—'आपके पिताजी ने मुझे अपनी कन्या की तरह प्यार करने के कारण ही इनकी पूजा की मनाही कर दी है, पर मैं कहती हूँ तीन-चार दिन ज़रा शोर-गुल होने से क्या—'

बात खत्म होने से पहले ही विलास उसी प्रकार उच्च स्वर से प्रतिवाद कर उठा—'अरे, वह असहनीय हंगामा है। आपको पता नहीं इसीलिये—'

विजया मुस्कुराती हुई बोली—'होने दीजिये हंगामा, तीन ही दिन तो! और आप मेरी असुविधा की बात सोच रहे हैं; लेकिन कलकत्ता रहने पर आप क्या करते, बताइये ? वहाँ आठों पहर कोई कान के निकट

तोप भी दागता रहता तो चुपचाप सहना ही पड़ता।' कहकर आगन्तुक युवक की तरफ़ देखकर हँसती हुई बोली—'आप अपने मामा से कह दें, वे सदा से जिस तरह करते आय हैं इसबार भी उसी प्रकार पूजा करें। मुझे रंचमात्र भी आपत्ति नहीं।'

आगन्तुक और विलासबाबू दोनों ही विस्मय से अवाक् होकर विजया के मुँह की तरफ़ ताकते रह गये।

'तो फिर आप अब जा सकते हैं'—कहकर विजयाने हाथ उठा कर एक सामान्य नमस्कार किया। अपरिचित आगन्तुक भी अपने को सम्हाल उठ खड़ा हुआ और धन्यवाद एवं प्रतिनमस्कार के बाद विलास को भी नमस्कार करके धीरे-धीरे बाहर हो गया। क्रुद्ध विलासने दूसरी तरफ़ मुँह घुमाकर उसकी अवज्ञा अवश्य की किन्तु दोनों में से किसी को भी मालूम न हो सका कि यह अपरिचित युवक ही उनके मुख्य कर्जदार जगदीश का पुत्र नरेन्द्रनाथ है।

५

उसके चले जाने पर क्षणभर विजयाने अन्यमनस्क और मौन रहने के बाद सहसा चौंककर ज्योंही ऊपर की ओर मुँह उठाया कि नितान्त अकारण ही उसके गालों पर एक हल्की-सी लाली दौड़ती दीख पड़ी। विलास की दृष्टि यदि अन्यत्र निबद्ध न होती तो शायद उसके विस्मय और क्षोभकी सीमा न रहती। विजया जरा मुस्कुराकर बोली—'हमारी बातचीत का सिलसिला तो बीच में ही रुक गया तो फिर क्या उस तालुके को खरीद लेने की ही आपके पिताजी की राय है?'

विलास खिड़की के बाहर देख रहा था, उसी भाव से उसने कहा—'हुँ'

विजया ने पूछा—'पर इसके अन्दर किसी तरह की गड़बड़ी तो न हो!?'

विलास ने कहा—'नहीं।'

विजया ने फिर पूछा—'आज क्या वे उस वक्त इस तरफ़ आयेंगे ?'

विलास ने कहा—'कह नहीं सकता।'

विजया हँसकर बोली—'आप क्या नाराज़ हो गये ?'

इसबार विलास ने मुँह फिराकर गंभीर भावसे जवाब दिया—'नाराज़ न होने पर भी पिता के अपमान से पुत्र का दुखी होना शायद अस्वाभाविक नहीं।'

इस बात से विजयाको चोट पहुँची, फिर भी उसने हँसकर ही कहा—'पर इससे उनका अपमान हुआ है यह भ्रान्त धारणा आपको हुई कैसे ? स्नेह-वश उन्होंने मना किया है कि मुझे तकलीफ़ होगी, लेकिन तकलीफ़ नहीं होगी, सिर्फ इतना ही तो उस भद्रजन को बताया है। इसमें मान-अपमान की तो कोई बात नहीं विलासबाबू !'

विलासकी गंभीरता में इससे रंचमात्र की कमी न हुई ; उसने सिर हिलाते हुए जवाब दिया—'वह कोई बात ही नहीं ! अच्छा, अपनी स्टेट की जिम्मेदारी आप स्वयं लेना चाहती हैं तो ले लीजिये पर इसके बाद पिताजी को मुझे सवाधान कर ही देना पड़ेगा अन्यथा पुत्रके कर्तव्य में त्रुटि होगी।'

इस अप्रत्याशित कठोर प्रत्युत्तर से विजया विस्मय से अवाक् हो गई और कुछ क्षण भौंचक्की-सी रहने के बाद अत्यन्त व्यथित स्वर में बोली—'विलासबाबू आप तिलका ताड़ बना देंगे, मैंने सोचा भी न था। अच्छा, अगर नासमझी से कुछ भूल हो ही गई है तो मैं अपराध स्वीकार करती हूँ, भविष्य में अब ऐसा न होगा।'—कहकर विजया ने विलास के मुँह की तरफ़ देख एक साँस छोड़ी। उसने सोचा था इसके बाद किसी को कोई शिकायत न रहेगी, अपराध-स्वीकार के साथ

ही साथ उसकी समाप्ति हो जायगी। किन्तु इस बात का उसे पता न था कि बुरे घावों कीतरह ऐसे मनुष्य भी हैं जिनकी जहरीली भूख एक बार किसी की त्रुटि में आश्रय पाते ही फिर किसी भी तरह शान्त होना नहीं चाहती। इसीलिये विलासने जब प्रत्युत्तर में कहा—'फिर पूर्ण गंगोली को आप खबर भेज दें कि रासबिहारीबाबू ने जो हुक्म दिया है उसे उलटने की मेरी ताकत नहीं,—तो विजया की आँखों के सामने इस व्यक्तिकी हिंस्र प्रकृति क्षणभर में ही पूर्णतः उद्भासित हो उठी। वह कुछ क्षण चुपचाप ताकती रही फिर आहिस्तेसे बोली—'वह क्या इससे भी अधिक अनुचित न होगा? अच्छा, नहीं तो मैं स्वयं चिट्ठी लिखकर उनकी राय लेती हूँ।'

विलास बोला—'अब राय लेना-न लेना दोनों बराबर हैं। आप अगर उन्हें गाँव के लोगों की नज़र में गिराना चाहती हैं तो मुझे भी अत्यन्त अप्रिय कर्तव्य पालन करना पड़ेगा।'

विजया का अन्तःकरण अचानक क्रोध से परिपूर्ण हो उठा, किन्तु अपनेको सम्हालती हुई बड़े धैर्य के साथ बोली—'आखिर यह कर्तव्य है क्या ज़रा सुनूँ तो?'

विलास बोला—'आपकी ज़मीनदारी के कारोबार में जिससे वे फिर हाथ न डालें।'

—'आपकी मनाही पर वे ध्यान देंगे, आपको विश्वास है?'

—'आखिरकार मुझे यही कोशिश करनी पड़ेगी।'

विजया क्षणभर चुपचाप दूसरी तरफ़ देखती रही, फिर उसी प्रकार शान्त-स्वरमें उसने जवाब दिया—'अच्छा, आप जो कर सकें, करें पर मैं दूसरे के धर्म-कर्म में रुकावट नहीं डाल सकती।'

उसके कण्ठ-स्वर में कोमलता के बावजूद उसका भीतरी क्रोध छिपा न रह सका। विलास तीव्र स्वर में बोल उठा—'पर आपके पिताजी ऐसी बात बोलने का साहस न करते।'

विजया मुड़कर खड़ी हो गयी, आँख उठाकर उसके मुंहकी तरफ़ देखती हुई बोली—अपने पिताजी के बारे में आपसे मुझे अधिक जानकारी है विलासबाबू! पर इसको लेकर बहस करने से फ़ायदा क्या? मेरे स्नान करने का वक्त हो चुका अब मैं जाती हूँ।'—कहकर समस्त वाग-वितण्डा को जबर्दस्ती बन्द करके उसके उठकर खड़े होते ही क्रोध में पागल विलास के मुख पर से नकली शिष्टता का नकाब क्षणभर में ही गिर पड़ा। वह अपने स्वभाव को बिल्कुल नंगा करके अत्यन्त कटु स्वर में बोल पड़ा—'औरतों की जात होती ही है ऐसी नमकहराम।'

विजया आगे कदम बढ़ा चुकी थी, बिजली की तरह मुड़कर खड़ी हो गई, क्षणभर इस बर्बर असभ्य के मुख की ओर दृष्टिपात करके चुपचाप धीरे-धीरे कमरे से बाहर हो गई और साथ ही साथ विलास शुष्क हो उठा!

वह जो पितृ-भक्ति के आवेश में आकर ही विवाद कर रहा था, ऐसा सोचना भ्रम होगा। ऐसे आदमियों का स्वभाव ही ऐसा होता है कि छिद्र पाते ही उसे निरर्थक बढ़ाकर कमज़ोर को सताना, डरेको और डरा-डराकर व्याकुल करने में आनन्द अनुभव करना—सो चाहे जो कुछ भी हो, कारण अत्यन्त अप्रासंगिक ही क्यों न हो। किन्तु विजया जब रंचमात्र भी न झुकी और उसीको तुच्छ बनाकर अत्यन्त घृणाके साथ चली गई, तोइस जबरन-झगड़ा खड़ा करनेकी सारी क्षुद्रता ने उसे अपनी आँखों में भी गिरा दिया। वह क्षणभर चुपचाप बैठा रहा फिर चेहरे पर काली स्याही पोतकर धीरे-धीरे घर चला गया।

दोपहर बाद रासविहारी बेटे को साथ लेकर आये, बोले—'काम तो अच्छा नहीं हुआ बेटी! मेरे हुक्मके खिलाफ हुक्म देना मेरा भारी अपमान करना है। जो हुआ सो हुआ, ज़मीनदारी जब तुम्हारी है तो इस बात को लेकर और अधिक वाद-विवाद करना मैं नहीं चाहता।

लेकिन बार-बार अगर इस प्रकार की घटना घटित होगी तो आत्म-सम्मान की रक्षा के लिये मुझे अलग हो ही जाना पड़ेगा, यह बताये दे रहा हूँ।'

विजया ने कोई उत्तर नहीं दिया बल्कि चुप रहकर एक प्रकार से अपराध स्वीकार ही कर लिया। तब रासविहारी ने नरम होकर ज़मीन-दारी-सम्बन्धी दूसरी बातें चला दीं। नया तालुका खरीद करने की आलोचना खत्म करते हुए बोले—'जगदीश के मकान को जब तुमने समाज के निमित्त दान कर ही दिया है बिटिया, तो फिर अब और अधिक देर करने की जरूरत क्या है? इस पूजा की छुट्टी के बाद ही उस पर कब्जा करना होगा क्यों, तुम्हारी क्या राय है?'

विजया गर्दन हिलाती हुई बोली—'आप जो अच्छा समझेंगे वही होगा। कर्ज चुकानेकी मियाद तो उनकी खत्म हो चुकी है।'

रासविहारी बोले—'बहुत दिन पहले। जगदीश ने अपने समस्त फुटकर ऋण को इकट्ठा करने के ख्याल से तुम्हारे पिताजी से आठ साल की करार पर दस हज़ार रुपया कर्ज लेकर रहननामा लिख दिया था। शर्त यह थी कि इस बीच कर्ज चुका सके तो अच्छा ही है; न चुका सके तो उसका घर-द्वार, बाग़-बगीचा, पोखर-तालाब—उसकी सारी संपति हमारी होगी। सो आठ साल बीतकर यह नौवाँ साल चल रहा है बेटी।'

विजया कुछ देर सिर झुकाये चुपचाप बैठी रहनेके बाद मृदु स्वर में बोली—'सुनने में आया है कि उनके पुत्र यहीं हैं। उन्हें बुलाकर और कुछ दिन की मोहलत देकर क्या देखा नहीं जा सकता, शायद वे कोई उपाय कर सकें?'

रासविहारी सिर हिलाते हिलाते बोले—'सो तो वह कर नहीं सकेगा, कर ही नहीं सकता। कर सकता तो—'

पिता की बात खत्म होने से पहले ही अचानक विलास गरज उठा। अब तक वह किसी प्रकार धीरज धरे बैठा था, अब न धर सका। कर्कश स्वर में बोल उठा—'कोई उपाय वह कर भी सके तो हम ही क्यों छोड़ देने लगे ? रुपया लेते वक्त उस शराबी को होश नहीं था कि क्या शर्त कर रहा हूँ ? यह चुकाऊँगा कैसे ?'

बिजया विलास की ओर एकबार दृष्टिपात करके रासविहारी के मुँह की तरफ़ देखकर शान्त तथा दृढ़ स्वरमें बोली—'वे मेरे पिताजी के मित्र थे। उनके संबन्ध में सम्मानपूर्वक बातें करने को पिताजी मुझे आदेश दे गये हैं—'

विलास फिर भड़-भड़ा उठा—'हज़ार उन्होंने आदेश दिया हो, फिर भी वह तो एक—'

रासविहारी रोकते हुए बोल पड़े—'तुम चुप रहो न विलास।'

विलास ने जवाब दिया—'इन सब निरर्थक *sentiments** को मैं किसी भी तरह बर्दाश्त नहीं कर सकता—इससे कोई चाहे नाराज हो जाय या जो कुछ करे। मैं सच्ची बात कहने से नहीं डरता, सच्चे काम में पीछे पाँव नहीं रखता!'

रासविहारी दोनों पक्ष को शान्त करने के अभिप्राय से हंसने जैसा मुँह करके बारबार सिर हिला-हिलाकर बोलने लगे—'सो तो है ही, सो तो है ही। हमारे वंश का यह स्वभाव तो मुझसे भी अलग न हो सका! समझी न बेटी विजया—मैं और तुम्हारे पिता इसीलिये तो समस्त समाज के विरुद्ध सत्य-धर्म ग्रहण करने से डरे नहीं।'

विजया बोली—'पिताजी मृत्यु से पहले मुझे आदेश दे गये थे कि कर्ज के भुगतान में उनके बाल-सखा के घर-द्वार पर कब्जा न जमाऊँ।'—कहते-कहते ही उसकी आँखों में आँसू छल-छला आये। स्नेहमय पिता का जो अनुरोध उनके जीवितकाल में असंगत प्रतीत

*आवेग

हुआ था, उनकी मृत्यु के बाद आज वही अनुरोध अनुल्लंघनीय आदेश की तरह उसे बाधित कर रहा था।

विलास ने कहा—'तो फिर उन्होंने स्वयं ही सारा ऋण क्यों नहीं छोड़ दिया?'

विजया इसका बगैर कोई जवाब दिये रासविहारी के मुँह की ओर देखकर फिर बोली—'जगदीश बाबू के पुत्र को बुलवाकर सारी बातें बता देनी चाहिये यही मेरी इच्छा है।'

उनके जवाब देने से पहले ही विलास निर्लज्ज की तरह फिर बोल पड़ा—'और अगर वह फिर दस साल का समय मांगे तो क्या उसे दिया नहीं जायगा? तब तो फिर देख रहा हूँ, देश में समाज-प्रतिष्ठा की आशा को समुद्र के गर्भ में विसर्जन करना पड़ेगा।'

विजया इसका भी कोई जवाब दिये बिना रासविहारी को लक्ष्य करके बोली—'आप एक बार उन्हें बुलाकर इस बारे में उनकी क्या इच्छा है, इसका पता नहीं ले सकते?'

रासविहारी थे बड़े गुरुघण्टाल। अपने बेटे की उद्दण्डता पर मन-ही-मन असंतुष्ट होने के बावजूद, ऊपर से उसी के मत को समीचीन ठहराने के लिये ज़रा भूमिका बाँधते हुए शान्त तथा गंभीर स्वरमें बोले—'देखो बिटिया, तुम दोनों के मतभेद में किसी तीसरे का दखल देना ठीक नहीं क्योंकि तुम दोनों की भलाई किस में है, सो आज नहीं कल, तुम्हीं दोनों को स्थिर करना पड़ेगा, इस बूढ़े की राय-वाय की कोई जरूरत न होगी; पर असली बात तो कहनी ही पड़ेगी—इस क्षेत्र में तुम्हीं भूल कर रही हो। जमीनदारी के काम में मुझे भी विलास का लोहा मानना पड़ता है यह मैंने अनेक बार देख लिया है। अच्छा, तुम्हीं बताओ, गरज किसको अधिक है, तुम्हें या जगदीश के लड़के को? कर्ज चुकाने का यदि उसने उपाय किया होता तो क्या वह स्वयं आकर एकबार कोशिश करके

नहीं देखता ? उसे तो पता है, तुम यहाँ आई हो ? इस वक्त हम ही अगर गरजू बनकर उसे बुला भेजें तो वह जरूर एक लम्बे समय की मांग करेगा, पर इसका नतीजा सिर्फ यही होगा कि न तो वह कर्ज ही भुगतान कर सकेगा और तुम्हारा समाज-प्रतिष्ठा का संकल्प भी हमेशा के लिये रसातल में चला जायगा। अच्छी तरह सोचकर देख लो बेटी, क्या यह ठीक नहीं है ?'

विजया चुपचाप बैठी रही। उसके मन का भाव अनुमान करके वृद्ध रासविहारी क्षणभर बाद बोले—'ठीक तो है, उसके परोक्ष में तो कुछ नहीं हो सकता। तब अगर वह स्वयं समय चाहे, तो फिर इस पर विचार किया जायगा। क्यों, क्या राय है बिटिया ?'

विजया ने सिर हिलाकर जताया—'अच्छा।' किन्तु फिर भी उसके चेहरेको देखकर साफ मालूम पड़ रहा था कि उसने भीतरसे इस प्रस्ताव का अनुमोदन नहीं किया। रासविहारी ने आज विजया को पहचाना। उन्हें निश्चित रूप से पता चल गया कि इस लड़की की उम्र तो कम है परन्तु वह अपने पिता की जमीनदारी की एकमात्र अधिकारिणी है यह वह जानती है और उसको मुट्ठी में करने के लिये अभी समय की जरूरत है। इसलिये एक ही बात को लेकर अधिक खींचा-तानी करना अनुचित समझ सान्ध्य-उपासनाका नाम लेकर चलनेको तैयार हो गये। विजया प्रणाम करके चुपचाप आसन छोड़कर उठ खड़ी हुई। वे आशीर्वाद देकर बाहर हो गये। विजया क्षणभर चुप खड़ी रहने के बाद बोली—'मुझे बहुत से चिट्ठी-पत्र लिखने हैं, मुझसे आपको कोई जरूरी काम है क्या ?'

विलास ने रुखाई से जवाब दिया—'कुछ नहीं। आप जा सकती हैं।'

'—तो फिर आप के लिये चाय भेज दूँ ?'

'—नहीं, कोई जरूरत नहीं।'

'—अच्छा, नमस्कार'—कहकर विजया दोनों हाथ जोड़ कमरा छोड़कर चली गई।

६

दिघड़ा के स्वर्गीय जगदीशबाबू का घर सरस्वती के दूसरे तरफ़ था। यह दूसरे गाँव में होने के बावजूद नदी तीर पर स्थित कुछ बाँस की झाड़ियों के कारण ही वनमालीबाबू के मकान की छत पर से दिखाई नहीं पड़ता था। उस समय शरद् ऋतु के अवसान के साथ ही साथ सरस्वती की वर्षा-वर्सित जलराशि भी निःशेष होने को आगयी थी और तट के ऊपर से किसानों के यातायात का मार्ग भी पैरों की रगड़ से सूखकर कड़ा होता जा रहा था। इसी मार्ग से आज तीसरेपहर विजया बूढ़े दरवान कन्हैया सिंह को साथ लेकर सैर करने निकली थी। उस पार के बबूल, बाँस, खजूर आदि वृक्षों के छिद्र से होकर अस्तोन्मुख सूर्य की रक्तिम आभा बीच-बीच में उसके मुख पर आ पड़ती थी। अन्यमनस्क दृष्टि से दोनों तट के इधर-उधर के दृश्यों को देखती देखती सीधे उत्तर दिशा की ओर जाते-जाते अचानक एक स्थान पर उसकी दृष्टि जा पड़ी जहाँ नदी के बीच में कुछ बाँस इकट्ठा करके दूसरी तरफ़ जाने के लिये पुल बनाया जा रहा था। इसीको अच्छी तरह देखने के ख्याल से विजया जल के निकट आकर खड़ी होते ही देखती है कि पास में ही बैठा हुआ एक आदमी बड़े एकाग्रचित्त से मछलियाँ पकड़ रहा है। आहट पाकर उस व्यक्ति ने सिर उठाकर नमस्कार किया। ठीक उसी समय विजया के मुख पर सूर्य किरणें आ पड़ीं या नहीं सो तो पता नहीं किन्तु चार आँखें होते ही उसका गोरा चेहरा एकाएक मानो लाल हो गया। मछलियाँ पकड़ने वाला पूर्ण बाबू का वही भान्जा था जो उस दिन मामा की तरफ़ से दरबार करने आया था। विजया को

नमस्कार करते ही वह नजदीक आकर मुस्कुराता हुआ बोला—'शाम के वक्त ज़रा टहलने-फिरने के लिये नदी का किनारा कोई बुरी जगह तो नहीं है पर इस समय मलेरिया का भय कुछ कम नहीं। शायद आपको इसके लिये किसी ने सावधान नहीं किया?'

विजया गर्दन हिलाती हुई बोली—'नहीं।' और दूसरे ही क्षण अपने को सम्हालकर मन्द मुस्काती हुई बोली—'लेकिन मलेरिया तो आदमी पहचानकर नहीं पकड़ता। मैं तो बल्कि बगैर जाने आ गयी हूँ, पर आप जो जान-बूझकर जल के किनारे बैठे है! कहाँ हैं, ज़रा देखू कौन-कौन सी मछली पकड़ी हैं?'

उस व्यक्ति ने हँसकर कहा—'पोठी मछली। पर दो घण्टे में सिर्फ़ दो ही मिली हैं। मज़दूरी भी नहीं निकली लेकिन क्या करूँ कहिये। आपकी तरह मैं भी एक प्रकार से परदेशी ही हूँ। बाहर ही बाहर दिन बीत गये, प्रायः किसीके साथ वैसी जान-पहचान भी नहीं है पर शाम का वक्त तो किसी न किसी तरह बिताना ही पड़ता है।'

विजया गर्दन हिलाती मुस्काती हुई बोली—'मेरी भी क़रीब-करीब ऐसी ही हालत है। आपका घर शायद पूर्णबाबू के घर के नज़दीक ही होगा?'

उसने कहा—'नहीं।' हाथ से नदी के उस पार की ओर इशारा करके बोला—'मेरा घर इस दिघड़ा गाँव में है। इस बाँस के पुल पर से जाना होता है।'

गाँव का नाम सुनकर विजया ने पूछा—'तो फिर शायद जगदीशबाबू के लड़के नरेन्द्रबाबू को तो आप पहचानते होंगे?'

उस व्यक्ति के सिर हिलाते ही विजया अत्यन्त कौतूहल के साथ अचानक पूछ बैठी—'वे कैसे आदमी हैं, आप बता सकते हैं?

किन्तु बोलने के साथ ही वह अपने अशिष्ट प्रश्न से अत्यन्त लज्जित हो उठी। यह लज्जा उस व्यक्ति की आँखोंसे छिपी न रह सकी। उसने

हँसकर कहा—'उसका घर तो आपने कर्ज के रुपये में खरीद लिया है; अब उसके सम्बन्ध में पता लगाने से फ़ायदा क्या? परन्तु जिस सदुद्देश्य से आपने मकान लिया है, वह बात भी इस प्रान्त में सबों ने सुनी है।'

विजया ने पूछा—'बिल्कुल ले ही लिया गया है—शायद इस तरफ़ इस बात का प्रचार हो चुका है?'

उसने कहा—'होने की तो बात ही है। जगदीशबाबू का सर्वस्व आपके पिताजी के पास रहननामें की शर्त में बँधा था। उनके लड़के की इतनी शक्ति नहीं कि वह इतना रुपया चुका सके—'मियाद भी खत्म हो चुकी है—इस बात का सबको पता है न?'

'—मकान कैसा है?'

'—बुरा नहीं हैं, काफी बड़ा मकान है। जिस निमित्त आपने लिया है उस हकमें अच्छा ही होगा। चलिये, थोड़ी दूर और आगे जाते ही दीख पड़ेगा।'

चलते-चलते विजया ने कहा—'आप जब उसी गाँव के आदमी हैं तो सब कुछ जरूर जानते होंगे। अच्छा, सुना है नरेन्द्रबाबू बिलायतसे अच्छी तरह डाक्टरी पास करके आये हैं। किसी अच्छी जगह प्रैक्टिस शुरू कर देने पर कुछ दिन की और मोहलत लेकर बाप का ऋण क्या चुका नहीं सकते?'

उसने गर्दन हिलाकर कहा—'ऐसा संभव नहीं। सुना है, चिकित्सा करना ही उनका संकल्प नहीं है।'

विजया विस्मित होकर बोली—'तो फिर उनका संकल्प है क्या, जरा बताइये तो? इतना खर्च करके बिलायत जा कष्ट उठाकर डाक्टरी सीखने का फल ही क्या होगा? वह आदमी शायद बिल्कुल अजीब है।'

उस व्यक्ति ने जरा हँसकर कहा—'असंभव नहीं। फिर भी सुना है कि नरेन्द्रबाबू स्वयं चिकित्सा करके रोग दूर करने के बजाय इस

प्रकार की कोई दवा अविष्कार कर जाना चाहते हैं जिससे लोगोंको अधिक से अधिक फायदा पहुँचे। यह भी सुनता हूँ कि तरह-तरह के यन्त्र-वन्त्र लिये दिन-रात परिश्रम भी खूब करते हैं।'

विजया चकित होकर बोली—'यह तो और भी अच्छी बात है। पर घर-द्वार क उनके हाथ से निकल जाने पर यह सब करेंगे कैसे ? तब तो उन्हें रोजगार करना चाहिये। अच्छा, आपतो निश्चित रूप से बता सकते हैं कि बिलायत जाने की वजह से यहाँ के लोगों ने क्या उन्हें बहिष्कृत कर दिया है ?'

उसने कहा—'सो तो जरूर कर दिया है। मेरे मामा पूर्णबाबू उनके भी तो एक तरह से संम्बन्धी होते हैं फिर भी पूजा का जब तक उत्सव होता रहा, अपने घर बुलाने की उनकी हिम्मत न पड़ी। पर इससे उनका कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। अपने ही काम में मशगूल रहते हैं, समय बचने पर चित्रकारी करते हैं, घर से बाहर निकलते ही नहीं। यही उनका घर है'—कहकर तरु-पक्तियों से घिरी एक विशाल अट्टालिका की ओर अँगुली से इशारा कर दिया।

इसी समय बूढ़े दरबान ने पीछे से टूटी-फूटी बंगला में जताया कि बहुत दूर आगये, घर लौटते-लौटते शाम हो जायगी।'

वह आदमी मुड़कर खड़ा हो गया, बोला—'हाँ, बातें करते-करते काफी दूर आ गये हैं।'

उसे भी उसी बाँसके पुल से गाँव में घुमना पड़ेगा इसलिये लौटकर भी साथ-साथ आने लगा। विजया मन-ही-मन क्षणभर न जाने क्या सोचकर बोली—'तो फिर उनके लिये किसी गोतिया-कुटुम्ब के घर में भी आश्रय पाने का कोई भरोसा नहीं, कहिये ?'

उस आदमीने कहा—'बिल्कुल नहीं।'

विजया पुनः कुछ क्षण चुपचाप चलती रहने के बाद बोली—'वे किसी के भी यहाँ जाना नहीं चाहते, यह बात ठीक है। नहीं त

इस महीने के अन्त तक ही तो उन्हें घर छोड़ देने का नोटिस दिया गया है। और कोई होता तो आखिर हम लोगों से एक बार मिलने का प्रयत्न अवश्य करता।'

उस व्यक्ति ने कहा—'शायद उन्हें इसकी कोई जरूरत नहीं, सोचते होंगे, फायदा क्या! आप तो अब सचमुच ही उन्हें घर में रहने दे नहीं सकेंगी।'

विजया ने कहा—'न दे सकने पर भी कुछ दिन और रहने दिया जा भी सकता है। हजार कर्ज-वर्ज होने पर भी किसी को उसके घर से निकाल बाहर करने में तकलीफ तो सबको होती है। पर आपकी बातों से मालूम पड़ता है कि जैसे उनके साथ आपका परिचय है। कहिये, यह सच नहीं?'

वह आदमी सिर्फ हँसा, कुछ बोला नहीं। पुल के निकट वे सब आ पहुँचे थे। उसने छोटी डंगनी (मछली पकड़ने की बन्सी) को हाथ में लेकर कहा'यही हमारे गाँव में जाने का रास्ता है। नमस्कार!'—कहकर उस बाँस के पुल पर से हिलते-डुलते किसी प्रकार पार होकर सँकरे जंगली रास्ते के अन्दर अदृश्य हो गया।

बहुत दिनों के बूढ़े नौकर कन्हाईसिंह ने बचपन में विजया को गोदी में लेकर, पीठ पर लादकर पाला-पोसा था और इसीके साथ वह दरवानी के उचित अधिकार की सीमा को बहुत दूर उलङ्घन कर गया था। निकट आकर उसने पूछा—'यह बाबू कौन है बिटिया?'

पर विजया इतनी अन्यमनस्क हो चुकी थी कि बूढ़े का प्रश्न उसके कानों तक पहुँचा ही नहीं। नदी तट पर अन्धकार की धूमिल रेखा फैलती जा रही थी, उसके समस्त नीरव माधुर्य की सर्वथा उपेक्षा करके वह स्वप्नाविष्ट की तरह सिर्फ यही सोचते-सोचते रास्ता तै करने लगी—'यह आदमी था कौन, और फिर कब इससे मुलाकात होगी?'

७

रासविहारी बोले—'हमने ही नोटिस दिया है और हम ही उसे रद्द कर दें, तो फिर पाँच आदमियों में हमारी कितनी बदनामी होगी, एक बार सोचकर देखो बेटी।'

विजया ने कहा—'इसी आशय की एक चिट्ठी लिखकर क्यों नहीं उनके पास भेज देते ? मैं तो समझती हूँ कि जरूर अपमान के भय से ही यहाँ आने की उनकी हिम्मत नहीं पड़ रही है।'

रासविहारी ने पूछा—'अपमान कैसा ?'

विजया बोली—'वे जरूर सोच रहे हैं, उनकी प्रार्थना हम मंजूर नहीं करेंगे।'

रासविहारी व्यंग्य करके बोले—'है तो बड़ा अभिमानी। इसीलिये क्या अपमान को सिर पर उठाकर हम स्वयं खुशामद करके उसे घर में ठहरने दें ?'

विजया कातर होकर बोली—'इसमें भी कोई दोष नहीं है चाचा जी ! अयाचित दया करनेमें कोई लज्जा नहीं है।'

रासविहारी बोले—'ठीक है, लज्जा न सही, पर हमने समाज-प्रतिष्ठा का जो संकल्प किया है, उसका क्या होगा, यह तो बताओ ?'

विजया बोली—'उसकी तो कोई दूसरी व्यवस्था भी हम कर सकते हैं।'

रासविहारी मन ही मन अत्यन्त नाराज होकर ऊपर से जरा हँस-कर बोले—'तुम्हारे पिता काफी रुपया रख गये हैं, तुम दूसरी व्यवस्था भी कर सकती हो यह मैं समझ गया, पर इतनी बात मुझे समझा दो बेटी कि जिसे तुमने आज तक कभी आँखों से देखा नहीं, हम सबों का अनुरोध ठुकराकर उसीके लिये तुम्हें इतनी पीड़ा क्यों है ? ईश्वर की दया से तुम्हारे और भी पाँच रैयत हैं, और भी दस कर्जदार हैं, उन

सबों के लिये क्या यह व्यवस्था कर सकोगी, या ऐसा करने से ही क्या भला होगा—इसका जवाब मुझे दो तो विजया !'

विजया बोली—'आपसे तो बता दिया कि पिताजी का यह अन्तिम अनुरोध था। इसके अलावा मैंने सुना—'

'—क्या सुना है ?'

व्यंग्य के भय से उसकी चिकित्सा-सम्बन्धी अनुसन्धान की बात विजया ने नहीं बताई, सिर्फ बोली—'मैंने सुना है, वे 'वहिष्कृत' हैं, गृहहीन होने पर आत्मीय कुटुम्बी किसी के घर में उन्हें आश्रय मिलने की उमीद नहीं। इसके अलावा, 'गृहहीन' शब्द याद आते ही मुझे अत्यन्त कष्ट होता है, काकाजी।'

रासविहारी स्वर को करुणा से गद्गद् करके बोले—'तुम्हें इतनी छोटी-सी उम्र में यदि इस बात से इतना कष्ट होता है, तो मुझे इतनी बड़ी उम्र में वह कष्ट कितना अधिक हो सकता है, जरा सोचो तो ? और अपनी लंबी जिन्दगी में सबसे पहले क्या मुझे इसी अप्रिय कर्तव्य का सामना करना पड़ा है विजया ? नहीं, यह बात नहीं ! कर्तव्य हमेशा से मेरे लिये कर्तव्य ही रहा है ! उसके आगे हृदय की भावना पंगु बन जाती है। वनमाली जिस कठिन जिम्मेवारी का भार मुझ पर रख गये हैं, जीवन की अन्तिम घड़ी तक उसे ढोना ही पड़ेगा, इसमें चाहे कितनी ही मुसीबतों का सामना क्यों न करना पड़े। या तो मुझे सारी जिम्मेवारी से छुटकारा दो, नहीं तो किसी भी तरह तुम्हारा वह असंगत अनुरोध न रख सकूँगा।'

विजया सिर झुकाये चुपचाप बैठी रही। पिता के अपराध पर उसके निरपराध पुत्र को गृह-निर्वासित करने का संकल्प उसे जितना व्यथित करने लगा, उसका अनुमान लगाकर यह बूढ़ा उससे अठगुनी वेदना सहकर भी कर्तव्य-पालन में कमर कसे हुये है यह बात वह अपने मन

में ठीक तौर से ग्रहण नहीं कर सकी बल्कि यह मानों केवल एक निरुपाय हत भाग्य के प्रति बलवान की नितान्त हृदयहीन निष्ठुरता की तरह प्रतीत होने लगा। किन्तु जबर्दस्ती अपनी इच्छा को कार्य में परिणत करने की हिम्मत भी उसमें नहीं थी और यह भी उससे छिपा न था कि गँवई-गाँव में समारोह पूर्वकब्राह्म-मन्दिर की प्रतिष्ठा से यश पाने की उच्चाकांक्षा से ही वृद्ध पिता के पीछे खड़ा होकर विलास-विहारी ऐसी ज़िद्द और जबर्दस्ती कर रहा है।

रासविहारी और कुछ नहीं बोले। विजया ने क्षणभर चुपचाप रहने के बाद मौन सम्मति तो दे दी, किन्तु भीतर ही भीतर उसका पर-दुःख-कातर स्नेह-कोमल नारी-हृदय इस वृद्ध के प्रति अश्रद्धा और उसके पुत्र के प्रति घृणा से भर उठा।

रासविहारी व्यवहार-कुशल व्यक्ति थे। यह बात उनसे छिपी न थी कि जो मालिक है, उसे तर्क से सोलह आना पराजित करके भी काम लेने के वक्त आठ आने से अधिक लोभ करना ठीक नहीं; क्योंकि इस प्रकार से प्राप्त की हुई वस्तु चिरस्थाई नहीं होती। इसलिये खुशामद करके फ़ायदा उठाने का कोई अवसर है तो यही! विजया के मुँख की ओर देखकर जरा हँसकर बोले—'बेटी, तुम्हारी चीज है, तुम दान करोगी तो मैं इसमें अड़ंगा क्यों लगाऊँगा? मैंने तो सिर्फ यही दिखलाने की चेष्टा की थी कि विलास ने जो करना चाहा था वह स्वार्थ के लिये नहीं, शत्रुता से नहीं बल्कि कर्तव्य समझकर ही। एक दिन मेरी और तुम्हारे पिता की संपत्ति सब एकत्र होकर तुम दोनों के हाथ पड़ेगी। उस दिन परामर्श के लिये इस बूढ़ेको ढूँढ़े भी न पाओगी। उस दिन तुम दोनों में मत-भेद न हो, उस दिन तुम अपने पति के प्रत्येक काम को ठीक समझ-कर उस पर श्रद्धा कर सको, विश्वास कर सको—सिर्फ यही मैं चाहता हूँ। नहीं तो दान करना, दया करना वह भी जानता है, मैं भी जानता हूँ। लेकिन वह दान अपात्र को देने से कोई लाभ नहीं, सिर्फ यही मुझे

तुम्हारे सामने साबित करना है। अब समझ गई बिटिया, क्यों हम जगदीश के लड़के पर रंचमात्र भी दया नहीं करना चाहते, और क्यों वह दया बिल्कुल ही असंभव है?' कहकर वृद्ध महाशय स्नेह की हँसी का अभिनय करते हुए विजयाके मुँहकी तरफ़ ताकने लगे। इन परम सार-गर्भित एवं अकाट्य युक्तियुक्त उपदेशों के विरुद्ध तर्क करना व्यर्थ समझ कर विजया चुपचाप बैठी रही। रासविहारी फिर बोले—'अब समझ गई बेटी विजया, विलास बच्चा होकर भी कितनी दूरकी बात सोचकर काम करता है? अभी तो मैंने तुमसे कहा था कि इस काम में ही मेरे बाल सफेद हो गये हैं, पर जमीन्दारी के काम में उसकी चाल समझने में कभी-कभी मुझे भी कुण्ठित होकर सोचना पड़ जाता है।'

विजया ने सिर्फ गर्दन हिलाकर राय ज़ाहिर की, कुछ बोली नहीं।

'साढ़े चार बज रहे हैं'—कहकर रासविहारी छड़ी हाथ में लेकर उठ खड़े हुए और बोले—'इस समाज-प्रतिष्ठा की चिन्ता में विलास कितना उत्कंठित हो रहा है, यह मुँह से नहीं कहा जा सकता। उसका ध्यान-ज्ञान-धारणा सारी चीजें अभी उसी पर केन्द्रित हो गई हैं। अब ईश्वर के चरणों में मेरी केवल यही प्रार्थना है कि उस शुभ-दिन को इन आँखों से देख सकूँ।' कहकर दोनों हाथ जोड़े उन्होंने ब्रह्म के नाम पर बार-बार नमस्कार किया। दरवाजे के निकट सहसा खड़े होकर बोल उठे—'नरेन्द्र, एक बार मेरे निकट आया भी होता तो कुछ विचार करने की कोशिश की जाती, पर सो भी तो कभी—बड़ा अभागा है, बड़ा अभागा! देख रहा हूँ, बाप के स्वभाव ने सोलहो कला में उसमें जड़ जमा लिया है,—कहते-कहते वे बाहर चले गये।

उसी जगह एक भाव से बैठी हुई विजया न जाने क्या-क्या सोचती रही। अचानक बाहर की ओर नज़र पड़ते ही उसने देखा कि दिन लगभग बीत चला है। नदी-तीरकी अस्वास्थ्यजकर हवा ने मानों जबर्दस्ती

उसे आसन पर से उठा दिया और आज भी वह बूढ़े दरवान को लेकर सैर करने के बहाने बाहर निकल पड़ी।

ठीक उसी जगह बैठकर आज भी वह आदमी मछलियाँ पकड़ रहा था। बहुत दूर से विजया उसे देखकर भी नज़दीक आने पर मानो देखा ही नहीं, इस भाव से चली जा रही थी, कि कन्हैयासिंह ने पीछे से आवाज लगाई—'सलाम बाबूजी, शिकार मिला?'

उसकी बात कानों तक पहुँचते ही विजया की कनपटी तक लाल हो उठीं। जिनकी यह धारणा है कि वास्तविक मित्रता के लिये बहुत दिनों तक पर्याप्त वार्तालाप की आवश्यकता है, उन्हें याद रखना चाहिये कि यह कोई बहुत ज़रूरी नहीं है। विजया के मुड़कर खड़े होते ही वह व्यक्ति अपनी डंगनी रखकर नमस्कर करके नज़दीक खड़ा हो गया और हँसकर बोला—'हाँ, ग्राम्य वातावरण के प्रति आपका वास्तविक आकर्षण तो है; यहाँ तक कि उसके मलेरिया को भी बिना अपनाये आपका काम नहीं चलेगा।

विजया ने मुस्कराकर पूछा—'आप तो शायद अपना चुके हैं! पर देखने से तो ऐसा नहीं मालूम पड़ता।'

उस व्यक्ति ने कहा—'डाक्टरों को ज़रा सब्र करके अपनाना—होता है। इस तरह खींचातानी—'

बात खत्म होने से पहले ही विजया ने पूछा—'आप क्या डाक्टर हैं?'

वह व्यक्ति ज़रा घबड़ा-सा गया, सहसा जवाब न दे सका। किन्तु दूसरे ही क्षण अपने को सम्हालता हुआ परिहास के स्वर में बोला—'सो तो हूँ ही। एक बड़े भारी डाक्टर के हम पड़ोसी हैं। सबको ले-देकर ही तो हमारी बारी आयेगी—क्यों, ठीक है न?'

विजया क्षणभर चुप रहकर बोली—'सिर्फ पड़ोसी ही तो नहीं, वे तो आपके एक मित्र हैं, सो मैं पहले ही से अनुमान कर रही थी।

मेरी बात आपने उनसे कह दी है क्या ?'

उसने हँसकर कहा—'आप उसे एक अजीब अभागा समझती हैं यह तो पुरानी बात है, ऐसी बात तो सभी कहते हैं। इसे फिर नये सिरे से कहने की जरूरत क्या है ? फिर भी हो सका तो एक दिन वह आप से मिलने आयेगा।'

विजया मन ही मन अत्यन्त लज्जित होकर बोली—'मुझसे मिलकर उन्हें लाभ क्या होगा ? पर उनके बारे में इस तरह की बात तो मैंने आपसे कही नहीं।'

—'न कहने पर भी कहना उचित था।'

—'उचित क्यों था ?'

जिसका घर-द्वार बिक जाता है उसे सभी अभागा कहते हैं। इसे भी कहते हैं। सामने न भी कह सकें, पीछे तो कह सकते हैं।'

विजया हँसने लगी, बोली—'तब तो आप उनके अच्छे मित्र हैं !'

वह गर्दन हिलाता हुआ बोला—'सो तो ठीक है। अगर मुझे पता न होता कि आपने एक महान उद्देश्य से उसका मकान ले लिया है तो उसकी ओर से मैं ही आपको पकड़ता।।'

विजया ने सिर्फ एक बार सिर उठाकर देखा, किन्तु इस सम्बन्ध में कोई बात नहीं कही।

बात करते-करते आज वे जरा और अधिक दूर बढ़ गये थे। दीख पड़ा कि उस पार लोगों का एक झुंड खाद सिर पर लिये नरेन्द्र बाबू के घर की ओर चला जा रहा है। उनमें पचास से लेकर पन्द्रह साल तक सभी उम्र के लोग थे। उस व्यक्ति ने दिखाकर कहा—'आप जानती हैं ये सब कहाँ जा रहे हैं ? नरेन्द्र बाबू के स्कूल में पढ़ने।'

विजया ने आश्चर्यचकित होकर पूछा—'वे यह व्यवसाय भी करते हैं ? पर जहाँ तक समझ में आ रहा है बिना पैसे के ही ठीक है न ?'

वह मुस्कराता हुआ बोला—'उसे आपने ठीक पहचाना। अजीब आदमी कहीं छिपा नहीं रह सकता।' बाद में कुछ गंभीर होकर बोला—'नरेन्द्र का कहना है, हमारे देश में वास्तविक किसान नहीं हैं। लोगों ने खेती करना पैतृक पेशा समझ रखा है, इसीलिये जब जी में आया, जमीन में एक दो बार हल चलाकर बीज छोड़ दिया, और आकाश की तरफ टकटकी लगाकर बैठ गये। इसे खेती करना नहीं कहते, लाटरी डालना कहते हैं। किस ज़मीन में कब खाद डालनी चाहिए, खाद किसे कहा जाता है, वास्तव में खेती है क्या चीज—इन बातों को लोग नहीं जानते। बिलायत में डाक्टरी पढ़ने के साथ उसने यह विद्या भी सीखी थी। अच्छी बात है, एक दिन उसका स्कूल देखने चलेंगी? मैदान के बीच में वृक्ष के नीचे बाप-बेटा-दादा सबको लेकर जहाँ पाठशाला है, वहाँ?'

विजया उसी क्षण जाने के लिये तैयार हो गई किन्तु दूसरे ही क्षण कौतूहल दबाकर बोली—'नहीं रहने दीजिये।' फिर पूछा—'अच्छा, इतने बड़े मकान के रहते वे वृक्ष के नीचे पाठशाला क्यों बिठाते हैं?'

उस आदमी ने कहा—'इस प्रकार की शिक्षा तो सिर्फ़ किताब रटाकर, मुँह से बताकर नहीं दी जाती। उन्हें तो उसी वक्त खेती करना दिखाया जाता है कि यह काम बाक़ायदा सीखकर करने से दुगनी फसल, यहाँ तक कि चारगुनी पाँचगुनी फसल होती है। उसके लिये बड़े-बड़े खेत की ज़रूरत है, खेती करने की जरूरत है। कपाल पर हाथ रखकर बादलों की ओर टकटकी लगाये हाथ-पर-हाथ धरे रहने की जरूरत नहीं। अब आप समझ गईं, क्यों उसकी पाठशाला वृक्ष के नीचे बैठती है? यदि एकबार उसके स्कूल के मैदान की फ़सल देख लें तो आपकी आँखें शीतल हो जायँ, यह मैं दावे से कह सकता हूँ। अब भी तो वक्त है—आज ही चलें न—वही तो दीख रहा है।'

विजया के मुख का भाव क्रमशः गम्भीर एवं कठोर होता आ रहा था, बोली—'नहीं, आज रहने दीजिये।'

उस व्यक्ति ने स्वाभाविक रूप से कहा—'तो रहने दीजिये। चलिये, जरा आप को और आगे पहुँचा दूँ'—कहकर साथ-साथ चलने लगा। पाँच-छः मिनट तक विजया के मुँह से एक बात भी न निकली, भीतर ही भीतर मानो वह अत्यन्त लज्जा अनुभव करने लगी, और लज्जा का कारण भी सोच न सकी। वह आदमी फिर बोला—'आपने जब धर्म के लिये ही उसका घर लिया है, तब ये कुछ बीघे ज़मीन जब अच्छे काम में ही लगेगी तो क्या इतना आप आसानी से नहीं छोड़ सकतीं?' कहकर वह मन्द-मन्द मुस्काने लगा।

किन्तु प्रत्युत्तर में विजया गम्भीर होकर बोली—'ऐसा अनुरोध करने का उनकी तरफ़ से आपको कोई अधिकार मिला है?'—कहकर छिपी निगाह से देखने पर मालूम हुआ कि उस व्यक्ति के हँसते चेहरे पर परिवर्तन का कोई चिह्न नहीं।

वह बोला—'यह अधिकार देने पर निर्भर नहीं करता, लेने पर निर्भर करता है। जो अच्छा काम है, उसका अधिकार मनुष्य को ईश्वर के यहाँ से ही मिल जाता है, मनुष्य के आगे हाथ पसार कर नहीं लिया जाता। जिस दया-प्रार्थना के लिये आप मन-ही मन नाराज़ हो गई हैं, वह दया प्राप्त हो जाने पर उससे लाभ किसे होता, आपको पता है? देश के भूखे किसानों को। हमारे शास्त्र में लिखा है, ग़रीब ईश्वर की एक विशेष मूर्त्ति है। उनकी सेवा का अधिकार तो सबों को है। उस अधिकार के लिये नरेन्द्र के निकट जाने की क्या जरूरत है—कहिये?' कहकर वह हँसने लगा।

विजया चलते-चलते बोली—'पर आपके मित्र तो सिर्फ़ इसीलिये ही यहाँ नहीं बैठे रह सकेंगे?'

उस व्यक्ति ने कहा—'नहीं। परन्तु, हो सकता है वे इसका भार मुझे देकर जा सकते हैं।'

विजया के होठों पर एक हल्की हँसी की रेखा दौड़ गई; किन्तु अत्यन्त गम्भीर स्वर में बोली—'यही अनुमान मैं करती थी।'

उस आदमी ने कहा—'करने की तो बात ही ठहरी। यह सब काम पहले देश के जमींदारों का था। वे लोग ब्रह्मोत्तर* दान दिया करते थे। अब वह दान रहा नहीं, किन्तु उसकी जड़ अब तक बाकी है। इसीलिये अगर कोई दो-चार बीघे ठग लेने की कोशिश भी करता है तो वे पहले के संस्कार के वश चुप हो जाते हैं!'—कहकर वह फिर हँसने लगा। विजया ने खुद इस हँसी का साथ देना चाहा पर दे न सकी। यह सरल परिहास उसके अन्तःकरण में जाकर मानो कहीं चुभ गया। कुछ देर चुप-चाप चलती रहने के बाद वह अचानक पूछ बैठी—'आप स्वयं भी तो अपने मित्र को आश्रय दे सकते हैं!'

'पर मैं तो यहाँ रहता नहीं। शायद एक हफ्ते के बाद ही जाऊँगा।'

विजया भीतर से मानो चौंक उठी; बोली—लेकिन जब आपका घर यहीं है, तो निश्चय ही आना-जाना भी बराबर जारी रहेगा ही!'

उस व्यक्ति ने सिर हिलाते हुए कहा—'नहीं, शायद अब मुझे नहीं आना पड़ेगा।'

विजया का हृदय उथल-पुथल होने लगा। वह मन ही-मन समझ गई, इस सम्बन्ध में अब बेमतलब प्रश्न करना किसी भी तरह ठीक न होगा। फिर भी किसी तरह कौतूहल को दबा न सकी। धीरे-धीरे बोली—'यहाँ आपके घर के लोगों का भार उठानेवाले लोग तो जरूर ही होंगे, पर' वह हँसकर बोला—'नहीं, उस तरफ का तो कोई व्यक्ति नहीं है।'

* बिना लगान की जमीन

—'तो फिर आपके माँ बाप—'

—'मेरे माँ-बाप, भाई-बहन कोई नहीं—अरे, यह तो आपके घर के सामने आ पड़े । नमस्कार, मैं अब चला'—कहकर वह ठिठक कर खड़ा हो गया ।

विजया अब उसके मुँह की तरफ न देख सकी, किन्तु मृदु स्वर में बोली—'क्या अन्दर नहीं आयँगे ?'

—'नहीं, जाते-जाते मुझे अँधेरा हो जायगा । नमस्कार !' विजया हाथ उठाकर प्रति-नमस्कार करके अत्यन्त संकोच के साथ धीरे-धीरे बोली—'अपने मित्र को एकबार रासबिहारीबाबू के यहाँ जाने के लिये क्या नहीं कह सकते ?'

वह व्यक्ति विस्मित होकर बोला—'उनके यहाँ क्यों ?'

—'वे ही तो पिताजी की सारी जमीनदारी की देख-रेख करते हैं न ?'

—'यह मैं जानता हूँ । पर उनके यहाँ जाने को क्यों कह रही हैं ?'

विजया इस प्रश्न का और कोई उत्तर न दे सकी । शायद वह व्यक्ति क्षणभर स्थिर भाव से खड़ा होकर प्रतीक्षा करता रहा, बाद में बोला—'मुझे लौटते रात हो जायगी, मैं चलता हूँ'—कहकर लम्बे-लम्बे पग धरता हुआ चल पड़ा ।

८

विजया के घरसे सटे हुए बगीचे के इस तरफ का हिस्सा बहुत बड़ा था । लम्बे-लम्बे आम-कटहल के वृक्षों के नीचे उस वक्त अँधेरा घना होता जा रहा था । बूढ़े दरबान ने कहा—'बिटिया, जरा घूमकर सदर दरवाजे से होकर जाना अच्छा होता ।'

इन सारी चीजों पर ध्यान देने योग्य विजया के मन की अवस्था नहीं थी ; वह सिर्फ एकबार 'नहीं' कहकर ही झटपट अँधेरे बगीचे के

भीतर से घर की ओर चली गई। जिन दो बातों ने सबसे अधिक उसके मन पर अधिकार कर लिया था, उनमें से एक तो यह थी कि बातचीत के सिल-सिले में उसने व्यक्ति का नाम तक नहीं पूछा क्योंकि ऐसा करना स्त्रियों के लिये शिष्टाचारविरुद्ध था। दूसरा यह, कि दो दिन बाद ये कहाँ चले जायँगे, यह प्रश्न सैकड़ों बार मुँह में आकर भी सिर्फ शर्म के कारण मुख में ही अटका रह गया। इनके सम्बन्ध में एक बात ने पहले ही से विजया को आकृष्ट किया था कि ये चाहे जो भी हों, हैं पर्याप्त सुशिक्षित, एवं गँवई गाँव जन्म-स्थान होते हुए भी अपरिचित भद्र महिलाओं के साथ निःसंकोच वार्तालाप करने की शिक्षा और अभ्यास इन्हें है। गैरब्राह्म-समाजी होने के बावजूद यह शिक्षा उन्होंने कहाँ से किस प्रकार पाई—यह सोचते-सोचते घर में कदम रखा ही था कि परेश की माँ ने बताया, विलासबाबू बाहर के बैठकखाने में बहुत देर से इन्तज़ार कर रहे हैं। यह सुनते ही उसका हृदय क्रान्ति और विरक्ति से भर उठा। यह वही आदमी है जो उस दिन नाराज़ [illegible] था, और फिर नहीं आता था; किन्तु आज जिस कारण से भी आया हो, इस समय जिस व्यक्ति की चिन्ता में उसका अन्तःकरण परिपूर्ण हो गया था, उसके बारे में बगैर कुछ जाने भी, दोनों के बीच आज अचानक मन-ही-मन आकाश-पाताल का अन्तर किये बना विजया से न रहा गया! थके स्वर में उसने पूछा—'मैं घर आगई हूँ, यह उन्हें खबर दे दी गई है परेश की माँ?'

परेश की माँ ने कहा—'नहीं जीजी रानी, मैं अभी खबर देने के लिये परेश को भेजती हूँ।'

'—उनसे चाय-पानी के लिये पूछा था?'

'—अरे क्या इतना भी न कर सकूँगी? उन्होंने कहा था कि तुम्हारे लौटकर आने पर एक साथ ही चाय-पानी पियेंगे।'

विलासबाबू ही इस घरके भावी मालिक हैं, यह खबर अपने लोगों में किसी से छिपी न थी, और उसी हिसाब से आदर-सत्कार में भी कोई

त्रुटी नहीं होती थी। विजया बग़ैर और कुछ कहे अपने ऊपर के कमरेमें चली गई। चन्द मिनट बाद नीचे आते ही खुले दरवाजे से उसे दीख पड़ा कि विलास रोशनी के सामने मेज़ पर झुककर कुछ काग़ज़-पत्र देख रहा है। उसके पैरों की आहट सुनकर उसने सिर उठाया, और नमस्कार करके एकाएक गम्भीर होकर बोला—'तुम ज़रूर सोच रही होगी, मैं नाराज़ होकर ही इतने दिन नहीं आया। यद्यपि मैं नाराज़ नहीं हुआ, पर होना भी मेरे लिये अनुचित होता नहीं, यह मैं तुम्हारे सामने आज साबित कर दूँगा।'

विलास अब तक विजया को 'आप' कहकर संबोधित करता था। आज के इस आकस्मिक 'तुम' संबोधन का कारण बिल्कुल न समझ सकने पर भी विजया जो आनन्द में विभोर न हो उठी, उसके चेहरे से ऐसा अनुमान करना कोई कठिन नहीं था। पर बग़ैर कुछ कहे ही,धीरे-धीरे कमरे में प्रवेश करके नज़दीक की एक कुर्सी खीचकर बैठ गई। विलास ने उस तरफ आँख उठाकर देखा तक नहीं, बोला—'मैं सारा इन्तज़ाम करके अभी कलकत्ते से आ रहा हूँ, अब तक पिताजी से भी नहीं मिल सका। तुम निश्चिन्त होकर बैठी रह सकती हो पर मैं तो नहीं रह सकता। मुझे अपनी जिम्मेवारी का ख्याल है, एक विराट कार्य का भार सिर पर लेकर मैं किसी भी तरह निश्चिन्त नहीं रह सकता। हमारे ब्राह्म-मन्दिर की प्रतिष्ठा इस बड़े दिन की छुट्टी में ही होगी, सब कुछ ठीक कर आया हूँ, यहाँ तक कि निमन्त्रण देना तक बाकी नहीं रखा। उफ़, कल सबेरे से ही दौड़-धूप में लगा था। खैर, अब उस तरफ़ से एक प्रकार से छुट्टी मिल गई। कौन-कौन आयेंगे यह भी मैंने एक काग़ज़ पर नोट कर लिया है; एक बार पढ़कर देख लो'—कहकर विलास ने आत्म-सन्तोष की भारी साँस छोड़कर सामने पड़े कागज को विजया के आगे खिसकाकर पीठ के बल कुर्सी पर लेट गया।

फिर भी विजया ने कोई बात न की और निमन्त्रण के सम्बन्ध में भी रंचमात्र उत्कण्ठा ज़ाहिर न की; जिस तरह बैठी थी, ठीक

उसी तरह बैठी रही। कुछ देर बाद विलासविहारी विजया की चुप्पी के बारे में कुछ सचेत होकर बोला—'बात क्या है ? इस तरह चुप क्यों हो ? '

विजया धीरे-धीरे बोली—'मैं सोच रही हूँ, आप निमन्त्रण तो दे आये, अब उनसे इसके बारे में क्या कहा जाय ?'

'—इसके मानी ?'

'—मन्दिर-प्रतिष्ठा के सम्बन्ध में अब तक मैं किसी निर्णय पर नहीं पहुँच पा रही हूँ।'

विलास बिल्कुल सीधा बैठकर कुछ देर तीव्र दृष्टि से देखने के बाद बोला—'इसका मतलब क्या है ? क्या तुम सोचती हो कि इस छुट्टी के अन्दर न कर सकने पर प्रतिष्ठा फिर जल्द हो सकेगी ? वे तुम्हारी रैयत् नहीं हैं जो जब तुम्हें सुविधा होगी, तभी आकर हाज़िर हो जायेंगे ? आखिर अब तक कुछ निर्णय न कर पाने का मतलब क्या है ?'

क्रोध के मारे उसकी आँख से मानों आग बरसने लगी। विजया सिर झुकाये बहुत कुछ देर चुप-चाप बैठी रहने के बाद आहिस्ते से बोली—'मैंने सोचकर देख लिया, यहाँ यह सब समारोह करने की जरूरत नहीं ?'

विलास दोनों नेत्र फाड़कर बोला—'समारोह ! समारोह किया जायगा, यह बात तो मैंने नहीं कही ! वरन् जो स्वभाव से ही शान्त है, गम्भीर है, उसका काम चुप-चाप पूरा करने योग्य ज्ञान मुझमें है। इसके लिये तुम्हें चिन्तित होने की ज़रूरत नहीं।'

विजया उसी प्रकार मृदुस्वरमें बोली, 'इस जगह ब्राह्म-मन्दिर स्थापना करने का कोई प्रयोजन नहीं दीखता। इसलिये स्थापना न होगी।'

विलास पहले तो इस तरह हक्का-बक्का हो गया कि उसके मुख से सहसा कोई शब्द ही न निकला। बाद से बोला—'मैं जानना चाहता हूँ कि तुम वास्तविक ब्राह्म-महिला हो या नहीं ?'

विजया ने जबर्दस्त चोट से चौंककर सिर उठाकर देखा, किन्तु पल भर में ही अपने को सम्हालकर बोली—'आप पहले घर से शान्त होकर आ जायँ, फिर बात होगी—अभी रहने दें।' इतना कहकर ही वह उठने लगी, पर नौकर को चाय का सामान लेकर आते देख फिर बैठ गई। विलास ने उस तरफ देखा तक नहीं। ब्राह्म-समाजी होने पर भी उसने अपने व्यवहार को सुसंयत एवं शिष्ट बनाने की शिक्षा नहीं पाई थी, वह नौकर के सामने ही उद्दण्डभाव से बोल उठा—'हम एकबारगी ही तुम्हारे साथ सम्बन्ध तोड़ सकते है यह पता है तुम्हें?'

विजया चुप-चाप चाय तैयार करने लगी, कोई जवाब नहीं दिया। नौकर के चले जानेपर धीरे-धीरे बोली—'इस सम्बन्ध की बात-चीत मैं चाचाजी के साथ करूँगी, आपके साथ नहीं।' यह कहकर एक प्याला चाय उसकी तरफ बढ़ा दिया।

विलास उसे बगैर स्पर्श किये ही उसी बात को दुहराता हुआ बोला, 'हमारे सम्बन्ध तोड़ लेने का परिणाम क्या होगा, पता है?'

विजया बोली—'नहीं। पर चाहे जो कुछ भी हो, आपको अपनी जिम्मेदारी का जब इतना अधिक ख्याल है तो फिर मेरी इच्छा के बगैर ही जिन्हें निमन्त्रित करके अपमानित करने का आपने बीड़ा उठाया है, तो उसका भार भी स्वयं क्यों नहीं उठाते; उसमें मुझे सताने की कोशिश क्यों करते हैं?'

विलास आँखें लाल करके बड़े जोर से बोला—'मैं काम-काजी आदमी हूँ, काम ही पसन्द करता हूँ, खेल नहीं यह याद रखो विजया!'

विजया ने स्वाभाविक शान्त स्वर में जवाब दिया—'अच्छा, यह मैं नहीं भूलूँगी।'

इसके अन्दर जितना व्यंग का अंश था, उसने विलासबिहारी को एकबारगी ही पागल बना दिया। वह लगभग चीत्कार करके बोल उठा—'अच्छा, जिससे न भूल सको, वही मैं करूँगा।'

विजया ने इसका जवाब नहीं दिया, मुँह नीचा किये चुप-चाप चाय के प्याले में चम्मच डालकर चलाने लगी। उसे मौन देखकर, विलास ने स्वय भी क्षणभर मौन रहकर अपने को किसी तरह सम्हालकर पूछा—'अच्छा, तो फिर इतने बड़े मकान को किस काम में लगाया जायगा? उसे यों ही तो रख नहीं छोड़ोगी?'

इस बार विजया ने आँख उठाकर देखा, और अटल दृढ़ता के साथ बोली—'नहीं। लेकिन यह मकान ले लिया जायगा, यह भी तो अब तक निर्णय नहीं हुआ।'

जवाब सुनकर विलास मारे क्रोध के अपने को भूल गया। ज़मीन पर बड़े ज़ोर से पाँव पटककर पुनः चिल्ला उठा—'निर्णय हो चुका है, बिल्कुल हो चुका है। मैं समाज के प्रतिष्ठित व्यक्तियों को बुलाकर उनका अपमान नहीं कर सकता। यह मकान तो हमें चाहिये ही। मैं आज तुमसे बताये जा रहा हूँ कि यह करके दिखा दूँगा।' यह कहकर प्रत्युत्तर की प्रतीक्षा तक न करके बड़े वेग से कमरे से बाहर हो गया।

६

उस दिन से विजया के मन में यही आशा हर क्षण तृष्णा की तरह बढ़ती जा रही थी कि वे अपरिचित सज्जन जाने से पहले आखिर एकबार तो अपने मित्र को साथ लेकर शिफ़ारिश करने आयेंगे। उनके साथ जितनी भी बातें हुई थीं वे सबकी सब उसके हृदय में गुथ गई थीं, उनमें से एक शब्द भी वह नहीं भूली थी। उन्हीं शब्दों की माला मन-ही-मन दिन-रात घुमा-घुमाकर उसने देखा था, कि वास्तव में उसने ऐसी एक बात भी नहीं कही है जिससे उन्हें ऐसी धारणा हो कि उनके मित्र को उससे बिल्कुल भी आशा न करनी चाहिये। बल्कि उसे अच्छी तरह याद है, नरेन्द्र उसके पिता के मित्र का पुत्र है, यह उल्लेख उसने किया है। समय मिल जाने पर ऋण चुकाने

करने की शक्ति-सामर्थ्य है या नहीं—यह भी पूछा है। तो फिर जिसका सर्वस्व छिना जा रहा है, उसको क्या इतनी भी कोशिश करने की ज़रूरत नहीं? समझी जहाँ कोई भरोसा ही नहीं होता, वहाँ भी एक बार मित्र यत्न करने के लिये भाई-बन्धु कहते ही हैं। तो फिर क्या उनके ये बिल्कुल ही अजीब हैं?'

नदी-तट के रास्ते पर अब उससे मुलाकात नहीं होती। किन्तु वह सबेरे से शाम तक प्रतिदिन यही आशा लगाये रहती कि एक-न-एक बार वे आयेंगे ही। पर दिन बीतते गये, न वे आये, और न आया उनका वह अद्भुत मित्र डाक्टर!

× × × × × ×

बूढ़े रासविहारी के साथ उसकी मुलाकात होने पर, बेटे के साथ इस बीच उनकी जो कुछ बात हुई थी, उन्होंने उसका आभासमात्र भी प्रकट न होने दिया। वरन् इशारे से यही भाव दिखाने लगे मानो उनका संकल्प एक प्रकार से सिद्ध हो चुका है। इस बात को लेकर फिर और किसी तरह का आन्दोलन उठ सकता है, यह भाव मानो उनके दिल में आही नहीं पा रहा था। विजया शर्म के मारे इस बात को स्वयं छेड़ भी न सकी। अगहन का महीना बीत चला। पूस के ठीक पहले दिन ही पिता-पुत्र दोनों ने इकट्ठे दर्शन दिये। रासविहारी बोले 'बिटिया, अब तो अधिक दिन नहीं हैं, इस बीच में सब कुछ ठीक-ठाक करना होगा।'

विजया सच-मुच ज़रा विस्मित होकर बोली, 'जब तक वह स्वयं अपनी इच्छा से नहीं चले जाते, तब तक तो कुछ नहीं हो सकता।'

विलासविहारी मुँह बनाकर ज़रा हँस पड़ा। उसके पिता ने कहा, 'किसकी बात कर रही हो बिटिया, जगदीश के लड़के की? उसने तो कल ही घर ख़ाली कर दिया है!'

यह ख़बर वास्तव में विजया के मर्मस्थल पर चोट कर गई। वह उसी क्षण विलास की ओर से इस तरह मुँह फेर कर खड़ी हो गई कि

जिससे वह किसी भी तरह उसका मुँह न देख सके। इसी भाव से क्षण-भर स्तब्ध रहकर, चोट को सम्हालकर, आहिस्ते से उसने रासविहारी से पूछा—'उनकी चीज-वस्तु क्या हुई? क्या सब कुछ लेकर गये हैं?'

विलास पीछे से व्यंग के ढंग से बोला—'चीज़ भी क्या? एक टूटी-फूटी खाट, उसका भी एक पाया नदारद, उसी पर शायद डाक्टर साहब सोते थे। मैंने उसे बाहर पेड़ के नीचे फेंक दिया है, उनकी इच्छा हो तो ले जा सकते हैं—मुझे कोई आपत्ति नहीं।'

विजया चुप रह गई, किन्तु उसके मुख पर वेदना की सुस्पष्ट रेखा लक्ष्य करके रासविहारी पुत्र को फटकारने के ढंग से बोले—'यह तुम्हारा दोष है विलास। मनुष्य जैसा भी अपराधी हो, ईश्वर उसे जितना भी दन्ड दें, उसके दुख में हमें दुखी होना चाहिये, समवेदना तुम्हारे हृदय में ज़रा भी नहीं है, परन्तु बाहर से तो उसे प्रकाशित करना चाहिये। जगदीश के लड़के के साथ क्या तुम्हारी भेंट हुई थी? उसे एकबार मुझसे मिलने को कहा क्यों नहीं? देखता अगर कुछ—'

पिता की बात पूरी भी नहीं हो पायी कि पुत्र उनके इशारे की ज़रा भी परवाह किये बिना मुँह से एक अजीब ढंग की आवाज़ करके बोल उठा 'वाह पिताजी, उनसे मिलकर उन्हें निमन्त्रण देने के अलावा और कोई काम तो मुझे था नहीं। तुम क्या कह रहे हो, इसका कोई ठिकाना ही नहीं। इसके अलावा, मेरे पहुँचने से पहले ही तो डाक्टर साहब अपने ट्रंक, पिटारा, यंत्र-तंत्र के साथ चम्पत हो चुके थे। बिलायत का डाक्टर! बदमाश धोखेबाज़ कहीं का!' यह कहकर और बहुत कुछ बोलने जा रहा था, किन्तु रासविहारी छिपी आँखों से विजया के मुँह की तरफ़ देखकर क्रुद्ध स्वर में बोले—'नहीं विलास, तुम्हारी इस तरह की बात को मैं क्षमा नहीं कर सकता। अपने व्यवहार पर तुम्हें शर्म आनी चाहिये, पश्चात्ताप करना चाहिये।'

किन्तु विलास ने बिलकुल भी शर्मिन्दा या दुखी हुए बगैर जवाब दिया—'किस लिये, ज़रा सुनूँ तो? मुझे पराये दुख से दुखी होने, दूसरे के दुख को दूर करने की शिक्षा काफी मिली है, पर जो पाखण्डी घर पर आकर अपमान कर जाय, उसे मैं माफ़ नहीं करता। इतना पाखंडी मैं नहीं हूँ।'

उसके जवाब को सुनकर दोनों ही आश्चर्य-चकित हो उठे। रास-बिहारी बोले—'तुम्हारे घर चढ़कर तुम्हारा कौन अपमान कर गया? किसकी बात तुम कर रहे हो?'

विलास नकली गंभीरता के साथ बोला—'जगदीश बाबू के सुपुत्र नरेन्द्र बाबू की ही बात कर रहा हूँ पिताजी। वे ही एक दिन ठीक इसी कमरे में बैठकर मेरा अपमान कर गये थे। उस वक्त उसे पहचाना नहीं था इसीलिये—' कहकर इशारे से बिजया को दिखाकर बोला—'नहीं तो उनका भी अपमान करके क्या उसने कसूर नहीं किया—तुम लोगों को क्या इस बात का पता है?'

विजया ने चौंककर ज्यों ही मुँह फिराकर इधर देखा, विलास उसी को उद्देश करके बोला—'पूर्ण बाबू का भांजा कहकर जिसने परिचय दिया था, और तुमको तक अपमानित कर गया था, वह कौन है? उस वक्त जो तुमने उसके साथ उतनी रियायत की, वही नरेन्द्र बाबू हैं! उस समय वास्तविक परिचय देने की यदि उसमें हिम्मत होती, तब मैं जानता कि वह मर्द है! बेहया पाखण्डी कहीं का!'—कहकर दोनों ने विस्मय के साथ देखा कि विजया का सारा चेहरा क्षणभर में ही व्यथा से एकबारगी ही सूखकर फीका पड़ गया है।

१०

बड़े दिन की छुट्टी में अब देर नहीं है। इसलिये जगदीश के मकान का बड़ा हाल मन्दिर के लिये, तथा दूसरे सब कमरे कलकत्ते के मान्य अतिथियों के लिये सजाये जा रहे हैं। स्वयं विलासबिहारी उसकी देख-

रेख कर रहे हैं। साधारण निमंत्रित व्यक्तियों की संख्या भी कम न थी। यह निर्णय हुआ था कि जो विलास के ही मित्र हों, वे रासबिहारी के घर, और दूसरे व्यक्ति विजया के यहाँ ठहरेंगे। जो महिलाएँ आयेंगी वह भी वहीं ठहरेंगी। प्रबन्ध इसी प्रकार का हुआ था।

उस दिन सुबह के वक्त विजया ने नहाने के बाद नीचे के बैठकखाने में प्रवेश करते ही देखा कि आँगन के एक तरफ़ खड़े होकर परेश एक हाथ से अपनी माँ के थैले में से मुरमुरे ले-लेकर चबा रहा है और दूसरे हाथ से खूँटे में बँधी एक गाय की गर्दन सहला-सहला कर अनिर्वचनीय आनन्द अनुभव कर रहा है! गाय बड़े आराम से आँखें मूँदे, गर्दन ऊँची करके उस बच्चे की सेवा ग्रहण कर रही है।

इन दो विजातीय जीवों की मित्रता के साथ उनके हृदय की पुञ्जीभूत वेदना का क्या संबन्ध था, सो तो कहना कठिन है; किन्तु देखते-देखते अनजाने ही उसकी आँखों में आँसू उमड़ पड़े। इस घर में यही लड़का उसका सबसे अधिक आज्ञाकारी था। उसने आँखें पोंछ उसे निकट बुलाकर स्नेह-मिश्रित कौतूहल के साथ कहा—'क्यों रे परेश तेरी माँ ने शायद तुझे यही धोती खरीद दी है? छिः, यह भी कोई किनारी है?'

परेश गर्दन टेढ़ी करके, छिपी आँखों से देख अपनी किनारी के साथ विजया की साड़ी की भड़कदार चौड़ी किनारी की मन ही मन तुलना करके अत्यन्त क्षुब्ध हो उठा। उसके भाव को समझकर विजया अपनी किनारी दिखाती हुई बोली—'इस तरह की किनारी के अलावा क्या तुझे कोई अच्छी लगेगी? क्यों रे, क्या राय है तेरी?'

परेश उसी क्षण सहमत होकर बोला—'माँ कुछ खरीदना ही नहीं जानती।'

विजया बोली—'मगर मैं तुझे ऐसी ही एक धोती खरीद दूँगी। अगर तू—'

पर अगर-मगर से तो परेश को कोई प्रयोजन था नहीं। शर्मीली हँसी में मुँह को कान तक फैलाकर उसने पूछा—'कब खरीद दोगी?'

—'खरीद दूँगी, अगर तू मेरी एक बात सुने तब।'

—'कैसी बात?'

विजया ज़रा सोचकर बोली—'मगर तेरी माँ या और कोई सुन ले तो तुझे पहनने जो नहीं देंगे!'

इस संबन्ध में किसी प्रकार की विघ्न-बाधा स्वीकार करने योग्य परेश के मन की हालत नहीं थी। वह गर्दन हिलाता हुआ बोला—'माँ जानेगी भी कैसे? तुम कहो न, मैं भी सुनूँ।'

विजया ने पूछा—'तू दिघड़ा गाँव पहचानता है?

परेश हाथ उठाकर बोला—'दिघड़ा तो वह रहा। वहाँ तो मैं रेशमी कीड़े खोजने के लिये कई बार गया हूँ।'

विजया ने पूछा—'वहाँ सबसे बड़ा घर किसका है, तू जानता है?'

परेश बोला—'हाँ, बाम्हन का। वही जो एक साल 'ताड़ी' पीकर छत से गिर पड़े थे। वहीं तो गोविन्द की मुरमुरे-बताशे की दुकान है, और उधर को उसका दालान है। गोविन्द क्या कहता है, जानती हो माँजी? वह कहता है, अब सामान महँगा हो गया, एक अधेले के अढ़ाई गन्डे बताशे अब नहीं मिलेंगे, अब कुल दो गण्डे मिलेंगे। लेकिन तुम अगर एक साथ एक पैसे का मँगाना चाहो माँजी, तो मैं साढ़े पाँच गण्डे ला सकता हूँ।'

विजयाने कहा—'तू दो पैसे का बताशा खरीदकर ला सकता है?'

परेश ने कहा—'हाँ, इस हाथ में एक पैसे के साढ़े पाँच गण्डे गिनकर लूँगा और बोलूँगा—दूकानदार, इस हाथ में साढ़े पाँच गण्डे गिनकर

और रख दे। दे देगा तो फिर बोलूँगा—माँजी ने कहा है दो रख में दे। तभी दोनों पैसे हाथ में दूँगा, क्यों माँजी ?'

विजया हँसकर बोली—'हाँ, तभी पैसे देना। और दूकानदार से यह भी पूछ लेना कि उस बड़े घर में नरेन्द्रबाबू जो रहता था, सो कहाँ गया ? उससे कहना—जिस मकान में वह है, वह मुझे बता दोगे, दूकानदार ? क्यों रे, इतना कर तो सकेगा ?'

परेश ने गर्दन हिलाते हुये कहा—'हाँ, अच्छा, पैसे दो, मैं दौड़कर लिये आता हूँ।'

'—और मैंने पूछने के लिये जो कहा ?'

परेश ने कहा—'वह भी पूछ लूँगा।'

'—हाथ में बताशे पाकर भूल तो नहीं जायगा ?'

परेश हाथ फैलाकर बोला—'पहले तुम पैसे दो न माँजी ? मैं दौड़ जाऊँ।'

'—और तेरी माँ जब पूछेगी—परेश, कहाँ गया था, तो क्या कहेगा ?'

परेश अत्यन्त बुद्धिमान की तरह हँसकर बोला—'सो मैं खूब अच्छी तरह कह लूँगा। बताशे का लिफ़ाफा इस तरह धोती में छिपाकर कहूँगा—माँजी ने भेजा था ; यही उस बाम्हन नरेन्द्रबाबू की खबर लेने को गया था। तुम जल्दी पैसा दो ना ?'

विजया हँस पड़ी, बोली—'तू क्या बेवकूफ लड़का है रे परेश, जो माँके आगे झूठी बात बोलेगा ? पूछने पर यही बताना कि बताशे खरीदने गया था। मगर दूकानदार से पता ज़रूर पूछकर आना, भूलना मत, नहीं तो धोती नहीं मिलेगी, यह कहे देती हूँ।'

'अच्छा'—कहकर परेश पैसे लेकर बड़े वेग से चल पड़ा, विजया सूनी आँखों से उसी तरफ़ ताकती हुई चुपचाप खड़ी रही। जिस खबर

को जानने के कौतूहल में रंचमात्र भी अस्वाभाविकता नहीं, जिसे किसी आदमी को भेजकर बहुत दिन पहले ही आसानी से जान सकती थी, वही इस समय क्यों उसके लिये इतनी बड़ी लज्जा की बात बन गई है ? एकबार गहराईके साथ इस पर विचार करने पर इस लुका-चोरी की लज्जा में आज वह स्वयं मर जाती। किन्तु वह लज्जा उसकी चिन्ता-धारणा के साथ अनजाने ही मिलकर एकाकार हो गई थी, इसीलिये इसको अलग करके देखने की शक्ति जो किसी समय उसकी आँखों में थी, उसे आज वह भूल ही गई।

उसे कुछ पत्र लिखने थे। वक़्त गुजारने के लिये विजया कागज़-कलम लेकर मेज के सामने बैठ गई किन्तु लेखनीय विषय इस प्रकार असंगत एवं असंबद्ध होकर उपस्थित होने लगे कि कई चिट्ठियाँ लिख-लिखकर फाड़कर फेंकती गई और अन्त में कलम रख ही देनी पड़ी। परेश अब तक नहीं आया। मानसिक चञ्चलता को अब वह और न दबा सकी और छतपर चढ़कर परेश का रास्ता देखती रही। बहुत देर बाद दिखाई पड़ा कि वह दन-दनाता हुआ नदी के रास्ते से आ रहा है। विजया के पाँव काँपने लगे, छाती धड़कने लगी, किसी तरह नीचे उतर कर बाहर के कमरे में घुसते ही उसने देखा—वह लड़का बताशे का लिफाफा धोती के कोंचे में छिपा चोर की तरह पाँव दबाकर निकट आया और बताशे आगे रखता हुआ बोला—'दो पैसे के बारह गण्डे ले आया हूँ माँजी !'

विजया डरती हुई बोली—'और दूकानदार ने क्या कहा ?'

परेश [illegible] हुआ बोला—'उसने पैसे में छः गण्डे वाली बात किसी को बताने को मना कर दिया है। पता है माँजी, वह क्या कहता था—?'

विजया ने रोक कर कहा—'और उस बाह्मन नरेन्द्र बाबू की बात—'

परेश ने कहा—'वह वहाँ नहीं है, कहीं चला गया है। गोविन्द क्या कहता था माँजी, बारह गण्डे में—'

विजया अत्यन्त नाराज़ होकर रुखे स्वर में बोली—'ले जा तू अपने बारह गण्डे बताशे मेरे सामने से!'—कहकर वहाँ से खिड़की के निकट हट गई और छड़ पकड़कर बाहर की तरफ़ देखती खड़ी रही।

इस अचिन्तनीय रुखेपन को देख वह बच्चा आकाश से गिर पड़ा। वह इतनी जल्दी गया और आया, ग्यारह गण्डे की जगह कितनी चतुराई से बारह गण्डे का सौदा कर लाया, फिर भी वह माँजी को खुश न कर सका, यह सोचकर उसके क्षोभ की सीमा न रही। लिफाफ़ा हाथ में लिये मुँह लटकाये उसने कहा—'इससे ज्यादा तो वह देता नहीं माँजी!'

विजया ने इसका जवाब नहीं दिया किन्तु इस तरफ़ बगैर देखे ही वह उस बच्चे की मनोदशा अनुभव कर रही थी। इसीलिये थोड़ी देर बाद करुण-स्वर में बोली—'जा परेश, यह सब तू ही खा ले।'

परेश ने डरते-डरते पूछा—'सब?'

विजया बगैर मुँह फिराये ही बोली—'हाँ सब। उसकी मुझे ज़रूरत नहीं।'

परेश ने समझा, यह तो नाराज़गी की बात है। कुछ क्षण चुपचाप खड़े रहने के बाद अपने कपड़े की बात उसे याद आते ही एक और बात याद आ गई। आहिस्ते से बोला—'भट्टाचार्जजी से पूछ आऊँ माँजी?'

—'कौन भट्टाचार्जजी? क्या पूछ आयेगा?—' उत्सुक स्वर से यह प्रश्न करते ही विजया मुँह फिराकर रुक गई। मुँह की बात मुँह में ही रह गई, बाहर न निकली क्योंकि बरामदे के ठीक सामने ही

अकस्मात् नरेन्द्र दिखाई पड़ा, और दूसरे ही क्षण कमरे में क़दम रखते ही उसने हाथ उठाकर विजया को नमस्कार किया।

परेश बोला—'नरेन्द्र बाबू कहाँ गये हैं—'

विजया को प्रति नमस्कार का भी मौका न मिला, नितान्त लज्जा से सारा चेहरा सुर्ख हो उठा, घबड़ाकर बोल उठी—'अच्छा, जा चला जा। अब पूछने की जरूरत नहीं।'

परेश ने समझा, यह भी नाराजगी की बात है। दुखी स्वर में बोला—'काना भट्टाचार्जजी तो उनके नज़दीकवाले घर में ही रहता है माँजी। गोविन्द दूकानदार ने जो कहा—'

विजया ने सूखी हँसी हँसकर कहा—'आइये, बैठिये।'

परेश की तरफ़ देखकर बोल उठी—'तू अब जाता क्यों नहीं परेश? ज़रा-सी तो बात है, न हो तो फिर किसी और दिन पूछ आना। अभी जा।'

परेश के चले जाने पर नरेन्द्र ने पूछा—'आप नरेन्द्रबाबू की खबर जानना चाहती हैं? वे कहाँ हैं, यही तो!'

विजया की खैरियत इनकार करने में ही थी पर झूठ बोलने की आदत उसकी थी नहीं। वह किसी तरह आन्तरिक लज्जा को दबाकर बोली—'हाँ। सो तो एक दिन जानना ही पड़ेगा।'

नरेन्द्र ने पूछा—'क्यों? कोई ज़रूरत है क्या?'

यह प्रश्न उसके कानों में ठीक ताने की तरह खटका। बोली—'ज़रूरत के अलावा क्या कोई और बात नहीं जानना चाहता?'

'—कोई क्या चाहता है, क्या नहीं, इस बात को छोड़ दीजिये। पर उसके साथ तो आपका सारा सम्बंध समाप्त हो चुका है; फिर भी उसका पता क्यों लगाना चाहती हैं? क्या सारा कर्ज़ चुकता नहीं हुआ?'

विजया के चेहरे पर व्यथा का चिह्न दीख पड़ा, पर उसने जवाब नहीं दिया। नरेन्द्र स्वयं भी अपना भीतरी उद्वेग पूरी तरह छिपा न सका। फिर बोला—'यदि और भी कुछ ऋण बच रहा हो, तो मुझे जहाँ तक पता है, अब उसके पास ऐसी और कोई चीज नहीं रह गई जिससे वह बाकी कर्ज़ चुका सके। इस समय फिर उसकी खोज करना—'

—आप से किसने कहा कि कर्ज के लिये ही मैं उन्हें ढूँढ़ रही हूँ ?'

'—इसके सिवा और हो ही क्या सकता है मेरी समझ में तो नहीं आ रहा। वे भी आपको नहीं पहचानते, आप भी उन्हें नहीं पहचानतीं।'

'—वे भी मुझे पहचानते हैं और मैं भी उन्हें पहचानती हूँ।'

नरेन्द्र हँसा। बोला—'वे आपको पहचानते हैं, यह बात सच है, पर आप उन्हें नहीं पहचानतीं। मान लीजिये, मैं ही अगर कहूँ, मेरा ही नाम नरेन्द्र है, तो भी तो आप —'

विजया गर्दन हिलाती हुई बोली—'इस पर मैं विश्वास करती हूँ और कहती हूँ कि यह सच्ची बात बहुत दिन पहले ही आपके मुँह से निकलनी चाहिये थी।'

मुँह से फूँककर चिराग के बुझ जाने पर कमरे का रंग जिस प्रकार बदल जाता है, विजया के प्रत्युत्तर से लहमे भर में नरेन्द्र का चेहरा उसी प्रकार फीका पड़ गया। विजया इसे लक्ष्य करके ही फिर बोली—'अपना परिचय छिपाकर अपनी आलोचना सुनना, और लुक-छिपकर बातें सुनना इन दोनों को क्या आप एक जैसा नहीं समझते ? मैं तो समझती हूँ क्योंकि हम लोग ब्राह्म हैं।'

नरेन्द्र का उदास चेहरा इस बार मारे शर्म के एकबारगी ही काला पड़ गया। जरा चुप रहकर बोला—'आपके साथ अनेक प्रकार की

बातों के सिलसिले में मेरी अपनी बात भी ज़रूर हुई थी पर उसमें कोई बुरा अभिप्राय तो नहीं था। इच्छा भी हुई थी कि अन्तिम दिन परिचय दूँगा पर हो न सका। इससे आपकी कोई क्षति हुई है क्या ?'

यह प्रश्न यदि शुरू में ही कर दिया जाता तो इसका उत्तर भी निश्चय ही कठिन होता। पर जो आलोचना एकबार शुरू हो जाती है, अपने झोंक में वह अनेक कठिन स्थान भी पार कर जाती है। इसलिये विजया बड़ी आसानी से जवाब दे सकी। बोली—'क्षति तो एक आदमी के लिये कई तरह से हो सकती है। और यदि हो भी गई है, आप अब तो उसका कोई उपाय कर नहीं सकेंगे। इसलिये यह बात जाने दीजिये। आपसे अपने बारे में किसी बात को पूछना चाहूँ तो—'

'नाराज़ होऊँगा ? नहीं।'— कहते ही उसी क्षण प्रशान्त निर्मल हास्य से उसका समस्त मुखमण्डल उज्ज्वल हो उठा। इतने दिन इतनी बातचीत के बावजूद इस व्यक्ति का जो परिचय अब तक विजया न पा सकी थी, इस क्षणमात्र की हँसी ने उसे वह बता दिया। उसे ऐसा मालूम पड़ा जैसे उसका सारा भीतर और बाहर मानो स्फटिक की तरह बिल्कुल साफ़ है। जिसने उसके सर्वस्व पर अधिकार कर लिया है उससे इसका कुछ भी छिपा तो नहीं है, और ठीक इसीलिये ही शायद उसके मुँह की तरफ देखकर प्रश्न करने की उसे हिम्मत न पड़ी। सिर झुकाये ही उसने पूछा—'आप इस वक्त हैं कहाँ ?'

नरेन्द्र बोला—'दूर रिश्ते की मेरी एक बुआ अब भी बची हैं, उन्हीं के घर में रहता हूँ।'

'—आपके संबन्ध में जो सामाजिक प्रतिबन्ध हैं, सो क्या उस गाँव के लोगों को पता नहीं ?'

'—जरूर पता है।'

'तब ?'

नरेन्द्र ज़रा सोचकर बोला—'जिस कमरे में टिका हूँ, उसे ठीक से घर के अन्दर कहा भी नहीं जा सकता ; और मेरी हालत जानकर शायद कुछ दिनों के लिये उनके लड़के आपत्ति करेंगे भी नहीं। फिर भी अधिक दिन ठहरकर उन्हें तंग करने से काम नहीं चलेगा यह ठीक है।'—कहकर वह ज़रा रुक गया फिर बोला—'अच्छा, सच-सच तो बताइये, आप क्यों इन सब बातों की खोज ले रही थीं ? पिताजी का कुछ और ऋण बाकी रह गया है, यही तो ?'

उत्तर देने के लिये ही शायद विजया ने उसके मुँह की तरफ देखा किन्तु सहसा हाँ या ना कोई बात उसके गले से फूटी ही नहीं।

नरेन्द्र ने कहा—'पिता के ऋण को कौन नहीं चुकाना चाहता। पर आपसे सच बता रहा हूँ नामी-बेनामी ऐसा कुछ भी मेरा नहीं है जिसे बेचकर ऋण चुका सकूँ। सिर्फ एक माइक्रोस्कोप* है। उसे जब बेचूँगा तब कहीं बर्मा जाने का खर्च जुटा सकूँगा। बुआजी की हालत भी खराब ही है, यहाँ तक कि, वहाँ ... ... तक—' कहते ही वह अचानक रुक गया।

विजया की आँखों में आँसू छलक पड़े। उसने गर्दन फेर ली।

नरेन्द्र बोला—'इतनी दया यदि आप करें तो पिताजी का ऋण मैं अपने नाम पर लिख सकता हूँ। भविष्य में चुकाने के लिये जी जान से कोशिश करूँगा। आप रासबिहारी बाबू से ज़रा कह दें, तो वे अभी इस प्रसंग को लेकर ज़िद न करेंगे।'

परेश ने आकर दरवाजे के बाहर से ही खबर दी—'माँजी, माँ कह रही हैं, वक्त काफी हो गया है; महराज को भात परोसने को कह दिया जाय ?'

*दूरबीन

सामने की घड़ी की ओर देख नरेन्द्र चौंककर उठ खड़ा हुआ। लज्जित होकर बोला—'उफ़ बारह बज गये? आपको बहुत कष्ट हुआ।'

विजया ने आँसू छिपा लिये थे। बोली—'आप क्यों आये थे, सो तो बताया नहीं?'

नरेन्द्र झटपट बोला—'उसे अब रहने दीजिये।' कहकर ज्योंही जाने को तैयार हुआ कि विजया ने पूछा—'आपकी बुआजी का घर यहाँ से है कितनी दूर? अभी वहीं तो जायेंगे?'

नरेन्द्र ने कहा—'हाँ। दूर तो ज़रा है ही—लगभग दो कोस।'

विजया अवाक् होकर बोली—'इस धूप में इस वक्त दो कोस पैदल चलेंगे? जाते-जाते ही तीन बज जायेंगे।'

—'बजने दीजिये, नमस्कार!'—कहकर नरेन्द्र ने ज्योंही आगे कदम रखा कि विजया द्रुतगति से किवाड़ के सामने आकर खड़ी हो गई और बोली—'मेरा एक अनुरोध आज आपको रखना ही पड़ेगा। इस समय बगैर खाये आप किसी भी तरह नहीं जा पायेंगे।'

नरेन्द्र अत्यन्त विस्मित होकर बोला—'खाकर जाऊँगा, यहाँ?'

—'क्यों, इससे क्या आपकी जात चली जायगी?'

प्रत्युत्तर में पुनः उसी प्रकार की प्रशान्त हँसी से उसका मुख उद्भासित हो उठा। बोला—'नहीं दुनिया में मेरे लिये अब उसका भय है ही नहीं। इसके अलावा, ईश्वर मुझ पर आज बहुत प्रसन्न हैं; नहीं तो इस समय वहाँ जाने पर क्या जुटता, सो तो मैं ही जानता हूँ!'

—'तो फिर ज़रा बैठिये, मैं आ रही हूँ' कहकर विजया उसकी तरफ़ बगैर देखे ही कमरा छोड़कर चली गई।

११

भोजन लगभग समाप्त होने पर आ गया, नरेन्द्र ने कहा—'इतने समय तक स्वयं भूखी रहकर मुझे सामने बैठकर

खिलाने की कोई जरूरत तो थी नहीं। किसी देश में ऐसी प्रथा है नहीं।'

विजया ने मुस्कराकर जवाब दिया—'पिताजी कहते थे, उस देश का बड़ा दुर्भाग्य समझना चाहिये, जिस देश की स्त्रियाँ भूखी रहकर पुरुष को खिला न पायें और साथ बैठकर खायें। मैं भी ठीक यही कहती हूँ।'

नरेन्द्र ने कहा—'ऐसा क्यों कहती हैं? दूसरे देशों की बात तब तक छोड़ ही दी जाय, परन्तु अपने देश में भी बहुतों के घर खा चुका हूँ; उनके बीच भी तो ऐसी प्रथा चलते नहीं देखी है।'

विजया ने कहा—'विलायती प्रथा जिन्होंने सीखी है उनके मकान में शायद यही चलनी हो, लेकिन सबके यहाँ नहीं। आप स्वयं उस देश में बहुत दिन थे, इसलिये आप भूल कर रहे हैं, नहीं तो हम पुरुषों के सामने निकलती हैं, जरूरत पड़ने पर उनके साथ बातें भी करती हैं, फिर भी बिलकुल मेमसाहेब नहीं बन गई हैं और उनके चाल-चलन की भी हम नकल नहीं करतीं।'

नरेन्द्र ने कहा—'न नकल करने पर भी तो नकल करना उचित है। जिसमें जो अच्छाई है, उससे वह तो अपनाना ही चाहिये।'

विजया बोली—'कौन-सी अच्छाई, एक साथ बैठकर खाना?'—कहकर ज़रा हँसी, फिर बोली—'आपको पता क्या है, कि इस खिलाने में स्त्रियों का कितना ज़ोर है। मैं तो बल्कि अपनी जाति के सारे अधिकार छोड़ने को राज़ी हूँ, पर यह नहीं—यह क्या, सारा दूध तो पड़ा ही रह गया! ना-ना सिर हिलाने से काम नहीं चलेगा। आपका पेट तो बिल्कुल भरा नहीं है।'

नरेन्द्र हँसकर बोला—'मेरा अपना पेट भरा है या नहीं, सो भी आप बता देंगी! यह तो बड़ी अद्भुत बात है!'—कहकर उठ खड़ा हुआ।

यह बात सुनकर विजया स्वयं भी ज़रा हँसी तो, पर उसके मुख का भाव देख समझते देर नहीं लगी, कि वह इतना-सा दूध न पीने के कारण क्षुब्ध हो गई है।

दिन ढलने पर नरेन्द्र बिदा लेते समय अचानक बोल उठा—'एक बात पर आज मैं बहुत चकित हो गया हूँ। मुझे धूप में आपने नहीं जाने दिया, बगैर खिलाये पीछा नहीं छोड़ा, जरासा कम खाने पर दुखी हो गईं—ऐसा किस लिए सम्भव हुआ? सुनकर आप दुखी न होइये—मैं व्यंग अथवा परिहास करने के अभिप्राय से यह बात नहीं कह रहा हूँ पर मैं तब से सिर्फ़ यही सोच रहा हूँ कि ऐसा संभव हुआ किस तरह?'

विजया किसी तरह इस आलोचना से छुटकारा पाने के लिये तड़फड़ बाधा देती हुई बोली—'सभी घरों में इसी तरह होता है। इन बातों को छोड़िये, आप कब तक बर्मा जाना चाहते है?'

नरेन्द्र ने अन्यमनस्क भाव से कहा—'परसों। पर मैं तो आपका बिल्कुल ही पराया हूँ; वास्तव में मेरे दुख-सुख से आपका तो कुछ बनता-बिगड़ता नहीं तो भी आपका आचरण देखकर बाहर का कोई नहीं कह सकता कि मैं आपका नहीं हूँ। कहीं कम न खा लूँ या खाने-पीने में कोई त्रुटि न हो जाय इस डर से स्वयं आप बगैर खाये सामने बैठी रहीं। मेरे बहन नहीं, माँ भी बचपन में ही चल बसीं। मैं कह नहीं सकता, वे जीवित होतीं तो इतनी व्याकुल होतीं या नहीं; परन्तु आपके यत्न-आदर देखकर तो मैं अत्यन्त आश्चर्यचकित हो गया हूँ। पर सचमुच वास्तविकता से इसका कोई सम्बन्ध नहीं, यह भी जानता हूँ, आप भी जानती हैं, बल्कि इसको सच बताना ही आपका मजाक उड़ाना होगा—और इसको झूठ मानने की भी इच्छा नहीं होती।'

विजया खिड़की से बाहर की ओर देख रही थी ; उसी तरफ़ नज़र गड़ाये बोली—'सभ्यता भी एक वस्तु है, सो क्या आपने और कहीं नहीं देखी ?'

'सभ्यता ! शायद इसलिये ऐसा हो सकता है ।'—कहकर अचानक उसने एक साँस छोड़ी। इसके बाद हाथ उठाकर एक बार और नमस्कार करके बोला—'जिस तरह भी हो, पिताजी का ऋण चुक गया, यही मेरे लिये नितान्त सन्तोष का विषय है । आपके मन्दिर की दिन-दिन उन्नति हो । आज का दिन मुझे सदा याद रहेगा । मैं अब चला ।' —कहकर जब वह कमरे से बाहर आ गया, तब अन्दर से एक अस्फुट आवाज़ आई—'ज़रा ठहरिये—'

नरेन्द्र मुड़कर खड़ा हो गया, विजया ने मृदु स्वर में पूछा—'आपके माइक्रोस्कोप की क़ीमत कितनी है ?'

नरेन्द्र ने कहा—'खरीदने में मेरे पाँच सौ से अधिक रुपये लगे थे, पर इस समय ढाई सौ या दो सौ पाने पर भी दे दूँगा । कोई लेगा, आप पता बता सकती हैं ? बिल्कुल नया है बस यही समझ लीजिए ।'

उसका बेचने का आग्रह देखकर मन ही मन अत्यन्त व्यथित होकर विजया ने पूछा—'इतने कम में बेच देंगे, उससे क्या आपका सारा काम निकल गया है ?'

नरेन्द्र एक निश्वास छोड़कर बोला—'काम ? काम कोई नहीं निकला ।'

यह निश्वास भी विजया से छिप न सका । वह क्षणभर चुप रहने के बाद बोली—'बहुत दिनों से मुझे स्वयं एक खरीदने की लालसा है, पर वह पूरी न हो सकी । कल एक बार दिखा सकेंगे ?'

—'दिखा सकूँगा । मैं आपको सब कुछ दिखा जाऊँगा ।'

ज़रा सोचकर फिर बोला—'जाँच करवाने का वक्त तो है नहीं पर मैं निश्चित तौर पर कहता हूँ, लेने पर आप नुकसान में नहीं रहेंगी ।'

फिर ज़रा मौन रहकर बोला—'रुपया इसकी कीमत नहीं, यह ऐसी ही वस्तु है, लेकिन मेरे लिये और कोई चारा ही नहीं है, नहीं तो— अच्छा, कल मैं दोपहर को ले आऊँगा।

उसके चले जाने पर वह जितनी दूर देखा जा सका, विजया एकटक नेत्रों से देखती रही, उसके बाद लौटकर सामने की कुर्सी पर बैठ गई। उसके मन में यह भाव उठने लगा—जहाँ तक दृष्टि दौड़ सकती है, संसार मानों शून्य पड़ गया है। किसी चीज से उसे कोई मतलब नहीं, कोई भी वस्तु मानों अन्तकाल तक उसके काम न आयेगी, और उसके लिये दुख या क्षोभ उसके मन में बिल्कुल नहीं है। इस प्रकार सूनी आँखों से बाहर के वृक्ष समूह की तरफ देखती हुई मूर्त्ति की तरह स्तब्ध भाव से बैठी किस प्रकार समय काट रही थी, इसका ध्यान उसे नहीं था। कब सन्ध्या व्यतीत हो गई, कब नौकर रोशनी जला कर रख गया, इसका भी उसे पता न चला। होश में आने पर देखा, उसकी आँखे आँसुओं से तर हैं। झटपट आँसू पोंछकर हाथ से उसने देखा कि न जाने कब से बूँद बूँद करके गिरते आँसुओं से उसके सीने के कपड़े तक भींग गये है। छिः-छिः—नौकर-चाकर आते-जाते रहे हैं, शायद उन्होंने देखा हो, मन ही मन उन्होंने क्या सोचा होगा—यह सोच कर मारे शर्म के जरूरत पड़ने पर भी किसी को नज़दीक पुकारने की हिम्मत उसे न पड़ी। रात को बिछौने पर पड़ी, खिड़की खोलकर, उसी तरह बाहर अन्धेरे में ताकती रही; वस्तु-वर्ण विहीन- शून्य अन्धकार की तरह उसका सारा भविष्य उसकी आँखों में नाचने लगा। उसके बाद वह कब सो गई, यह याद नहीं, किन्तु नींद जब खुली, उस समय प्रभात की स्निग्ध किरणों से सारा कमरा भर गया था—सबसे पहले उसे याद आया वह, जिसके साथ जीवन में पाँच-छ दिन से अधिक उसने बात-चीत तक न की थी। और याद पड़ी वह अज्ञात वेदना, जो निद्रा के मध्य भी उसका पीछा न छोड़ सकी थी।

िन चढ़ने लगा। किन्तु ज्यों ही याद आता कि समस्त दिन-चर्या के मध्य आज उसकी एक आँख और एक कान कहीं अन्यत्र लगे हुए हैं तो अपने आप से ही उसे बड़ी लज्जा होने लगती। पर यह तो कुछ नहीं है, यह तो सिर्फ उसी यन्त्र को देखने के लिये मन की उत्सुकता है। एक बार उसे देख लेने के बाद ही समस्त कौतूहल निवृत्त हो जायगा, आज नहीं तो कल हो जायगा—इस प्रकार अपने आपको अनेक बार उसने समझाया, परन्तु परिणाम कुछ नहीं निकला बल्कि दिन चढ़ने के साथ साथ उत्कंठा मानो रह रह कर आशंका में परिणत होने लगी। पूस का मध्याह्न-सूर्य क्रमशः एक ओर झुकने लगा; प्रकाश के चेहरे में दिन ढलने की सूचना पाकर विजया की छाती सन्न हो गई। अब जो व्यक्ति सदा के लिये देश छोड़े चला जा रहा है, आज अगर वह इतनी दूर आने में अपना इतना समय नष्ट न कर सके, तो इसमें आश्चर्य की बात ही क्या है ? वह अपने शेष सम्बल को यदि किसी दूसरे के हाथ अधिक दाम पर बेचकर चला गया हो, तो इसमें दोष दे ही कौन सकता है ? अपने दोनों के बीच हुई अन्तिम बात-चीत को वह बार-बार पश्चाताप के साथ मन ही मन सोचने लगी—'मेरे मन की बात चाहे जो कुछ भी हो, मुख से इस सम्बन्ध में मैंने आग्रह की अधिकता को बिल्कुल ही प्रकाश नहीं किया। इसको मेरी अनिच्छा समझकर वे यदि अन्त में मुकर जायें तो मुझ जैसी गर्वीली को यह उचित ही दण्ड मिला'—यह कहकर उसके हृदय के भीतर से जो कठोर तिरस्कार बार-बार ध्वनित होने लगा, उसका जवाब उसे कहीं भी ढूँढ़े न मिला। किन्तु परेश को अथवा और किसी को किसी बहाने उनके पास भेजा जाय या नहीं, भेजने पर उनका पता मिलेगा या नहीं, वे आना स्वीकार करेंगे या नहीं—इस प्रकार के तर्कवितर्क और परेशानियों के बाद जब किसी भी तरह उसका समय नहीं कट रहा था तभी परेश ने कमरे में आकर खबर दी—'माँजी, नीचे आओ बाबू आये हैं।'

विजया का मुँह सूख गया; बोली—'कौन बाबू रे ?
परेशने कहा— 'कल जो आये थे। उनके हाथ में एक बहुत बड़ा चमड़े का बक्स है माँजी।'

'—अच्छा, तू बाबू से बैठने को कह, मैं आ रही हूँ।'

दो-तीन मिनट बाद विजया ने कमरे में प्रवेश करके नमस्कार किया। आज उसके पहनावे में, सिर के जरा सूखे बिखरे बालों में एक ऐसी विशेषता और सुश्रृङ्खलता थी, जो किसी की भी दृष्टि से नहीं बच सकती थी। कल के साथ आज के इस भेद के कारण नरेन्द्र के मुँह से कोई बात न निकली। उसकी विस्मित दृष्टि का अनुसरण करके विजया की अपनी दृष्टि जब अपनी ओर वापस आई तो मारे शर्म के वह मिट्टी में गड़ गई। माइक्रोस्कोप का बेग अब तक उसी के हाथ में ही था, उसे मेज पर रखते हुए धीरे से उसने कहा—'नमस्कार! विलायत में रहते समय मैंने चित्रकारी सीखी थी। आपको तो मैंने और भी कितनी बार देखा है, पर आज आपके कमरे में प्रवेश करते ही मेरी आँखें खुल गईं। मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ, जो भी चित्रकला जानता है, उसीको आज आपको देखकर लोभ होगा। वाह, क्या सौंदर्य है!'

विजया मन ही-मन समझ गई कि सौन्दर्य के चरणों में निष्कपट भक्त का स्वार्थ-विहीन यह निष्कलंक स्तुति अनजाने ही उच्छ्वसित हो उठा है और इस प्रकार की बात एकमात्र इसी के मुख से निकल सकती है। किन्तु फिर भी अपने सुर्ख चेहरे को वह कहाँ छिपाये, समस्त लाज-लज्जा-सहित अपने इस शरीर को वह कहाँ अन्तर्हित कर दे, यह उसकी समझ में नहीं आया। किन्तु क्षणभर बाद ही अपने को सम्हालती हुई मुँह उठाकर गंभीर स्वर में बोली—'मुझे इस तरह शर्मिन्दा करना क्या आप के लिये उचित है? इसके अलावा, एक चीज़ खरीदने के लिये आपको बुला भेजा था, चित्र खींचने के लिये तो बुलाया नहीं था।' जवाब सुनकर नरेन्द्र का मुँह सूख गया। वह लज्जा

से नितान्त संकुचित एवं कुण्ठित होकर अस्फुट स्वर में यही कहकर क्षमा माँगने लगा, 'मैंने और किसी ख्याल से नहीं कहा, मुझसे बड़ी गलती हो गई,—अब कभी मैं, इत्यादि।' उसके पश्चाताप के परिमाण को देख विजया हँसी से मुख प्रफुल्लित करके बोली—'कहाँ है, देखूँ ज़रा आपका यन्त्र?'

नरेन्द्र जैसे बच गया। 'अभी दिखाया' कहकर झटपट आगे बढ़कर अपना बक्स खोलने लगा। इस बैठकखाने में रोशनी कम होते देख विजया बग़ल के कमरे को दिखाती हुई बोली—'उस कमरे में अब भी रोशनी है, चलिये वहीं चलें।'

'अच्छा, चलिए'—कहकर बक्स हाथ में लिये गृहस्वामिनी के पीछे-पीछे बग़ल के कमरे में आ पहुँचा। एक छोटी तिपाई पर यंत्र को रखकर दोनों दो तरफ होकर दो कुर्सियों पर बैठ गये। नरेन्द्र ने कहा—लीजिये, अब देखिये, किस प्रकार इसका व्यवहार किया जाता है, यह मैं इसके बाद सिखा दूँगा।'

'इसअणुवीक्षण यन्त्र से जिनका साक्षात् परिचय नहीं, वे सोच भी नहीं सकते कि इस छोटी-सी वस्तु के भीतर से कितना बड़ा विस्मय देखा जाता है। बाहर के असीम ब्रह्माण्ड की तरह इस प्रकार की निःसीम ब्रह्माण्ड मनुष्य की एक तुच्छ मुट्ठी के अन्दर आ सकता है, उसका आभास सिर्फ़ इस यन्त्र की सहायता से ही मिल सकता है।'—इतनी सी भूमिका बाँधकर उसने विजया के ध्यान को आकृष्ट किया। विलायत में चिकित्सा-शास्त्र की शिक्षा समाप्त करने के बाद उसके ज्ञान की पिपासा इस जीवाणु-तत्व की ओर अग्रसर हुई थी। इसलिये इस ओर जहाँ इसके साथ उसका परिचय अत्यन्त घनिष्ट हो उठा था, उसका संग्रह भी अधिकाधिक हो गया था। उन सबों को अपने इस प्राणाधिक यंत्र के साथ विजया को अर्पित करने के लिये साथ लाया था। उसने सोचा था कि इन सबों को बगैर दिये सिर्फ एक यन्त्रमात्र से किसी

का क्या लाभ होगा? पहले तो विजया कुछ देख नहीं पा रही थी, सिवाय अस्पष्ट छाया और धूमराशि के। नरेन्द्र जितना ही अत्यन्त आग्रह के साथ पूछता कि यह क्या देख रही हो, उतनी ही उसे हँसी आती। उस तरफ न तो उसकी चेष्टा है, न ध्यान है। देखने का तरीका नरेन्द्र जी-जान से समझाने की कोशिश कर रहा है; प्रत्येक कल-पुर्जे को अनेक प्रकार से घुमा-फिराकर देखना आसान बनाने के लिये बाकायदा कोशिश कर रहा है; पर देखे कौन? जो समझा रहा था उसके कण्ठ-स्वर से दूसरे व्यक्ति की छाती धड़कने लग जाती थी, प्रबल निश्वास से उसके बिखरे बाल उड़कर सर्वाङ्ग को रोमांचित कर रहे थे, हाथ में हाथ स्पर्श हो जाने से शरीर अवश होता जा रहा था—भला यह देखने से उसका क्या बनता-बिगड़ता है कि जीवाणु के स्वच्छ शरीर के अन्दर क्या है, क्या नहीं? कौन मलेरिया से गाँव के गाँव उजाड़कर छोड़ता है, और कौन यक्ष्मा से घर के घर सूने कर देता है, उसे पहचानने से उसे लाभ क्या? पहचानकर भी तो वह उनसे बचाव कर नहीं सकेगी। वह तो कोई डाक्टर नहीं है। दस एक मिनट खींचा-तानी करने के बाद नरेन्द्र अत्यन्त नाराज होकर सीधे उठ बैठा बोला—'जाइये, छोड़ दीजिये इसकी आपको जरूरत नहीं। ऐसी मोटी अक्ल मैंने आज तक नहीं देखी।'

विजया जी जान से हँसी रोककर बोली—'मोटी अक्ल मेरी है, या आप समझा नहीं सकते?'

अपनी कड़ी बात पर नरेन्द्र मन ही मन लज्जित होकर बोला—'अब और किस तरह समझाऊँ, कहिये? आपकी अक्ल तो सचमुच मोटी नहीं है, पर मुझे निश्चय रूप से मालूम होता है, आप मन नहीं लगा रही हैं। मैं बक-झक कर मर गया, और आप झूठ-मूठ उसमें आँख भिड़ाये मुँह नीचा करके सिर्फ हँसती हैं।'

'—कौन कहता है, मैं हँसती हूँ?'

—'मैं कह रहा हूँ।'

—'यह आपकी भूल है।'

'—मेरी भूल है? अच्छा, ठीक है, पर यन्त्र की तो भूल नहीं है, तो फिर क्यों नहीं देख पाई?'

'—यन्त्र आपका खराब है इसीसे।'

नरेन्द्र विस्मय से अवाक् होकर बोला—'खराब! आपको पता होना चाहिये, इस तरह का पावरफुल माइक्रोस्कोप यहाँ अधिक लोगों के पास नहीं है। इस प्रकार स्पष्ट दीखता—' कहकर अपनी आँखों से एकबार जाँचने के लिये अत्यन्त व्यग्रता से झुकते ही विजया के माथे से उसका माथा टकरा गया।

'—उफ' करके विजया माथा हटाकर उसे हाथ से सहलाने लगी। नरेन्द्र घबड़ाकर कुछ कहना ही चाहता था कि वह हँस कर बोली—माथा टकराने से क्या होता है जानते हैं? सींग निकलती है।'

नरेन्द्र भी हँसा। बोला—'अगर ऐसी बात है, तो आपके माथे से ही उसका निकलना उचित है।'

—'क्यों नहीं! आपके इस पुराने टूटे-फूटे यंत्र को अच्छा न कहने से मेरा माथा क्या सींग निकलने लायक हो जायगा?'

नरेन्द्र हँसा तो सही, पर उसका मुँह सूख गया। गर्दन हिलाता हुआ बोला—'सच बता रहा हूँ आपसे, टूटा नहीं है; मेरे पास कुछ न होने के कारण ही आपको शक हो रहा है कि मैं ठगकर पैसा लेने की कोशिश कर रहा हूँ, परन्तु आपको बाद में पता लग जायगा।'

विजया बोली—'बाद में पता लगने से ही क्या होगा, बताइये? उस वक्त आपको मैं पाऊँगी कहाँ?'

नरेन्द्र तिक्त स्वर में बोला—'तो आपने फिर क्यों कहा कि आपको लेना है? क्यों मुझे झूठ-मूठ की तकलीफ़ दी?'

विजया गंभीर भाव से बोली—'उस वक्त आपने ही क्यों नहीं बताया कि यह टूटा है ?'

नरेन्द्र अत्यन्त नाराज़ होकर बोल उठा—'बार-बार कह रहा हूँ, टूटा नहीं है, फिर भी आप कहती हैं टूटा है ?'

पर दूसरे ही क्षण गुस्सा सम्हालकर उठ खड़ा हुआ और बोला—'अच्छा, यही सही। मैं अब और बहस करना नहीं चाहता। इसे टूटा ही रहने दीजिये ; आपने सिर्फ मेरी इतनी क्षति की कि अब कल में जा न सकूँगा। लेकिन सभी आप ही की तरह अन्धे नहीं हैं। कलकत्ते में इसे बड़ी आसानी से बेच सकता हूँ, सो जान लीजिये। अच्छा, अब चलता हूँ।' कहकर उस यन्त्रको बक्स में रखने की चेष्टा करने लगा।'

विजया गंभीर भाव से बोली—'अभी कैसे चले जायेंगे ? आपको भोजन करके जाना होगा।'

'—नहीं, उसकी ज़रूरत नहीं।'

'—ज़रूरत तो ज़रूर है।'

नरेन्द्र मुँह उठाकर बोला—'आप मन ही मन हँस रही हैं। मुझ से मज़ाक कर रही हैं क्या ?'

'—कल जब भोजन के लिये कहा था, तो क्या मज़ाक किया था ? यह नहीं हो सकता, आपको ज़रूर भोजन करके जाना होगा। ज़रा बैठिये, मैं अभी आई'—कहकर विजया हँसी रोकते-रोकते समस्त कमरे को अपनी रूप के तरङ्ग में बहाती हुई बाहर चली गयी। पाँचेक मिनट के बाद ही वह अपने हाथ में जलपान की तश्तरी तथा नौकर के हाथ चाय की सामग्री लिये वापस आई। तिपाई को खाली देखकर बोली—'इसी बीच आपने बन्द भी कर दिया, गुस्सा तो आपको भी कम नहीं है !'

नरेन्द्र ने उदास स्वर में जवाब दिया—'आपको लेना नहीं, इसमें गुस्सा किस बात का ? पर सोचें तो ज़रा, इतनी बड़ी भारी चीज़ इतनी

दूर लाद कर लाना, फिर लाद कर ले जाना इसमें कितनी तकलीफ़ होती है !'

तश्तरी को मेज पर रखकर विजया बोली—'सो हो सकता है। पर आपने तकलीफ़ मेरे लिये तो की नहीं है, की है अपने लिये। अच्छा, खाने बैठिये, मैं चाय तैयार किये देती हूँ।'

नरेन्द्र को पूरी तरह बैठे देखकर वह फिर बोली—'अच्छा, न हो तो मैं ही ले लूँगी, आपको लादकर ले न जाना पड़ेगा। आप खाना शुरू कर दीजिये।'

नरेन्द्र अपने को अपमानित समझकर बोला—'मैं आपसे दया की भीख नहीं माँग रहा।'

विजया बोली—'पर जिस दिन मामा की तरफ़ से बोलने आये थे उस दिन तो माँगी थी।'

'—वह दूसरे के लिये थी अपने लिये नहीं ! मेरी ऐसी आदत नहीं है।'

यह बात कहाँ तक सच्ची है, यह विजया से छिपी नहीं थी। इसीलिये उसका मन कचोट उठा ; वह बोली—'जो कुछ भी हो, उसे आपको लौटाकर न ले जाना पड़ेगा। वह यहीं रहेगा। अच्छा, खाने बैठिये।'

नरेन्द्र ने संदिग्ध स्वर में पूछा—'इसके मानी ?'

विजया बोली—'कुछ तो है ही।'

जवाब सुनकर नरेन्द्र क्षणभर अवाक् होकर बैठा रहा। शायद मन ही मन इसके कारण का उसने पता लगाया, और दूसरे ही क्षण एकाएक अत्यन्त क्रुद्ध होकर बोल उठा—'वह क्या है, सो ही मैं आपसे साफ़-साफ़ सुनना चाहता हूँ। आप क्या इसके खरीदने के बहाने अपने पास मँगवा कर जब्त करना चाहती हैं ? उसे भी क्या पिताजी ने आपके

पास बंधक रखा था ? देख रहा हूँ, तब तो आप मुझे भी रोककर रख सकती हैं, बेधड़क कह सकती हैं, पिताजी मुझे भी आपके पास बन्धक रख गये हैं।'

विजया का मुँह लाल हो उठा। दूसरी तरफ़ मुँह फेरकर बोली—'कालीपद तू, यहाँ खड़ा क्या कर रहा है ? उन चीज़ों को नीचे रखकर पान ले आ।'

नौकर केटली आदि को मेज के एक किनारे रखकर चला गया। विजया चुपचाप सिर झुकाये चाय तैयार करने लगी, और पास की कुर्सी पर नरेन्द्र गुस्से में अपना-सा मुँह बनाये बैठा रहा।

१२

सृष्टि-तत्त्व के अज्ञेय व्यापार के सम्बन्ध में विजया बड़े-बड़े विद्वानों के मुख से अनेक आलोचनाएँ, अनेक गवेषणाएँ सुन चुकी थी; किन्तु उसका जो अंश ज्ञेय है उसका कहाँ से आरम्भ होता है, उसके कार्य क्या हैं उसकी प्रकृति-आकृति कैसी है, क्या इतिहास है, इस प्रकार की दृढ़ एवं सुस्पष्ट भाषा में बोलते और कभी उसने सुना है, यह उसे स्मरण नहीं आया। जिस यन्त्र को उसने अभी कुछ देर पहले टूटा कहकर मज़ाक उड़ाया था उसीकी सहायता से कैसी-कैसी अपूर्व एवं अद्भुत घटनाएँ उसने देखीं ! इस कमज़ोर और पागल आकृति के व्यक्ति ने डाक्टरी पास की है, इस पर भी विश्वास करने को जी नहीं चाहता। पर सिर्फ़ इतना ही नहीं। जीव के संबन्ध में उसके ज्ञान की गंभीरता, उसके विश्वास की दृढ़ता, और स्मरण रखने की उसकी असाधारण शक्ति का परिचय पाकर वह विस्मय से अवाक् हो गई। और साथ ही एक सामान्य व्यक्ति की तरह उसे भी नाराज़ कर देना कितना आसान है ! वह कितनी ही बातें सुन रही थी और कितनी ही उसके कानों में प्रवेश भी नहीं कर रही थीं। वह सिर्फ़ मुँह की ओर ताकती हुई

चुपचाप बैठी थी। अपने झोंक में जब वह आप ही बके जा रहा था, शायद श्रोता उस वक्त उसके त्याग, उसकी सत्यता, उसकी सरलता की बात मन ही मन सोच-सोच कर स्नेह, श्रद्धा और भक्ति में विभोर हो रहा था।

अचानक नरेन्द्र की समझ में आया कि वह झूठ-मूठ बकता जा रहा है। बोला—'आप कुछ भी नहीं सुन रही हैं।'

विजया चौंककर बोली—'सुन तो रही हूँ।'

'—क्या सुन रही हैं बताइये तो ?'

'—वाह, क्या एक दिन में ही सब कुछ सीख जाते हैं ?'

नरेन्द्र ने हताश होकर कहा—'नहीं, आप कुछ नहीं सीख सकेंगी। आप जैसा लापरवाह व्यक्ति तो आज तक मैंने नहीं देखा।'

विजया रंचमात्र भी प्रभावित न होकर बोली—'क्या एक ही दिन में आदमी सब कुछ सीख जाता है ? आप भी क्या एक ही दिन में सीख गये थे ?'

नरेन्द्र ठठाकर हँस पड़ा और बोला—'पर आप सौ साल में भी नहीं सीख सकेंगी। इसके अलावा, यह सब आखिर सिखायेगा ही कौन ?'

विजया मुँह दबाकर हँसती हुई बोली—'आप। नहीं तो यह टूटा हुआ यन्त्र लेगा ही कौन ?'

नरेन्द्र ने गंभीर होकर कहा—'आप को इसे न लेने की ज़रूरत है और न मैं सिखा ही सकूँगा।'

विजया ने कहा—'तो फिर चित्रकारी ही सिखा दें। वह तो सीख सकूँगी ?'

नरेन्द्र उत्तेजित होकर बोला—'सो भी नहीं। जिस विषय में मनुष्य नहाना-खाना तक भूल जाता है, उसीमें जब मन न लगा

सकीं, तो क्या चित्रकारी में लगा देंगी ? असंभव है।'

'—तो फिर चित्रकारी भी न सीख सकूँगी ?'

'—नहीं।'

विजया नकली गम्भीरता के साथ बोली—'कुछ भी न सीख सकने पर सिर में सींग निकलेगी ?'

उसके मुख का भाव और उसकी बात पर नरेन्द्र बड़े ज़ोर से हँस पड़ा। बोला—'यही आपके लिये उचित दण्ड है।'

विजया मुँह फेरकर हँसी को छिपाती हुई बोली—'सो ही तो। आपको सिखाने की योग्यता नहीं, यही क्यों नहीं कहते। लेकिन ये नौकर-चाकर क्या कर रहे हैं, चिराग क्यों नहीं जला जाते? ज़रा ठहरिये, मैं चिराग जलाने को कह आऊँ।'—कहकर बड़े वेग से उठकर दरवाजे की चिक खिसकाते ही अचानक मानों भूत देखकर ठिठक गई। सामने ही बैठकखाने में दो कुर्सियों पर दखल करके पिता-पुत्र रासबिहारी व विलासबिहारी डटे हुए हैं। विलास के मुँह पर मानों किसी ने काली स्याही पोत दी हो। विजया ने अपने को सम्हाल आगे बढ़कर पूछा—'आप कब आये चाचाजी ? मुझे पुकारा क्यों नहीं ?'

रासबिहारी सूखी हंसी हँसकर बोले—'करीब आधा घण्टा आये गया बिटिया। तुम उस कमरे में बातचीत में मशगूल थीं, इसलिये पुकारा नहीं। वही शायद जगदीश का लड़का है ? वह क्या चाहता है ?'

बगल के कमरे में शब्द न पहुँच जाय, विजया इस प्रकार मृदु स्वर में बोली—'एक माइक्रोस्कोप बिक्री करके वे बर्मा जाना चाहते हैं, सो ही दिखा रहे थे।'

विलास मानों ठीक गरजकर बोल उठा—'माइक्रोस्कोप! ठगने की उसे और जगह न मिली!'

रासबिहारी लड़के को मिली फटकार बताते हुए बोले—'ऐसी बात

क्यों ? उसके उद्देश्य का तो हमें पता नहीं। अच्छा भी तो हो सकता है।'

विजया के मुँह की तरफ़ देख मन्द मुस्कान के साथ गर्दन हिलाते हुए बोले—'जिस बात का पता नहीं, उस सम्बन्ध में अपनी राय जाहिर करना मैं ठीक नहीं समझता। उसका उद्देश्य बुरा नहीं भी तो हो सकता है—क्यों बिटिया ?'—कहकर जरा रुक गये, फिर बोले—'ज़रूर निश्चित-रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता, यह भी ठीक है। पर, वह जैसा भी हो, उससे हमें ज़रूरत क्या है ? दूरबीन रहने पर जब-तब दूर की चीजें देखने में काम आ भी सकती है। अरे, कौन है, कालीपद ? उस कमरे में रोशनी करने जा रहे हो ? वहाँ बैठे हुये बाबू से साफ़ कह आना कि हम खरीद नहीं सकते—वे जा सकते हैं।'

विजया डरती हुई बोली—'मैंने उनसे कहा है, मैं लूँगी।'

रासविहारी जरा अचम्भित होकर बोले—'क्यों लोगी ? उसकी जरूरत क्या है ?'

विजया चुप रही।

रासविहारी ने पूछा—'वे कितनी कीमत बता रहे हैं?'

—'दो सौ रुपये।'

रासविहारी दोनों भौंहें फैलाकर बोले—'दो सौ ? दो सौ रुपये चाहता है ? तब तो विलास बहुत—क्यों विलास, कालेज में तुम्हारे एफ० ए० केमिस्ट्री क्लास में इस तरह के तो अनेक दूरबीन लुढ़कते रहते हैं—दो सौ रुपये एक माइक्रोस्कोप की कीमत ? कालीपद, जा—उन्हें जाने को कह दे—यह सब चाल यहाँ नहीं चलेगी।'

पर जिससे कहना है, वह तो स्वयं ही अपने कानों से सारी बातें सुन रहा है, इसमें रत्ती भर भी सन्देह नहीं। कालीपद को उस ओर

जाने को उद्यत देख विजया उससे शान्त एवं दृढ़ स्वर में बोली—'तुम सिर्फ रोशनी रख आओ, जो कहना होगा मैं स्वयं ही कहूँगी।'

विलास ने ताना देते हुए पिता से कहा—'क्यों पिताजी तुम नाहक अपमानित क्यों होते हो? उन्हें शायद अब भी कुछ देखना बाकी रह गया है।'

रासविहारी कुछ बोले नहीं, पर मारे क्रोध के विजया का मुँह लाल हो उठा। विलास उसे देखकर भी बोल पड़ा—'हमने भी बहुत से माइक्रोस्कोप देखे हैं पिताजी, पर हो-होकर हँसने की बात तो कभी किसी में नहीं पाई।'

कल खिलाने की बात भी वह जान गया था, और आज जोर की हँसी भी उसने अपने कानों से सुनी थी। विजया की आज की सजावट भी उसकी आँखों ने देखी ही है। ईर्ष्यारूपी विष की ज्वाला में वह इस प्रकार जल कर मरता जा रहा था कि आगे-पीछे का उसका ज्ञान भी लुप्त हो गया था। विजया उसकी तरफ से बिल्कुल दूसरी तरफ फिर-कर, रासविहारी से बोली—'मुझसे क्या आपको कोई खास बात कहनी है चाचाजी?'

रासविहारी छिपेतौर पर पुत्र की ओर एक कनखी भरकर स्निग्ध स्वर में विजया से बोले—'बात तो कहनी ही है बिटिया। पर उसके लिये जल्दी क्या है?'

फिर जरा रुककर बोले—'और, मैंने सोचकर देखा है, उन्हें जब वचन दे चुकी हो, तब तो जैसा भी हो उसे लेना ही पड़ेगा। दो सौ रुपया अधिक नहीं, वचन का मूल्य अधिक है! न हो तो उन्हें कल एक बार आकर रुपये ले जाने को कह दो बेटी?'

विजया ने इस प्रश्न का जवाब दिये बगैर ही पूछा—'आप के साथ क्या कल बात न हो सकेगी चाचाजी?'

रासविहारी जरा विस्मित होकर बोले—'क्यों बिटिया ?'

विजया क्षणभर स्थिर रही, दुविधा-संकोच को बलपूर्वक ठेलती हुई बोली—'उन्हें रात हो रही है, फिर बहुत दूर जाना भी है। उनके साथ मुझे कुछ बातें करनी हैं।'

उसकी इस गुश्ताखी से वृद्ध मन ही मन अवाक् हो गये फिर भी बाहर उसे अणुमात्र भी जाहिर न होने दिया। दृष्टि उठा कर देखा कि पुत्र के दोनों नेत्र अन्धकार में हिंस्र पशु की आँखो की तरह चमक रहे हैं, यहाँ तक कि वह कुछ कहने की चेष्टा में अपने आप से युद्ध कर रहा है। धूर्त रासविहारी को स्थिति भाँपते पलमात्र की देर न लगी, कनखी से उसे रोककर प्रफुल्ल मुख से हँसते हुए बोले—'ठीक तो है बिटिया, मैं कल सबेरे ही फिर आऊँगा। विलास, अँधेरा होता जा रहा है बेटा, चलो, हम चलें।'—कहकर उठ खड़े हुए और लड़के को अपनी बाँह से एक मीठा-सा धक्का देकर उसके रुके हुए दुर्दमनीय क्रोध के उबलने से पहले ही उसे साथ लेकर बाहर निकल गये।

विजया ने विलास की ओर अब तक नज़र नहीं डाली थी। इसलिये उसके मुख का भाव और आँखों की चितवन अपनी आँखों से न देख-कर भी मन-ही-मन सब कुछ अनुभव करके बहुत देर तक कठपुतली की तरह खड़ी रही।

कालीपद ने इस कमरे में रोशनी जलाने के लिए आने पर कहा—'उस कमरे में दिया रख आया हूँ माँजी।'

'अच्छा'—कहकर विजया अपने को सम्हालकर दूसरे ही क्षण दरवाजे की चिक हटा, धीरे-धीरे इस कमरे में आ पहुँची। नरेन्द्र सिर झुकाये कुछ सोच रहा था, वह उठ खड़ा हुआ। उठते निःश्वास को दबाने की उसकी विफल चेष्टा भी विजया से छिपी न रही। ज़रा चुप रह कर नरेन्द्र ने दुख के साथ कहा—'इसे मैं अपने साथ ही लिये जा रहा

हूँ, पर आज का दिन आपका बिल्कुल खराब बीता। क्या पता, किसका मुँह देखकर आज सबेरे उठी थी, आपको बहुत-सी कड़वी बातें मैंने भी सुनायी हैं, वे भी सुना गये हैं।'

विजया का हृदय उस वक्त भी जल रहा था, मुँह उठाकर देखते ही उसके अन्तर की दाह उसकी दोनों आँखों में धधक उठी; अविचल स्वर में बोली—'उसका मुँह देखकर ही मानों रोज़ मेरी नींद खुलती है। आपने सारी बातें अपने कानों से सुनी हैं इसलिये कह रही हूँ कि आपके सम्बन्ध में उन्होंने जो-जो असम्मान-जनक बातें कही हैं, वह उनकी [illegible] चेष्टा है। मैं कल उन्हें यह बता दूँगी।'

अतिथि के असम्मान से उसे किस तरह चोट लगी, यह नरेन्द्र समझ गया था। किन्तु शान्त सहज स्वर में बोला—'जरूरत क्या है? इन चीजों का उन्हें ज्ञान नहीं, इसीलिये उन्हें सन्देह हो गया, नहीं तो मुझे अपमानित करने में उनका कोई लाभ नहीं है। आपको स्वयं भी तो पहले अनेक कारणों से सन्देह हुआ था, सो क्या अपमान करने के लिये? वे आपके अपने हैं, हित-चिन्तक हैं, मेरे लिये उन्हें दुखी न करें। लेकिन रात होती जा रही है, मैं चलता हूँ।'

'—कल या परसों एकबार आ सकेंगे?'

'—कल या परसों? पर अब तो समय नहीं मिलेगा। कल मैं जा रहा हूँ। यद्यपि कल ही बर्मा नहीं जा सकूँगा; कलकत्ते में भी कई दिन लगेंगे, परन्तु अब मुलाकात की —'

विजया की आँखों में आँसू उमड़ पड़े, न वह मुँह उठा सकी, न कुछ कह सकी! नरेन्द्र स्वयं ही जरा हँसकर बोला—'आप स्वयं इतना हँसा सकती हैं, और अपने आदमी की एक मामूली-सी बात पर आप इतनी नाराज हो गईं? मैं ही बल्कि एकबार नाराज होकर आपको कम अक्ल आदि न जाने क्या-क्या कह चुका हूँ; पर उससे तो नाराज हुई नहीं, बल्कि मुँह दबाकर हँस रही थीं जिसे देख मुझे भी और गुस्सा आ गया

था। किन्तु आपको मैं हमेशा याद रखूँगा 'आप बहुत हँसा सकती हैं।'

वर्षा के निःशेष होने पर एक आकस्मिक हवा के झोंक से जिस प्रकार बूँदे पत्तों पर से झड़ पड़ती हैं, उसी प्रकार अंतिम बात पर आँसुओं के कुछ बिन्दु विजया की आँखों से टप्-टप् कर भूमि पर ढुलक पड़े। पर कहीं हाथ उठाकर पोंछने की चेष्टा में उस व्यक्ति की दृष्टि न पड़ जाय, इस भय से चुपचाप सिर झुकाये स्थिर होकर खड़ी रही।

नरेन्द्र बोलने लगा—'इसे ले न सकने के कारण आप दुखी हैं'—कहकर सहसा बीच में ही रुक गया, व्यवहारिक ज्ञान-विहीन वैज्ञानिक पलक मारते ही एक अजीब हरकत कर बैठा। अचानक हाथ से विजया की ठोडी पकड़, उसे ऊँची करके विस्मय के साथ बोला—'यह क्या, आप रो रही हैं?'

बिजली की तरह विजया दो कदम पीछे हट गई और आँखे पोंछ लीं। नरेन्द्र ने हक्का-बक्का-सा होकर केवल यह पूछा—'क्या हो गया?'

यह सब व्यापार उस बेचारे की बुद्धि से परे की बात है। वह जीवाणुओं को पहचानता है, उनके नाम-धाम, जात-पाँत कोई भी विषय उससे अज्ञात नहीं। उनके कार्य-कलाप और रीति-नीति के संबन्ध में उससे कभी एक रंचमात्र भी भूल नहीं होती, उनके आचार-व्यवहार का सारा हिसाब उसकी अँगुलियों पर है—पर यह क्या? जो मूर्ख कहने और गाली देने पर छिपकर हँसती है और श्रद्धा, कृतज्ञता से विभोर होकर प्रशंसा करने पर फूट-फूटकर रोती है—ऐसे अद्भुत प्रकृति के जीव को लेकर संसार में ज्ञानी मनुष्यों का स्वाभाविक कारोबार चलता किस तरह है? वह क्षणभर अवाक होकर खड़ा रहा, बाद में आहिस्ते से उसके बेग हाथ में लेते ही विजया रूखे स्वर में बोल उठी—'वह मेरा है, आप उसे रख दें।'—और फिर रुलाई को अब रोकने में असमर्थ हो तेज़ी के साथ कमरा छोड़ कर चली गयी।

उसे नीचे रख कर नरेन्द्र हक्का-बक्का हो दो तीन मिनट तक खड़े रहने के बाद बाहर आकर देखता है—कहीं कोई नहीं। कुछ देर और चुपचाप इन्तजार करके अन्त में खाली हाथ अन्धेरे में रास्ता पकड़ चल पड़ा।

विजया ने वापस आकर देखा, बेग तो है, पर उसका मालिक नहीं है : वह रुपये लाने अपने कमरे में गयी थी; किन्तु बिस्तर में मुँह छिपा कर रुलाई को सम्हालने में कितना समय व्यतीत हो गया, इसका उसे होश ही नहीं रहा। पुकार सुनकर कालिपद बाहर आया। प्रश्न सुनकर जबानी ही संसारी कामों की एक लम्बी तालिका दाखिल करके कहा—'मैं अन्दर था। पता नहीं बाबू जी कब चले गये।' दरवान कन्हाई सिंह आकर बोला—'मैं अरहर की दाल उतार कर रोटी बनाने में लगा था। किस तरह बाबू जी चुपके से निकल गये यह मुझको मालूम ही नहीं पड़ा।'

१३

विलासविहारी की प्रचण्ड कीर्ति फैल गयी—गँवई गाँव में ब्रह्म-मन्दिर की स्थापना का शुभ-दिवस निकट आ गया। एक-एक कर सम्मान्य अतिथियों का समागम होने लगा। सिर्फ कलकत्ते के ही नहीं, आस-पास के भी दो-चार व्यक्ति परिवार सहित आ धमके। कल वही शुभ दिन है। आज शाम को रासविहारी ने अपने निवास-भवन में एक प्रीति-भोज का आयोजन किया था।

संसार में स्वार्थ-हानि की आशंका किस-किस व्यावहारिक व्यक्ति को किस प्रकार कुशाग्र-बुद्धि और दूरदर्शी बना छोड़ती है, सो निम्न-लिखित घटना से समझ में आ जायगा।

आये हुये उन निमंत्रित व्यक्तियों के बीच बैठ कर वृद्ध रासविहारी अपनी सफेद दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए अध-मुन्दी आँखों से अपने बाल-सखा स्वर्गीय बनमाली का उल्लेख करके गम्भीर स्वर में बोलने

लगे—'ईश्वर ने उन्हें असमय में बुला लिया, उनकी मङ्गलमयी इच्छा के विरुद्ध मेरी कोई शिकायत नहीं; पर वह मुझे किस स्थिति में छोड़ गया है यह आप लोग मेरे बाह्य व्यवहार को देख अनुमान भी नहीं कर सकते। यद्यपि हम दोनों के मिलन की घड़ी दिन-प्रति दिन निकट होती आ रही है, इसका आभास में प्रतिक्षण पाता हूँ, फिर भी उसी एकमात्र अद्वितीय निराकार ब्रह्म के श्रीचरणों में यही प्रार्थना है कि वे अपनी असीम करुणा से उस घड़ी को और सन्निकट कर दें।' यह कह कर कुर्ते की बाँह में अपने नेत्र पोंछ डाले। इसके बाद कुछ देर तन्मयता का भाव अभिनय करते हुए मौन रहे, पुनः अपेक्षाकृत प्रफुल्ल स्वर में बोलने लगे। अपने बचपन की खेल-कूद, किशोर अवस्था में पढ़ने-लिखने तथा युवावस्था में सत्य-धर्म स्वीकार करने का इतिहास विवरण करके बोले—'किन्तु वनमाली का कोमल हृदय गाँव का अत्याचार सहन न कर सका। वे कलकत्ते चले गये। पर मैंने सारे अत्याचारों को बर्दाश्त करके गाँव में ही रहने की प्रतिज्ञा की। उफ्—कैसा अत्याचार! फिर भी मन-ही-मन कहता था, सत्य की विजय होगी ही। वही शुभ दिन आज उपस्थित है इसीलिये यहाँ इतने दिन बाद आप लोगों की पद-धूलि पड़ी है। वनमाली आज हम सबों के बीच नहीं रहे। दो दिन पहले ही वे चले गये। पर आँख मूँदते ही मुझे दीखता है, वह देखिये, वे ऊपर से आनन्द में मन्द-मन्द मुस्का रहे हैं।' यह कहकर वे पुनः आँखें मूँदकर स्थिर हो गये।

सभी उपस्थित व्यक्ति उत्तेजित हो उठे। विजया की आँखों में आँसू छल-छला आये। रासविहारी आँखें खोल सहसा दाहिना हाथ फैलाकर बोल उठे, 'यही उनकी इकलौती पुत्री विजया है। पिता के सभी गुण इसमें मौजूद हैं, पर कर्तव्य में कठोर! सत्य में निर्भीक! स्थिर! और यह मेरा पुत्र विलास विहारी है। वैसा ही अटल, वैसा ही दृढ़चित्त। ये दोनों बाहर से अब भी अलग रहकर भी भीतर से—

हाँ और एक शुभ दिन निकट होता आ रहा है, जिस दिन आप लोगों के चरणों के प्रताप से इन दोनों का सम्मिलित नवीन-जीवन धन्य होगा।'

एक अस्फुट मधुर कलरव से समस्त सभा मुखरित हो उठी। जो महिलाएँ निकट बैठी थीं, उन्होंने अपने हाथ में विजया का हाथ लेकर जरा दवा दिया। रासबिहारी एक गंभीर दीर्घ निश्वास छोड़कर बोले, 'यही उनकी एकमात्र सन्तान है। यह शुभ अवसर अपनी आँखों से देखने की उन्हें बड़ी लालसा थी, पर सारा अपराध मेरा है! आज आप सबों के समक्ष मैं मुक्तकण्ठ से स्वीकार करता हूँ कि इसका जिम्मेवार मैं अकेला ही हूँ। कमल के पत्ते पर ओस की बूँद के समान मानव जीवन है, यह सिर्फ हम मुख से ही बोलते हैं, परन्तु व्यवहार में ऐसा विश्वास नहीं करते। वह इतना जल्द चल देगा, यह तो मैंने कभी ख्याल ही नहीं किया।'

यह कहकर क्षणभर के लिये मौन हो गये। उनके पश्चात्ताप से छिपे अन्तःकरण का चित्र उज्ज्वल दीपालोक में मुख पर प्रस्फुटित हो उठा। पुनः एक दीर्घ निश्वास छोड़ कर शान्त गभीर स्वर में बोले, 'पर इस बार मैं होश में आ गया हूँ। इसीलिये अपने शरीर की तरफ देखकर इसी आगामी फाल्गुन में अधिक देर करने की मेरी हिम्मत नहीं होती। क्या पता, कहीं मैं भी न देख पाऊँ!'

फिर एक अव्यक्त ध्वनि उठी। रासविहारी जरा दाँये और बाँये देखकर विजया को उद्देश्य करके बोलने लगे—बनमाली अपनी सारी सम्पत्ति के साथ अपनी कन्या को भी जिस तरह मेरे हाथ सौंप गया है, मैं भी उसी तरह धर्म की ओर दृष्टि रखकर अपना कर्तव्य पूरा कर जाऊँगा। वे दोनों भी आप के आशीर्वाद से दीर्घ जीवी हों, सत्य का सहारा लेकर कर्तव्य करें। जहाँ से इनके पिता को निर्वासित किया गया था, वहीं दृढ़ता के साथ डटे रहकर सत्य-धर्म का प्रचार करें, यही मेरी एक मात्र प्रार्थना है।'

इस पर वृद्ध आचार्य दयालचन्द्र घाड़ा ने आशीर्वाद की वर्षा की।

तब रासबिहारी विजया को पुकार कर बोले—'बेटी, तुम्हारे पिता नहीं, तुम्हारी सती-साध्वी जननी बहुत पहले ही स्वर्ग सिधार गयीं, नहीं तो यह बात आज मुझे तुमसे पूछने की जरूरत न पड़ती। शर्म मत करो बेटी, बोलो, आज यहीं अपने इन पूज्य अतिथियों को आगामी फाल्गुन में ही एकबार पुनः पद-धूलि देने के लिये न्योता दे दूँ?'

विजया बोलेगी क्या! क्षोभ, क्रोध और भय से उसका गला रुध गया! वह सिर झुकाये चुपचाप बैठी रही। रासबिहारी क्षणमात्र प्रतीक्षा करके मीठी हँसी हँसकर बोले—'दीर्घ जीवी हो बेटी, तुम्हें कुछ भी नहीं कहना पड़ेगा। हम सब समझ गये।'

इसके बाद उठकर खड़े हो, दोनों हाथ जोड़कर बोले, 'मैं आगामी फाल्गुन में ही पुनः एकबार आप लोगों के चरण-रज की भीख माँगता हूँ।'

सभी बारबार अपनी-अपनी अनुमति जताने लगे। विजया अब बर्दाश्त न कर सकी, अस्फुट स्वर में बोल उठी, 'पिताजी के देहान्त के एक साल के भीतर ही—' प्रबल उच्छ्वास से बात भी न समाप्त कर सकी।

रासबिहारी पल भर में मामले को समझ कर गंभीर पश्चात्ताप के साथ उसी वक्त बोल उठे—'ठीक कहती हो बिटिया, ठीक। यह तो मुझे याद ही नहीं रहा। पर तुम तो मेरी बिटिया हो न, इसी से इस बूढ़े की भूल पकड़ ली।'

विजया ने चुपचाप अँचल से आँखें पोंछ लीं। रासबिहारी ने यह भी लक्ष्य किया। निश्वास छोड़ कर रुलाई के स्वर में बोले—'सब उनकी इच्छा।'

जरा बाद में बोले—'सो हो होगा। पर उसमें भी तो देर नहीं।'

सब की तरफ देख कर बोले, 'अच्छा, आगामी वैशाख में ही यह शुभ कार्य सम्पन्न होगा। आप लोगों के सामने यही हमारी पक्की बात रही। विलास बिहारी, बेटा, रात होती जा रही है, कल सबेरे से ही तो काम का अन्त नहीं रहेगा—हम लोगों के भोजन का बन्दोबस्त—नौकरों पर अब निर्भर मत रहो—तुम स्वयं जाओ, चलो, मैं भी चलता हूँ—तो फिर आप लोगों की आज्ञा हो तो मैं एक बार—कहते-कहते ही वे पुत्र के पीछे-पीछे अन्दर की ओर चल पड़े।

ठीक समय पर प्रीति भोज का काम पूरा हो गया। प्रचुर प्रबन्ध था, कहीं किसी अंश में त्रुटि नहीं हुई। रात को लगभग बारह बज गये हैं। एक खम्भे की आड़ में, अन्धेरे में अकेली ही खड़ी-खड़ी विजया पाल्की का इन्तजार कर रही थी। रासविहारी, उसे मानो अचानक देख कर एकबारगी ही चौंक गये—'यहाँ अकेली क्यों खड़ी हो बिटिया! आओ, आओ—घर में आकर बैठो।'

विजया गर्दन हिलाती हुई बोली—'नहीं, चाचा जी, मैं ठीक हूँ।"

'लेकिन ठण्ड जो लग जायगी बेटी!'

'—नहीं, ठण्ड नहीं लगेगी।'

रासविहारी उस समय बगल में खड़े होकर 'घर की लक्ष्मी' आदि कह कर बार-बार अशीर्वाद देने लगे। विजया पत्थर की मूर्त्ति की तरह मौन रह कर स्नेह के इन समस्त अभिनवों को बर्दाश्त करने लगी।

अचानक उन्हें एक बात याद आ गयी। बोले, 'तुमसे वह बात बताना बिल्कुल ही भूल गया था बेटी। उस माइक्रोस्कोप की कीमत मैंने उसे दे दी है।'

आठ-दस दिन हो गये, नरेन्द्र उसे वहाँ जो रख गया, फिर वापस नहीं आया। ये कई दिन विजया के किस तरह बीते हैं सो सिर्फ वही जानती है। उसकी बुआ जी के घर की दूरी का पता उसने ले लिया

था, पर वह कहाँ, है किस गाँव में, यह पूछा ही न था। यह भूल प्रति क्षण गरम भाले की तरह उसे चुभ रही थी। पर कोई मार्ग उसे सूझ नहीं रहा था। इस समय रासबिहारी की बात सुन चौंक कर वह बोली, 'कब दे दी ?'

रास बिहारी जरा सोच कर बोले—'क्या पता, उसके दूसरे ही दिन शायद दी होगी। सुना था कि तुमने उसे खरीदने के गरज से ही रख छोड़ा है। वचन तो आखिर वचन ही है। जब वचन दे दिया गया है, तब ठगाना हो, या जो कुछ भी हो, रुपया दे दिया। यही तो मैंने जीवन भर सोचा और समझा है बेटी। देखा, उस बेचारे को बड़ी जरूरत है—रुपये हाथ में पड़ते ही चला जायगा—जाकर कुछ न कुछ करने की कोशिश करेगा। कुछ भी हो, वह भी तो मेरा पराया नहीं बेटी, वह भी तो एक मित्र का ही लड़का है। देखा, वह चले जाने के लिये बहुत विकल है—रुपया पाते ही चला जायगा। और तुम्हारा देना भी देना ही है, मेरा देना भी देना ही है। इसीलिये, उसी वक्त दे दिया। उसका धर्म उसके साथ है—दस रुपया ज्यादा ही ले लिया हो तो ले ले।'

विजया की जीभ मानो जकड़ गयी। ऐसा मालूम पड़ने लगा कि किसी भी तरह अब बात नहीं निकलेगी। कुछ देर तक चेष्टा करती रही, फिर बोल पड़ी—'आपने किस जगह उन्हें रुपये दिये ?'

रास बिहारी न जाने किस तरह इस प्रश्न का कुछ और ही अर्थ लगा कर चौंक उठे, बोले: 'नहीं नहीं—क्या कह रही हो, उसने रुपये दुबारा तो नहीं ले लिये ? पर उसका मुँह देख कर तो ऐसा नहीं मालूम पड़ा ? और दोष ही किसे दूँ। इसी तरह लोगों की बात पर विश्वास कर ठगाते ठगाते ही तो बाल सफेद हो गये। और दो सौ गया। वह रुपया मैं स्वयं दे दूँगा। हमेशा से इसी प्रकार

का दन्ड सहते-सहते कंधा कड़ा हो गया है बेटी, अब उतनी तकलीफ नहीं होती। जाने दो—मैं—'

विजया अब किसी भी तरह बर्दाश्त न कर सकी, रूखे स्वर में बोल उठी, 'आप क्यों नाहक घबड़ा रहे हैं चाचा जी? वे दुबारा पैसा लेने वाले आदमी नहीं हैं—भूखों रह कर मरते दम तक भी नहीं। पर उनसे मुलाकात हुई कहाँ? आपने कब रुपये दिये?'

रास बिहारी की जान में जान आयी, साँस छोड़ कर बोले—'खैर हुई, बच गया। रुपया भी तो कम नहीं—दो सौ! जान के लिये व्याकुल!' अचानक दूसरी तरफ देखते हो—'कौन खड़ा है? विलास? पाल्की का क्या हुआ? ठंड जो लगी जा रही है! जिस काम को मैं खुद न देखूँ, वह होगा ही नहीं।' यह कह कर अत्यन्त नाराजगी के साथ उस तरफ के एक खम्भे को विलास समझ कर अचानक बड़े वेग से उसी तरफ दौड़ पड़े।

१४

ऐसा भी एक दिन था, जब कि विलास के हाथ अपने को सौंपना विजया के लिये जरा भी कठिन न था। किन्तु आज सिर्फ विलास ही क्यों, इतने बड़े संसार के करोड़ों व्यक्तियों के बीच, केवल एकमात्र व्यक्ति के अतिरिक्त और किसी ने उसे स्पर्श किया है, यह सोच कर भी उसका प्रत्येक अंग घृणा और लज्जा से, एवं समस्त अन्तःकरण किसी एक गम्भीर पाप के भय से त्रस्त और सशंकित हो उठता। रासबिहारी का निमन्त्रण पूरा करके पाल्की पर सवार हो इसी विषय पर तरह तरह से अति सूक्ष्म विवेचना करते करते वो घर आ रही थी!

उसके सम्बन्ध में उसके पिता का मनोभाव क्या था, इसे जान लेने का काफी मौका उसे नहीं मिला। किन्तु उनकी मृत्यु के बाद उसके अपने भावी जीवन की धारा बिलासविहारी के जीवन की धारा में मिलकर ही प्रवाहित होगी, यह निश्चित हो गया था।

किसी तरह इसमें कोई उलट-पुलट हो सकेगा, इस सम्भावना की कल्पना भी उसने कभी न की।

और यह जो एक अनासक्त उदासीन व्यक्ति आकाश के किसी एक अदृश्य प्रान्त से सहसा धूमकेतु की तरह उठ आया, और एक निमिष में अपने विशाल पुच्छ की प्रचण्ड ताड़ना से सबको तितर-बितर करके उसके सुनिर्दिष्ट पथ की रेखा तक को विलुप्त कर स्वयं कहीं चला गया—कोई चिन्ह तक न छोड़ गया, यह सत्य है, अथवा निरा स्वप्न है, इसी पर आज विजया अपनी सारी आत्मा को सचेत करके सोच रही थी। यदि स्वप्न है, तो यह मोह किस तरह कितने दिनों में खत्म होगा, और यदि सत्य है तो वह जीवन में सार्थक होगा भी तो किस तरह!

घर आकर बिछौने पर लेट गई, पर निद्रा उसकी उत्तप्त आँखों तक नहीं फटकने पाई। आज जो आशंका उसके मन में बार-बार उठने लगी, वह यही कि जो चिन्ता कुछ दिन से उसके चित्त को निरन्तर आन्दोलित कर रही है, उसमें कुछ तथ्य भी है या वह सिर्फ आकाश-कुसुम की माला मात्र है। इस कठिन समस्या की ग्रन्थि का उद्भेदन उसके लिये करे कौन!

उसके मां नहीं, पिता भी परलोक सिधार गये; भाई-बहन तो कभी थे ही नहीं। अपना कहने के लिये एक रासविहारी को छोड़ और कोई नहीं। वे ही बन्धु, वे ही बान्धव, वे ही अभिभावक हैं, और उन्होंने किस शुभ-उद्देश्य की सिद्धि के लिये उसको उसके आजन्म परिचित कलकत्ता-समाज से अलग करके इस गँवई-गाँव में ला छोड़ा है, सो आज विजया के सामने जल की भांति स्पष्ट हो गया। इस स्पष्टता के भीतर से जहाँ तक दृष्टि जाती है, आज समस्त उसकी आँखों के सामने स्पष्ट होकर प्रस्फुटित हो उठा। विदेश यात्रा के लिये नरेन्द्र को अयाचित साहाय्य-दान, अपने घर में यह भोजन का आयोजन, सम्मान्य अतिथियों के समक्ष यह विवाह का प्रस्ताव, उसकी सलज्ज नीरवता का अर्थ मौन-स्वीकार कहकर बेधड़क प्रचार करना,

उसको सब ओर से बन्धन में जकड़ रखने की इस वृद्ध की चेष्टा पर चेष्टा,—कुछ भी अब उससे छिपा न रहा।

पर खूबी तो यह है कि रास विहारी के किसी काम में अत्याचार-उपद्रव का चिन्ह मात्र भी नहीं। और वृद्ध की इस विनीत स्नेह-सरस मंगलेच्छा के भीतर कितना बड़ा जबर्दस्त अनुशासन उसे दिन-प्रतिदिन जाल के मुँह में धकेले जा रहा है—इस ज्ञान के साथ-साथ अपनी उपाय-विहीनता का चित्र इस प्रकार सुस्पष्ट होकर दिखाई पड़ा कि सूने कमरे के भीतर भी विजया आतंक से सिहर उठी। सारी रात के बीच क्षण भर के लिये भी वह नींद न ले सकी। अपने स्वर्गीय पिता को बारम्बार पुकार कर सिर्फ रो-रोकर कहने लगी—'पिता जी, तुम तो इन्हें पहचानते थे, फिर क्यों मुझे इन्हीं के मुँह में सौंपकर चले गये?'

एक समय वह स्वयं विलास को पसन्द करती थी, और उससे मिलकर पिता की इच्छा के विपरीत उसने नरेन्द्र के सर्वनाश की कामना की थी, वह कामना ही आज उसकी समस्त शुभ-इच्छा को पराजित करके विजयी हो रही है, यह सोचते ही उसकी छाती फटने लगी। वह बार बार बोलने लगी—'स्नेह में अन्धे होकर क्यों पिताजी अपने हाथों से ही इस सर्वनाश की जड़ को उखाड़ नहीं गये; क्यों मेरी ही बुद्धि-विवेचना पर सब कुछ छोड़ गये। और अगर ऐसा ही कर गये तो क्यों मेरी स्वाधीनता का पथ इस प्रकार सब ओर से अवरुद्ध कर गये?' आँसू से तकिये को भिगोती हुई सिर्फ यही सोचने लगी,—'मेरी इस गुस्सा भरे क्षोभ की विफल शिकायत आज उस स्वर्गीय पिता के कानों में पहुँच भी रही है या नहीं? इसके प्रतिकार का उपाय क्या आज उनके हाथों में रंचमात्र भी नहीं रहा!'

दूसरे दिन परेश की मां के बार-बार जगाने पर जब नींद खुली, तब दिन चढ़ गया था। जगते ही उसने सुना, उसके बाहर के कमरे में निमंत्रितों की टोली जम चुकी है—सिर्फ उसी का उपस्थित होना

बाकी है। इस कमी को दूर करने के लिए वह जल्दबाजी क्या करेगी—आज दिन भर के उत्सव का हो-हल्ला सोचते ही उसके मन में अत्यन्त वितृष्णा उत्पन्न हो गई। शीतकालिक प्रभात सूर्य का आलोक बगीचे के आम्र-वृक्षों के सिरों पर झिल-मिला रहा था, और उन्हीं के पत्तों के भीतर से सामने के मैदान में क्रीड़ा-रतग्वाल-बालों को गौएँ चराते उसने देखा। जब से गाँव में आई, वह दृश्य देखने में उसे कभी थकावट महसूस न होती। अनेक दिन अनेक जरूरी कामों को छोड़कर भी वह देर तक उस तरफ ताकती बैठी रहती। पर आज वह सोच ही नहीं पाई कि इतने दिन इसमें क्या माधुर्य था। बल्कि यह मानो एक अत्यन्त पुरानी बासी चीज की तरह उसे शुरू से आखिर तक कुस्वाद सा लगा। इस दृश्य से अपनी थकी आँखें धीरे-धीरे फिरा लेते ही उसने देखा—कालिपद एक एक छलांग में तीन तीन सीढ़ियाँ लांघता हुआ ऊपर आ रहा है। आमने-सामने होते ही बड़ी घबड़ाहट का भाव दिखाता हुआ हाथ उठाकर बोल उठा—'मां जी, जल्दी, जल्दी। छोटे बाबू बहुत नाराज हो उठे हैं। आज भी कहीं इतनी देर की जाती है।'

किन्तु एक चिनगारी बारूद की ढेर में पड़कर जैसा विप्लव मचा देती है, नौकर के इस सम्वाद ने भी विजया के शरीर और मन में ठीक उसी प्रकार का भीषण काण्ड उपस्थित कर दिया। मालूम पड़ा, उसका नख से शिख तक मानो क्षण भर में ही एक प्रचण्ड अग्नि-काण्ड की तरह प्रज्वलित हो उठा है। पर एकाएक वह कुछ कह न सकी, सिर्फ स्फटिक खण्ड मध्याह्न-सूर्य की किरणों में जिस प्रकार ज्वलन्त तेज बिखरता रहता है, उसी प्रकार उसके दोनों ज्वलन्त नेत्रों से असह्य ज्वाला फूट-फूट कर निकलने लगी। कालिपद उन नेत्रों की ओर देखते ही मारे डर के थर-थर काँपने लगा, फिर कुछ बोलना ही चाहता था कि विजया अपने को सम्हाल कर बोली—'तुम नीचे जाओ कालिपद।'—कहकर नीचे की ओर अंगुली का इशारा कर दिया।

इस घर में छोटे बाबू कहने से विलासविहारी और बड़े बाबू कहने से उसके पिता का बोध होता है, सो विजया जानती थी। किन्तु ये दोनों पिता-पुत्र यहाँ इतने बड़े हो उठे हैं कि उनके क्रोध की गुरुता नौकर-चाकरों की नजर में [illegible] तक को अतिक्रमण कर गई है, यह खबर आज पहले-पहल विजया को मिली। आज उसने स्पष्ट देखा कि इतने ही दिनों में विलास यहाँ का वास्तविक स्वामी बन बैठा है और वह उसकी आश्रिता एवं दया की भिखारिन के सिवा और कुछ नहीं रह गई। इस तथ्य ने उसके मन की आग पर पानी का सेंक नहीं डाला, इतना ही कहना काफी होगा।

आधे घंटे बाद जब वह हाथ-मुँह धो, कपड़े बदल, तैयार होकर नीचे उतरी, उस वक्त चाय-पानी चल रहा था। उपस्थित सभी लोगों ने ही लगभग उठकर अभिवादन किया, और उसके सूखे चेहरे को लक्ष्य करके बहुतों के मुख से अस्फुट स्वर में उद्विग्नतासूचक प्रश्न भी ध्वनित हो उठे। पर अचानक विलास विहारी के तीव्र, कटु स्वर में वह सबके सब विलुप्त हो गये। वह अपने चाय के प्याले को ठक् से मेज पर रखकर बोल उठा—'नींद नहीं खुलती तो कोई हर्ज था।...... तुम्हारे व्यवहार से मैं क्रमशः 'डिस्गस्टेड'* हो उठा हूँ, यह बताये बगैर अब मुझसे रहा नहीं गया।'

नाराजगी जाहिर करने का उन्हें अधिकार है—यह बात तो है सही। पर इतने बाहरी आदमियों के सामने भावी-पति की इस कर्तव्य-परायणता ने नितान्त अशिष्टता के रूप में ही सबों को विस्मित एवं व्यथित कर दिया। किन्तु विजया ने उसकी ओर आँख उठाकर देखा तक नहीं। मानो कुछ हुआ ही नहीं, इसी भाव से सब को प्रति नमस्कार करके, जहाँ वृद्ध आचार्य दयालबाबू बैठे थे, उसी ओर

* ऊब जाना, नफरत करना

अग्रसर हो गई। वृद्ध नितान्त कुंठित हो चुके थे। विजया उनके निकट जाकर शान्त-स्वर में बोली—आपके चाय-पानी में कोई विघ्न तो नहीं पहुँचा ? मुझसे अपराध हो गया—आज सवेरे मैं उठ न सकी।'

वृद्ध दयाल बाबू स्नेह-सने स्वर में एक बारगी ही 'बेटी' सम्बोधन करके बोल उठे—'नहीं बेटी, इसमें किसी को कुछ भी असुविधा नहीं हुई। विलास बाबू ने, रासविहारी बाबू ने कहीं कोई त्रुटि नहीं होने दी। पर तुम्हारी तबीयत तो अच्छी नहीं मालूम पड़ रही है बिटिया; कोई बीमारी-सीमारी तो नहीं है ?'

कलकत्ते में इनके सदा न रहने के कारण विजया इन्हें पहले से पहचानती न थी। कल भी उसने इन्हें अच्छी तरह नहीं देखा था। किन्तु आज कमरे में पैर रखते ही दृष्टिपात मात्र से ही इस वृद्ध की शान्त, सौम्य मूर्त्ति ने मानो नितान्त अपने आदमी की तरह उसे आकृष्ट किया था। इसीलिये सबको छोड़ वह एक बारगी ही उनके आगे आ खड़ी हुई थी। इस समय इन्हीं के स्नेह-सने कोमल कठ-स्वर से उसके अन्तर की दाह मानो आधा पानी बन गया, और सहसा ऐसा प्रतीत हुआ मानो इस कंठ-स्वर में उसके पिता के कंठ-स्वर का आभास आ रहा है।

दयाल बाबू एक कोच पर बैठे थे, बगल में थोड़ी सी जगह थी। वे उसी स्थान का निर्देश करके दूसरे ही क्षण बोले, 'खड़ी क्यों हो बेटी, बैठ जाओ यहाँ; कोई बीमारी-सीमारी तो नहीं ?'

विजया बगल में बैठ तो गई पर जवाब न दे सकी; गर्दन टेढ़ी करके एक दूसरी ही तरफ देखती रही। आँसू रोकना उसके लिये मानो उत्तरोत्तर कठिन होता जा रहा था। वृद्ध ने पुनः वही प्रश्न किया। प्रत्युत्तर में इस बार विजया सिर हिलाकर किसी तरह बोली केवल—'नहीं।'

यह रुँधे गले का संक्षिप्त उत्तर वृद्ध से छिपा न रहा। वे क्षण भर मौन रहकर, वास्तविकता अनुभव करके मन ही मन जरा हँसे। जिन्होंने

घर के मालिक का स्थान कुछ पहले ही दखल कर लिया है, उन्होंने यदि अपनी प्रेयसी गृहस्वामिनी से जरा कटु वचन कह ही दिया तो अनाड़ियों को वह भले ही अशिष्ट प्रतीत हो, पर जिन्होंने यौवन का इतिहास पढ़कर समाप्त कर दिया है, इस प्रकार के ज्ञान-वृद्ध यदि मन ही मन जरा हँस लें तो उन्हें दोष नहीं दिया जा सकता।

उस वक्त वृद्ध महाशय अपने बगल में बैठी इस नवीना मानिनी को स्वस्थ होने का समय देकर स्वयं ही धीरे-धीरे कुछ कहने लगे। इतनी छोटी उम्र में ही इस सत्य धर्म पर उन दोनों की अटल श्रद्धा और प्रेम की असंख्य प्रशंसा करके अन्त में बोले—ईश्वर के आशीर्वाद से तुम्हारा महत् उद्देश्य दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति प्राप्त करे। परन्तु बिटिया, जिस मन्दिर को तुम अपने गाँव में स्थापित कर रही हो उसे कायम रखने के लिये तुम लोगों को अनेक परिश्रम, अनेक स्वार्थ-त्याग करने पड़ेंगे। मैं स्वयं भी तो गंवई गाँव में ही रहता हूँ; मैंने अच्छी तरह देखा है, यह धर्म अब भी हमारे देहाती समाज का रस ग्रहण करके बचना ही नहीं चाहता। इसीलिये मेरे मन में होता है, इसे यदि सचमुच जीवित रख सको बिटिया, तो इस प्रान्त में एक वास्तविक जटिल समस्या का समाधान हो जायगा। तुम्हारे इस उद्यम को मैं क्या कह कर आशीर्वाद दूँ मेरी समझ में ही नहीं आता।

विजया की इच्छा हो रही थी कि वह कहे, 'मन्दिर स्थापना में मेरा कोई उत्साह नहीं, मैं इसमें रंचमात्र भी सार्थकता नहीं देख पाती किन्तु इस बात को दबाकर मृदु स्वर में उसने पूछा—'आप क्यों कह रहे हैं कि एक जटिल समस्या का समाधान हो जायगा?

दयाल बाबू ने कहा—'सो तो है ही बिटिया। मेरा दृढ़ विश्वास है कि बंगाल को हजारों देहाती कुसंस्कारों से छुटकारा दिलाने की शक्ति हमारे इस धर्म में ही है। पर यह भी जानता हूँ कि जहाँ जिसका स्थान नहीं, जहाँ जिसका प्रयोजन नहीं, वह वहाँ बचता भी नहीं। परन्तु यदि चेष्टा, यत्न करके एक को भी बचाया जा सके तो

क्या वह एक बहुत बड़ी आशा का आश्रय नहीं बन जायगा ! हमारे बंगाली घरों के दोष-गुण की बात तो तुम स्वयं भी कम नहीं जानती बिटिया ! उन्हीं सबों पर जरा मन में अच्छी तरह सोचकर देख लो।'

विजया अब और प्रश्न न करके चुपचाप सोचने लगी। स्वदेश की मंगल कामना वास्तव में उसके अन्दर स्वाभाविक थी, आचार्य की अन्तिम बातों से वही कामना आलोड़ित हो उठी। इस मन्दिर स्थापना के सिलसिले में एक बड़े नाम की आड़ लेकर विलास उसके हृदय की अत्यन्त व्यथा के स्थान पर बार-बार आघात करता था। वह व्यथा से तड़प रही थी, और प्रतिघात का कोई उपाय न होने के कारण उसका समस्त अंतःकरण समस्त कार्य के विरुद्ध विद्वेष में प्रायः अन्धकार हो उठा था। किन्तु दयालबाबू ने जब अपनी प्रशान्त मूर्त्ति और स्नेह सने स्वर के द्वारा विलास के प्रयत्न की इस विशेष दिशा की ओर आँखें खोलने का अनुरोध किया, तब विजया सचमुच मानों अपना ही भ्रम देखने लगी। उसका मन कहने लगा—'विलास शायद वास्तविक हृदयहीन और क्रूर नहीं, उसकी कठोरता शायद प्रबल धर्मानुराग का एक प्रकाशमात्र है। मनुष्य के इतिहास में ऐसे दृष्टान्तों की कमी भी तो नहीं है।' उसे याद आया, उसने कहीं पढ़ा है—'संसार के सभी बड़े काम किसी न किसी के लिये क्षतिकारक अवश्य होते हैं। जो इस कार्य भार को स्वेच्छा से ग्रहण करते हैं वे अनेकों के कल्याण के सामने सामान्य हानि की ओर देखने का मौका पाते ही नहीं। उसी लिये बहुत-सी बातों में निर्दय, निष्ठुर कहकर उन्हें संसार में प्रचारित किया जाता है।' सदा की शिक्षा और संस्कार के वश ब्राह्म-धर्म के प्रति विजया का अनुराग किसी की अपेक्षा कम न था। उसी धर्म के विस्तार पर देश का इतना मंगल निर्भर करता है—यह सुनकर उसका उच्च शिक्षित सत्यप्रिय अन्तःकरण उसी क्षण विलास को मन ही मन क्षमा किये बगैर न रह सका। यहाँ तक कि अपने आपको बोलने लगी—'संसार में जो बड़ा काम करने आते हैं, उनके व्यवहार यदि हम

जैसे साधारण व्यक्तियों के साथ प्रति अक्षर मेल न खाते हों तो उन्हें दोषी ठहराना असंगत है, अन्याय है और अन्याय को अन्याय समझकर किसी भी तरह उसे बढ़ावा नहीं दे सकती।'

देर हो गयी थी, इसलिये सभी एक-एक करके उठ रहे थे। विजया भी खड़ी थी। रासबिहारी ने बेटे को जरा आड़ में ले जाकर कुछ कहा; वह मानो इस सुअवसर की ही प्रतीक्षा कर रहा था। नजदीक आकर बोला—'विजया आज सबेरे क्या तुम्हारी तबीयत अच्छी नहीं थी ?'

आधा घंटा पहले ही शायद वह इस प्रश्न की बिल्कुल उपेक्षा करके कुछ बोल कर चली जाती, किन्तु अब उसने मुँह उठा कर देखा और स्वाभाविक स्वर में बोली—'नहीं, अच्छी हूँ। कल रात को नींद न आने के कारण ही शायद कुछ अस्वस्थ मालूम पड़ रही हूँ।'

विलास का चेहरा खुशी से नाच उठा। ऐसे अनेक आदमी हैं जो आघात के बदले प्रतिघात किये बगैर किसी भी तरह नहीं रह सकते। अपनी भारी हानि समझ कर भी बर्दाश्त नहीं करते। विलास भी उन्हीं में से एक था। उसके प्रति विजय का आचरण प्रतिदिन जितना ही अप्रीतिकर होता जा रहा था, उसका अपना आचरण उससे भी अधिक निष्ठुर हो उठा था। इस प्रकार के घात-प्रतिघात से अग्नि जब प्रति क्षण घातक होती जा रही थी, उस समय वयोवृद्ध चतुर पिता उसे बार बार समझाते, सहनशक्ति के परम लाभ, और चरम सिद्धि के सम्बन्ध में गूढ़ गम्भीर उपदेश देते, फिर भी इसका उनके इस अनभिज्ञ उद्धत पुत्र पर कोई असर न होता; किन्तु विजया के मुख से निकली इस एकमात्र कोमल वाणी ने विलास के स्वभाव को मानो बदल दिया। उसने स्वाभाविक कठोर कंठ को यथा साध्य करुण बना कर कहा—'तो फिर इस समय तुम धूप में मत निकलो। सबेरे-सबेरे नहा खाकर जरा-सा जाने की कोशिश करो। 'सीजन चेंज' का समय अच्छा नहीं होता, कहीं बीमार न पड़ जाओ।' यह कह

कर चेहरे पर उत्कण्ठा प्रकाश करके शायद वह अपने व्यवहार के लिये एक बार क्षमा माँगने को भी तैयार हो गया; पर यह चीज उसकी प्रकृति के बिल्कुल विपरीत थी, इसलिये बगैर कुछ कहे द्रुत-गति से शरीफ आदमियों की तरह बाहर हो गया।

जहाँ तक दृष्टि जा सकती थी, विजया उसकी तरफ देखती रही। उसके बाद एक निश्वास छोड़ कर धीरे-धीरे ऊपर अपने कमरे में चली गयी। कुछ दिनों से एक गुप्त वेदना कांटे की तरह उसके मन में दिन रात चुभ रही थी, आज अचानक मालूम पड़ा मानो उसका पता भी नहीं है।

शाम के बाद ब्रह्म-मन्दिर की स्थापना विधि-पूर्वक सम्पन्न हो गयी। अन्दर एक खास जगह पर दो सुन्दर कुर्सियाँ आज अगल बगल रखी थीं। उनमें एक पर अत्यन्त समारोह के साथ विजया को बिठाया गया, और दूसरी पास वाली कुर्सी किस के द्वारा पूर्ण होने की प्रतीक्षा कर रही है यह किसी को समझते देर न लगी। क्षण भर के लिये विजया का अन्तःकरण धू-धू कर जल तो उठा, पर क्षण भर बाद ही जब विलास ने आकर उस स्थान पर अधिकार जमा लिया तब उस ज्वाला के बुझाने में अधिक देर नहीं लगी।

१५

आतिशबाजी के जले हुए निःसत्त्व दीयेके समान तुच्छ वस्तु की तरह इस ब्रह्म-मन्दिर की तरफ से भी उत्सव समाप्त होने पर लोगों का ध्यान अवशावश अन्यत्र न चला जाय, इस आशंका से विलासविहारी उत्सव के अवशिष्टांश को मानो किसी भी तरह समाप्त करना नहीं चाहता था। किन्तु जो निमंत्रित होकर आये थे, आखिर उनके तो घर द्वार हैं, काम काज हैं; दूसरे के खरचे से सिर्फ आनन्द में मस्त रहने से ही तो काम नहीं चलता, इसलिये उत्सव का अन्त एक दिन उन्हें करना ही पड़ा। उस दिन बूढ़े रासविहारी एक छोटी सी वक्तृता

देकर अन्त में बोले--'जिनकी असीम करुणा से हम मूर्तिपूजा के घोर अन्धकार से प्रकाश में आ सके हैं, उन्हीं एकमेवाद्वितीयम् निराकार परब्रह्म के पदकमलों में इस मन्दिर को जिन्होंने उत्सर्ग किया है उनका कल्याण हो। मैं अन्तःकरण से प्रार्थना करता हूँ कि निकट भविष्य में ही वे दो निर्मल नवीन जीवन सदा के लिये एकत्र हों और वह शुभ-घड़ी दिखाने के लिये ईश्वर हमें जीवित रखें।' इतना कहकर उन दो नवीन-जीवनों के प्रति दृष्टिपात करके बोले—'बेटी विजया, विलास, तुम दोनों इन्हें प्रणाम करो। आप लोग भी मेरी सन्तान को आशीर्वाद दें।'

विजया और विलास ने अगल-बगल होकर भूमि से सिर लगाकर उन प्रवीण ब्राह्म-महोदयों को प्रणाम किया, उन्होंने भी अस्फुट स्वर में आशीर्वाद दिया। इसके बाद सभा-भंग हो गई।

शाम के बाद विजया जब घर आ पहुँची, तब उसके मन में किसी विक्षोह या चाञ्चल्य का चिह्न न था। धार्मिक आनन्द और उत्साह से हृदय इस प्रकार परिपूर्ण हो उठा था कि अपने आपसे सिर्फ यही बोलने लगी—'सांसारिक सुख ही एक मात्र सुख नहीं बल्कि धर्म के लिये, दूसरों के लिये उस सुख का बलिदान करना ही एकमात्र शुभ कर्म है।'

विलास के साथ उसका मत और कहीं भले ही न मिले, धर्म के सम्बन्ध में उनमें कभी मतभेद नहीं होगा—इस बात को बड़ी दृढ़ता से उसने अपने को समझाया। बिछौने पर पड़ी वह बार-बार यही दुहराने लगी,—'यह अच्छा ही हुआ कि मेरा जीवन मेरे ही सदृश एक स्थिरसंकल्प, स्वधर्मनिष्ठ, कर्तव्यपरायण व्यक्ति के साथ सदा के लिये एक होने जा रहा है। ईश्वर इस प्रकार हमसे अपने अनेक कार्य सम्पन्न कराना चाहते हैं, इसीलिये मेरी मानसिक गति को उन्होंने बदल दिया है।'

दूसरे दिन विलास ने सबके आगे हाथ जोड़कर निवेदन किया, 'आप लोग यदि महीने में एकबार भी आ-आकर मन्दिर की मर्यादा बढ़ायें तो हम इसके लिये आजीवन कृतज्ञ रहेंगे।' इस अनुरोध को बहुतों ने स्वीकार किया तब घर गये।

रासविहारी आकर बोले—'बेटी विजया, मन्दिर के स्थायित्व की अगर तुम लोगों की इच्छा हो तो दयालबाबू को यहीं रखने की कोशिश करो।'

विजया ने विस्मित और पुलकित होकर पूछा—'ऐसा कैसे हो सकता है चाचाजी!'

रासविहारी हँसकर बोले—'अगर नहीं हो सकता तो मैं कहता ही क्यों बिटिया! उन्हें बचपन से ही जानता हूँ—एक तरह से मेरे बचपन के मित्र हैं। घर की स्थिति अच्छी न होकर भी दयाल बाबू ईमानदार आदमी हैं। तुम्हारी जमीनदारी में किसी काम को देकर उन्हें बड़ी आसानी से रखा जा सकता है। मन्दिर के मकान में कमरों की कमी नहीं; बेधड़क दो-चार कमरे लेकर वे सपरिवार निवास कर सकते हैं।'

इस वृद्ध भद्र पुरुष के प्रति विजया के हृदय में वास्तविक श्रद्धा उत्पन्न हुई थी। उनकी सांसारिक हीनावस्था सुनकर उस श्रद्धा में करुणा ने योग दिया। वह उसी क्षण रासविहारी के प्रस्ताव का सानन्द अनुमोदन करती हुई बोली—'उन्हें यहीं रखिये। मैं सचमुच बड़ी खुश होऊँगी चाचाजी!'

हुआ भी वही। दयाल बाबू सपरिवार आकर बस गये।

दिन बीतने लगे। पूस का अन्त होकर माघ आधे-आधे पर आ पहुँचा। जमीन्दारी और मन्दिर का काम सुव्यवस्थित ढंग से चलने लगा। कहीं किसी विरोध या अशान्ति की कल्पना भी किसी के मन में उत्पन्न न हुई।

नरेन्द्र की कोई खबर नहीं। रहने की कोई बात भी नहीं। सिर्फ दो दिन के लिये वह देश आया था, फिर दो दिन बाद चला गया। जब उसकी दृष्टि माइक्रोस्कोप की ओर जा पड़ती, एक व्यथा उसके मन में उठा करती। और कुछ नहीं, यदि उसकी उस मुसीबत में उस चीज की कुछ अधिक कीमत ही दे दी जाती। और एक बात याद पड़ने पर जिस प्रकार वह आश्चर्यान्वित हो जाती, उसी प्रकार कुंठित भी हो पड़ती। दो दिन के परिचय में ही न जाने किस प्रकार इस व्यक्ति के प्रति इतना स्नेह उत्पन्न हो गया था। भाग्य से इसका कारण प्रगट नहीं हुआ! नहीं तो, मिथ्या मोह एक दिन मिथ्या में मिल ही जाता, पर जीवन भर लज्जा रखने की जगह भी न मिलती। इसीलिये, वह दो दिन के स्नेह-ममता का पात्र जभी याद आ जाता, तभी उसे जी-जान से अपने मन से दूर ठेल देती। इसी प्रकार माघ-महीना भी खत्म हो गया।

फाल्गुन के आरम्भ में ही अचानक अत्यन्त गर्मी पड़नी शुरू हो गई, चारों ओर ज्वर का प्रकोप दिखाई देने लगा। दो दिन से दयाल बाबू बुखार में पड़े थे। आज सबेरे उन्हें देखने जाने के लिये विजया कपड़े बदल बिल्कुल तैयार होकर ही नीचे उतरी थी। बूढ़ा दरवान कन्हाईसिंह लाठी लेने अपने कमरे में गया था, और उसी अवकाश में बाहर के कमरे में बैठी विजया एक प्याला चाय पीने लगी।

'—नमस्का—र!'

विजया चौंक गई, मुँह उठाकर देखा नरेन्द्र कमरे में प्रवेश कर रहा है।

उसके हाथ का प्याला हाथ में ही रहा, सिर्फ भौंचकी सी चुपचाप आँखें फाड़कर देखती रही। न तो किया प्रतिनमस्कार, न कहा बैठने को।

एक कुर्सी की पीठ के सहारे नरेन्द्र ने अपनी छड़ी रख दी और एक दूसरी कुर्सी खींचकर बैठ गया और बोला, 'मेरा भी यह काम अब

तक खत्म नहीं हुआ। और एक प्याला चाय लाने का हुक्म तो दे दीजिये।'

'देती हूँ'। कहकर विजया हाथ का प्याला नीचे रखकर बाहर चली गई। किन्तु कालिपद से कहकर ही उसी क्षण लौट न सकी। ऊपर जाने वाली सीढ़ी की रेलिंग पकड़े चुपचाप खड़ी रही। उसके हृदय का अन्तस्थल भयंकर तूफान में समुद्र की तरह उन्मत्त हो उठा था। किसी कारण से भी मनुष्य का हृदय इस प्रकार एकाएक आन्दोलित हो सकता है, इसका उसे पता भी न था। तथापि यह बात वह स्पष्ट समझ रही थी कि इस आन्दोलन के शान्त हुए बगैर किसी के साथ स्वाभाविक तौर पर बातचीत करना असम्भव है। पाँच-छः मिनट उसी जगह चुपचाप खड़ी रहने के बाद जब उसने देखा कि कालिपद चाय लिये जा रहा है, तो वह भी उसके पीछे कमरे में चली गई।

कालिपद के चले जाने पर नरेन्द्र ने विजया के मुँह की ओर देखकर कहा—'आप मन ही मन बहुत नाराज हो गई हैं। आप कहीं बाहर जा रही थीं, मैंने आकर बाधा डाल दी। पर पाँच मिनट से अधिक आपका समय न लूँगा।'

विजया बोली, 'अच्छा, पहले आप चाय पीयें।'—कहकर अचानक पश्चिम तरफ की खिड़की की ओर नजर पड़ते ही आश्चर्य के साथ उसने पूछा—'यह खिड़की किसने खोली?'

नरेन्द्र ने कहा—'किसी ने नहीं, मैंने खुद।'

'—किस तरह खोली आपने?'

'—जिस तरह सभी खोलते हैं, खींचकर। कोई अपराध हो गया है क्या?'

विजया सिर हिलाकर बोली—नहीं।' और कई क्षण उसकी पतली अँगुलियों की ओर ताकती रहने के बाद बोली, 'आपकी अँगुलियाँ क्या लोहे की हैं! इस खिड़की के बन्द रहने पर पीछे से

जोर का धक्का दिये बिना सिर्फ खींचकर कोई खोल सकता है ऐसा आदमी तो मैंने देखा नहीं।

बात सुनकर नरेन्द्र की हँसी के कह-कहे से सारा कमरा भर गया। यह वही हँसी थी। स्मरण होते ही विजया का समस्त शरीर रोमाञ्चित हो उठा। हँसी रुकने पर नरेन्द्र ने स्वाभाविक स्वर में कहा—'सचमुच मेरी अँगुलियाँ बहुत कड़ी हैं। जोर से पकड़ने पर शायद किसी भी आदमी का हाथ टूट जायगा।'

विजया हँसी दबाकर गंभीर होकर बोली—'आपका माथा उससे भी ज्यादा कड़ा है। टक्कर मारने पर—'

बात खत्म भी न होने पायी कि नरेन्द्र उसी प्रकार अट्टहास कर उठा। इस व्यक्ति की हँसी प्रातःकालीन प्रकाश की तरह ऐसी मीठी, ऐसी उपभोग के योग्य है कि किसी भी तरह लोभ का संवरण किया नहीं जाता।

नरेन्द्र जेब से दो सौ रुपये के नोट निकाल मेज पर रखकर बोला, 'उसी के लिये आया हूँ। मैं जुआचोर, मैं ठग और न जाने कितनी गालियाँ इन थोड़े से रुपयों के लिये मुझे देकर आपने भेजा था। अपने रुपये लें,—मेरी चीज दें।'

एक पल के लिये विजया का चेहरा सुर्ख हो उठा, किन्तु उसी क्षण अपने को सम्हालकर बोली, 'और क्या क्या कहला भेजा था, कहिये तो?'

नरेन्द्र ने कहा—'अब इतना मुझे याद नहीं। उसे मँगवा दें, मैं साढ़े-नौ की गाड़ी से ही कलकत्ते लौट जाऊँगा। खुशी की बात है, कलकत्ते में ही मुझे एक अच्छी नौकरी मिल गयी है—उतनी दूर अब जाना नहीं पड़ा।'

विजया का मुख प्रफुल्ल हो उठा, बोली—'आपका भाग्य अच्छा है।'

नरेन्द्र बोला—'हाँ। पर अब मेरे पास वक्त नहीं, नौ बज रहे हैं— क्षण भर में विजया के मुख की प्रसन्नता विलुप्त हो गयी, किन्तु नरेन्द्र ने उस ओर ध्यान भी नहीं दिया। बोला—'मुझे इसी वक्त जाना होगा—उसे मँगवा दें।'

विजया उसके मुख की ओर नजर स्थिर करके बोली—'क्या यही शर्त आपके साथ हुई थी, कि जब आप दया करके रुपये लावें उसी समय उसे लौटा देना होगा ?'

नरेन्द्र लज्जित होकर बोला—'नहीं, दरअसल ऐसी शर्त तो नहीं है पर आपको तो उसकी जरूरत भी नहीं है।'

'—आज नहीं है तो किसी भी दिन जरूरत न पड़ेगी, यह आपसे किसने कहा ?'

नरेन्द्र ने सिर हिलाते हुए दृढ़ स्वर में कहा—'मैं कहता हूँ, वह चीज आपके किसी काम नहीं आयेगी। और मेरे लिये—'

विजया ने उत्तर दिया—'फिर बेचकर जाते समय तो आपने कहा था, कि उससे मुझे बहुत उपकार होगा ! और जब मैंने यह कहला भेजा कि आपने 'मुझे ठग लिया'—तो आप क्रोधित हो रहे हैं ! उस वक्त कुछ और बात और इस वक्त कुछ और ?'

नरेन्द्र मारे शर्म के एकबारगी ही मलिन पड़ गया। जरा चुप रहकर बोला—'देखिये उस वक्त मैंने सोचा था कि शायद इस तरह की चीज आप काम में लायेंगी, इस तरह व्यर्थ नहीं रख छोड़ेंगी। अच्छा, आप तो चीज बन्धक रखकर भी पैसे कर्ज देती हैं, इसे भी उसी तरह मान लें। मैं इन रुपयों का सूद दे रहा हूँ।'

विजया बोली—'कितना सूद देंगे ?

नरेन्द्र बोला—'जो उचित सूद हो, मैं वही देने को राजी हूँ।'

विजया गर्दन हिलाती हुई बोली—'पर मैं राजी नहीं हूँ। कलकत्ते में जँचाकर देखा है, उसे बड़े मजे में चार सौ रुपये में बेच सकती हूँ।'

नरेन्द्र सीधे उठकर खड़ा होता हुआ बोला—'अच्छा, जाइये, वही कीजिये—मुझे जरूरत नहीं। जो दो सौ के बदले चार सौ चाहता हो, उससे मैं कुछ नहीं कहना चाहता।'

विजया ने मुँह नीचा करके जब जी-जान से हँसी दबाकर ऊपर को मुँह उठाया, उस वक्त केवल इस व्यक्ति को छोड़ संसार में शायद और किसी से अपने को वह न छिपा पाती। किन्तु उस ओर नरेन्द्र का ध्यान ही नहीं था। उसने तीखे स्वर में कहा—'अगर मैं जानता होता कि आप एक 'शाइलक' (भयानक सूदखोर) हैं, तो मैं आता भी नहीं।'

विजया भले आदमी की तरह बोली—'कर्ज को चुकता करवाते समय मैंने आपका सर्वस्व हड़प लिया था, उस वक्त भी आपने नहीं जाना?'

नरेन्द्र ने कहा—'नहीं। क्यों नहीं, उसमें आपका हाथ नहीं था। वह काम आपके पिताजी और मेरे पिताजी कर गये थे। हममें से कोई उसके लिये अपराधी नहीं। अच्छा, मैं चला।'

विजया बोली—'खाकर नहीं जायेंगे?'

नरेन्द्र ने उद्धत भाव से कहा—'नहीं, खाने के लिये नहीं आया था।'

विजया ने शान्त भाव से पूछा—'अच्छा, आप तो डाक्टर हैं—आपको हाथ देखना आता है?'

इस बार उसके होठों पर हँसी की रेखा दौड़ गई। नरेन्द्र गुस्से से लाल हो उठा, बोला—'मुझे क्या आपने मजाक करने की एक चीज समझ रखी है? रुपया आपके पास काफी हो सकता है, पर उसके बल पर यह अधिकार किसी को नहीं मिलता यह आप अच्छी तरह समझ लें और जरा सोच-समझकर बातें किया करें।'—कहकर उसने छड़ी उठा ली।

विजया बोली—'नहीं तो आपके शरीर में ताकत है, और हाथ में छड़ी, यही न?'

नरेन्द्र छड़ी फेंककर हताश हो कुर्सी पर बैठ गया, बोला—'छि: छि:—आपके मुँह में जो आ जाता है, वही बोल देती हैं। आप से पार पाना बड़ा ही कठिन है।'

'पर यह याद रखियेगा!'—कहकर अब वह और अपने को सम्हाल न सकी, उमड़ती हँसी को दबाते-दबाते झटपट चली गई।

नरेन्द्र अकेले ही कमरे में हतबुद्धि की तरह कुछ देर बैठा रहा। अन्त में वह ज्यों ही छड़ी उठाकर खड़ा हुआ कि विजया कमरे में घुसकर बोली—'आपके लिये जब मुझे देर हो गई, तो अब आप भी नहीं जा सकते। आप हाथ देखना जानते हैं—चलिये मेरे साथ।'

नरेन्द्र को जाने की बात पर विश्वास नहीं हुआ। फिर भी उसने पूछा—'कहाँ जाना पड़ेगा हाथ देखने?'

उसके मुँह की ओर लक्ष्य करके इस बार विजया गम्भीर हो गई; बोली—'यहाँ कोई अच्छा डाक्टर नहीं। हमारे जो नये आचार्यजी आये हैं—उन पर मेरी बड़ी श्रद्धा है—आज दो दिन हुए उन्हें बड़े जोर का बुखार आ रहा है. चलें, एक बार देख आयें।'

'—अच्छा, चलें।'

विजया बोली—'तो फिर जरा ठहरें। उस परेश छोकड़े को तो आप पहचानते हैं—परसों से उसके भी बुखार है। उसकी माँ को उसे लाने को कह दिया है।'—यह कहते ही परेश की माँ बच्चे को आगे करके दरवाजे के सामने आ खड़ी हुई। नरेन्द्र निमिष मात्र उसकी ओर नजर डालकर बोला—'तुम अपने बच्चे को ले जाओ बहन, मैंने देख लिया।'

बच्चे की माँ और विजया दोनों ही आश्चर्य चकित हो गईं। माँ गिड़गिड़ाती हुई बोली—'सारी देह में बड़े जोर का दरद है बाबूजी, नाड़ी देखकर जरा कोई दवा-ओवा अगर देते—'

'—दर्द का मुझे पता है बहन, तुम अपने बच्चे को घर ले जाओ, देखना कहीं हवा न लग जाय, दवा मैं भेज रहा हूँ।'

माँ जरा उदास होकर ही बच्चे को लेकर चली गई। तब नरेन्द्र ने विजया के विस्मित मुख की ओर देखकर कहा—'इस तरफ चेचक का काफी प्रकोप है। और इस बच्चे के मुँह पर भी मैंने चेचक के चिह्न स्पष्ट देखे हैं—'जरा सावधानी से रखने को कह दीजियेगा।'

विजया का चेहरा काला पड़ गया—'चेचक! चेचक क्यों होगा?'

नरेन्द्र ने कहा—'क्यों होगा, इसके अनेक कारण हैं। पर हुआ है। आज भले ही अच्छी तरह मालूम न पड़े, लेकिन कल उसकी तरफ देखते ही आप समझ जायेंगी। मुझे प्रतीत हो रहा है, अब आपके आचार्यजी को भी देखने की कोई विशेष आवश्यकता नहीं—जहाँ तक सम्भव है, उनकी बीमारी का भी कल ही पता लगेगा।'

डर के मारे विजया का अंग-अंग काँप उठा। वह निर्जीव की तरह कुर्सी के सहारे पीठ के बल बैठकर अस्फुट स्वर में बोली—'मुझे भी जरूर चेचक होगा नरेन्द्र बाबू—मुझे भी कल रात को बुखार हुआ था, मेरे भी शरीर में भयानक दर्द है।'

नरेन्द्र हँसा, बोला—'दर्द भयानक नहीं है, भयानक है आपका भय। अगर जरा-सा बुखार हो भी गया, तो इससे क्या! आस-पास में चेचक का प्रकोप दिखाई पड़ने का मतलब यह तो नहीं है कि गाँव भर के सभी लोगों को वह हो जायगा।'

विजया की आँखों में आँसू छलछला आये, बोली—'अगर हो भी जाय, तो मुझे देखेगा कौन? मेरा है ही कौन?'

नरेन्द्र पुनः हँसकर बोला—'देखने को बहुत से लोग मिलेंगे—उसकी चिन्ता नहीं—परन्तु कुछ होगा नहीं आपको।'

विजया हताश होकर सिर हिलाती हुई बोली—'न होना ही अच्छा है। पर कल रात को मुझे सचमुच बहुत बुखार आया था। फिर भी सवेरे उसे जबर्दस्ती झाड़कर दयाल बाबू को देखने जा रही थी। इस वक्त भी मुझे कुछ बुखार है, 'देखिये'—कहकर उसने दाहिना हाथ बढ़ा दिया। नरेन्द्र नजदीक जाकर उसका कोमल शिथिल हाथ

अपने शक्तिशाली कठोर हाथ में लेकर क्षण भर बाद ही धीरे से उसे नीचे रखकर बोला—'आज और कुछ खायें मत, चुप-चुप सो जायें। कोई डर नहीं, कल-परसों तक फिर मैं आऊँगा।'

'—आपकी दया'—कहकर विजया आँख मूँदकर चुप रह गई। किन्तु यह बात तीर की तरह नरेन्द्र के मर्म-स्थान में जा चुभी। प्रत्युत्तर में और कोई बात तो उसने कही नहीं, पर चुपचाप छड़ी उठाकर जब कमरे से बाहर निकला, तब इस भयात रमणी के असहाय मुख की यह दया-भिक्षा उसके बलिष्ठ पुरुष-चित्त को एक छोर से दूसरी छोर तक मथने लगी।

दूसरे दिन काम की अधिकता के कारण वह किसी भी तरह कलकत्ता छोड़ न सका। किन्तु उसके दूसरे दिन नौ बजे दिन के भीतर ही गाँव में आ पहुँचा। घर में कदम रखते ही कालिपद घबड़ाया हुआ आकर बोला—'माँजी को बड़े जोर का बुखार है बाबूजी, आप एकदम ऊपर ही चलें।'

नरेन्द्र जब विजया के कमरे में आकर उपस्थित हुआ, तब वह बड़े जोर के बुखार में बिछौने पर पड़ी छटपटा रही थी। कोई एक प्रौढ़ रमणी घूँघट काढ़े सिरहाने की तरफ बैठकर पंखा झल रही थी, और पास में ही कुर्सी पर पिता-पुत्र रासविहारी और विलासविहारी मुँह अत्यन्त गम्भीर करके बैठे थे। उन दोनों में से किसी का भी हृदय डाक्टर के आगमन पर आशा और आनन्द से नाच न उठा।

विलासविहारी बगैर भूमिका बाँधे ही सीधे पूछ बैठा—'आप क्या परसों आकर चेचक का भय नहीं दिखा गये थे?'

इतने बड़े झूठ का अचानक कोई जवाब नहीं दिया जा सकता था। किन्तु प्रश्न सुनकर विजया ने अपनी सुर्ख आँखें खोलीं। पहले तो वह कुछ निश्चित ही नहीं कर सकी; उसके बाद दोनों बाँह फैलाकर बोली—'आइये।'

पास में किसी आसन के न होने के कारण नरेन्द्र उसके बिछौने पर ही एक तरफ़ जा बैठा। लहमें भर में विजया अपने दोनों हाथ से बड़े ज़ोर से उसका हाथ पकड़कर बोली—'कल आये होते, तो आज मुझे इतना बुखार न होता—मैं दिन भर आपका रास्ता देखती रही।'

नरेन्द्र डाक्टर है, उसे समझते देर न लगी कि प्रबल ज्वर जबर्दस्त शराब के नशे की तरह अनेक आश्चर्यजनक बातें मनुष्य के भीतर से खींच कर ले आता है; पर स्वस्थ-अवस्था में उसका अस्तित्व न बाहर न भीतर, कहीं भी शायद नहीं होता। किन्तु निकट में बैठे हुए अभागे बाप बेटे के सिर के बाल तक मारे गुस्से के खड़े हो उठे। नरेन्द्र स्वाभाविक सान्त्वना के स्वर में प्रसन्न-मुख से बोला—'डर क्या है, बुखार तो दो दिन में ही आराम हो जायगा।'

एकबारगी ही उसका हाथ खींचकर अपनी छाती पर रखती हुई विजया अत्यन्त करुण स्वर में बोली—'पर जब तक मैं अच्छी न हो जाऊँ, तुम कहीं जाओगे तो नहीं—तुम्हारे चले जाने पर शायद मैं बचूँगी नहीं।'

जवाब देने के लिये नरेन्द्र के मुख उठाते ही दो जोड़े भयंकर नेत्रों से उसका सामना हो गया, उसने देखा—नितान्त निकटवर्ती निःशंक शिकार पर छलाँग मारने से पहले भूखा बाघ जिस प्रकार ताकता है, ठीक उसी प्रकार अपने दो जलते नेत्रों को विस्फारित किये विलासविहारी उसकी ओर ताक रहा है।

१६

नरेन्द्र अवाक् होकर देखता रहा—विजया के प्रश्न का कोई जवाब न दे सका। आँखों की खूँखार चितवन को सिर्फ मनुष्य ही क्यों, बहुतेरे जानवर तक समझ जाते हैं। इसलिये यह व्यक्ति चाहे जितना भी सीधा क्यों न हो, और दुनिया की जानकारी उसकी जितनी भी

थोड़ी क्यों न हो, इस बात का उसे पलमात्र में पता लग गया कि कुर्सी पर आसीन उन पिता-पुत्रों की चितवन से चाहे और जो भी भाव व्यक्त हो रहे हों, हृदय का प्रेम प्रकाशित नहीं हो रहा था। ये उससे प्रसन्न न थे, इसका उसे पता था। उस माइक्रोस्कोप को विजया को दिखाने आकर वह अपने कानों से बहुत-सी बातें सुन गया था। और रासविहारी जिस दिन अपने हाथ लड्डू लेकर उसे कीमत देने गये थे, उस दिन भी हितोपदेश के बहाने बूढ़े ने कम कड़वी बातें नहीं सुनायी थीं। किन्तु नरेन्द्र यह समझ न सका कि जब उसने सचमुच किसी को ठग नहीं लिया और जब उस चीज की कीमत आज दो सौ के बदले चार सौ मिल सकती है, उसकी जाँच भी हो गई है, तो फिर उस बात को लेकर क्यों वे अब तक नाराज रहेंगे, और चेचक का यह भय दिखा जाना! पर उसने तो भय दिखाया नहीं, बल्कि ठीक इसका उल्टा। इस झूठ को किसी और ने फैलाया है, या स्वयं विजया ने ही बताया है, इसका निर्णय करने से पहले ही विलासविहारी एक बार और चित्कार कर उठा। नौकर कालिपद ने शायद निरा कौतूहलवश ही चिक को जरा हटाकर मुँह बढ़ाया था, विलास की दृष्टि उस पर पड़ते ही वह एकाएक हिन्दी में गरज उठा। पूरी सम्भावना है, कि हिन्दी भाषा के जरिये गुस्से को अधिक जाहिर किया जा सके। बोला—'ऐ सुअर का बच्चा, एक ठो कुर्सी लाओ।'

कमरे के सभी लोग चौंक उठे। कालिपद 'सुअर का बच्चा' और 'लाओ' का अर्थ तो समझ गया, पर 'कुर्सी' क्या चीज है यह अच्छी तरह समझ न सकने के कारण वह कमरे में प्रवेश करके इधर-उधर देखने लगा। बूढ़े रासविहारी सम्हल चुके थे; वे गम्भीर स्वर में बोले—'उस कमरे से एक चेयर ले आओ कालिपद, बाबूजी को बैठने को दो।' कालिपद के बड़े वेग से चले जाने पर वे बेटे की ओर मुड़कर शान्त उदार स्वर में बोले—"बीमार आदमी का कमरा है—इस तरह हेस्टी (जल्दबाज) मत बनो विलास। Temper

lose (आपसे बाहर होना) करना किसी सभ्य व्यक्ति के लिए शोभा-जनक नहीं।'

बेटे ने उद्दण्डभाव से जवाब दिया—'मनुष्य इस तरह Temper lose न करे तो करे क्या जरा सुनूँ तो ? वैसा ही हरामजादा नौकर; न कहना, न खबर देना, इस तरह एक असभ्य को घर में लाकर घुसा दिया जो भद्र महिला का सम्मान तक रखना नहीं जानता।'

जिस तरह अचानक प्रचण्ड धक्का खाकर नशेबाज का नशा खत्म हो जाता है, ठीक उसी प्रकार ज्वर से उत्पन्न विजया की उन्मादावस्था भी विलुप्त हो गयी। वह चुपचाप नरेन्द्र का हाथ छोड़ दीवाल की तरफ मुँह करके लेट गयी।

कालीपद ने शीघ्र ही एक कुर्सी लाकर रख दी, नरेन्द्र बिछौने से उठकर उस पर बैठ गया। रासबिहारी को विजया के मुख का भाव भाँपने में त्रुटि न हुई। वे एक प्रसन्न हँसी हँसकर पुत्र को ही उद्देश्य करके फिर बोले—'मैं सब कुछ समझता हूँ विलास। इस परिस्थिति में तुम्हारा गुस्सा होना अस्वाभाविक नहीं, बल्कि सर्वथा स्वाभाविक है, यह भी मैं मानता हूँ; फिर भी इतना तो तुम्हें सोचना चाहिये था कि सभी अपनी इच्छा से अपराध नहीं करते। सबको अगर सब प्रकार की रीति-नीति, आचार-व्यवहार का पता होता, तो फिर चिन्ता ही किस बात की थी। इसीलिए क्रोध न करके शान्त भाव से मनुष्य की गलती का सुधार कर देना चाहिये।

यह गलती थी किसकी, सो समझने में किसी को देर न हुई। विलास ने कहा—'नहीं पिताजी, इस तरह का impertinence (धृष्टता) बर्दाश्त नहीं होता। इसके अलावा मेरे घर के नौकर चाकर जैसे अभागे हैं, वैसे ही मूर्ख भी हैं। कल ही मैं सबको हटाकर दम लूँगा।'

रासबिहारी पुनः एक हँसी हँसकर प्रेमपूर्ण फटकार के तरीके से सह बार शायद कमरे की दीवालों को सुनाकर बोले—'तबीयत खराब

हो जाने पर यह क्या बोलने लगता है, उसका ठिकाना ही नहीं। और सिर्फ लड़के को ही क्यों दोष दिया जाय, मैं बूढ़ा आदमी होते हुए भी बीमारी की बात सुनकर किस तरह चंचल हो उठा था! घर में ही तो हुआ था एक आदमी को चेचक, जिसपर वे भय दिखा गये।'

अब तक नरेन्द्र ने कुछ कहा नहीं था; इस बार बाधा देकर बोले—'नहीं, मैं किसी भी तरह का भय नहीं दिखा गया।'

विलास भूमिपर एक पैर पटककर बोला—'जरूर आप डरा गये थे कालिपद इसका गवाह है।'

नरेन्द्र ने कहा—'कालिपद को सुनने में भूल हुई है!'

प्रत्युत्तर में विलास न जाने क्या काण्ड करने जा रहा था, कि उसके पिता उसे रोककर बोले—'आः—क्या कर रहे हो विलास! वे जब अस्वीकार कर रहे हैं, तो क्या कालिपद पर विश्वास किया जाय? जरूर उनका कहना सच है।'

फिर भी विलास मानो कुछ बोलने की चेष्टा कर ही रहा था कि वृद्ध आँख के इशारे मना करके बोले—'इस मामूली-सी बीमारी में ही माथा खराब न करो विलास, धीरज धरो। मंगलमय जगदीश्वर सिर्फ हमारी परीक्षा के लिये ही विपत्ति भेजते हैं, मुसीबत में पड़कर तुम लोग सबसे पहले इसी बात को क्यों भूल जाते हो, मेरी तो समझ में ही नहीं आता।'

जरा स्थिर रहकर फिर बोले—'और इसलिये यदि वे भूल से बीमारी की बात कह गये ही हों, तो इससे क्या? कितने बड़े-बड़े उपाधिधारी अच्छे-अच्छे डाक्टर भी भूल कर बैठते हैं, ये तो अभी बच्चे हैं।'—कहकर नरेन्द्र की तरफ मुँह उठाकर बोले—'जाने दीजिये, बुखार तो आप बहुत ही मामूली बता रहे हैं? चिन्तित होने का कोई कारण नहीं, यही तो आपका मत है न!'

नरेन्द्र ने अब तक अनेक अपमान चुपचाप सह लिया था, परन्तु इस बार टेढ़ा जवाब दिये बगैर उससे रहा नहीं गया। बोला—'मेरे मत से

क्या बनता-बिगड़ता है, कहिये? मुझपर तो निर्भर कर नहीं रहे हैं। इससे तो अच्छा यह होगा कि आप किसी अच्छे अधिकारी निपुण डाक्टर को दिखाकर उनकी सलाह लें।

यह बात चुभने वाली भले ही हो, पर ऐसा जवाब देने का अधिकार उसे था। परन्तु विलास एक बारगी ही उछलकर खड़ा हो गया। मार-पीट करने को तैयार होकर चिल्ला उठा—'यह याद रखो, तुम किससे बातें कर रहे हो। इस घर से अलग कहीं होते तो तुम्हारा व्यंग्य करना—'

इस व्यक्ति की शुरू से ही कारण या अकारणवश एक झगड़ा खड़ा करके भयंकर काण्ड उपस्थित करने की जी-जान से चेष्टा देखकर नरेन्द्र विस्मय से स्तंभित हो गया। पर क्यों, किस लिये—कहाँ पर उसके व्यवहार में कौन-सा अपराध हो गया है—कुछ भी वह स्थिर न कर सका। असल कारण तो यही है कि उस व्यक्ति के भीतर कहीं न कहीं डाह है जिसका नरेन्द्र को आज भी पता न था। विजया के यहाँ पर आने के साथ-साथ गाँव के पड़ोसी जब विलास के साथ उसके भावी-सम्बन्ध की आलोचना करके उसके साथ समयानुकूल सद्व्यवहार करते, तब भिन्न-ग्राम-निवासी इस नवीन वैज्ञानिक की चित्तवृत्ति कीटाणु कीट के सम्बन्ध-निरूपण में ही तल्लीन रहती; गाँव की किंवदन्ती उसके कानों तक पहुँच नहीं पाती। उसके बाद ब्रह्म-मन्दिर की स्थापना के दिन जब बात पक्की होकर फैलने से कहीं भी बाकी न रही, उस समय वह कलकत्ते चला गया था। आज पिता-पुत्र के बोलने के ढंग से बीच बीच में मानो कोई एक अनिर्दिष्ट एवं अस्पष्ट व्यथा महसूस हो रही थी, किन्तु विचार करके उसे सुस्पष्ट रूप से देखने का समय या प्रयोजन उसे नहीं था। ठीक इसी समय विजया ने इस तरफ मुँह फिराया। नरेन्द्र के मुख के प्रति क्षण भर व्यथित, उत्पीड़ित दो नेत्र निबद्ध करके बोली—'मैं जब तक जीऊँगी, आपकी कृतज्ञ रहूँगी। लेकिन जब इन लोगों ने दूसरे डाक्टर से मेरी चिकित्सा कराने का

निर्णय किया है तो और आप निरर्थक अपमान न सहें। परन्तु लौटते वक्त दयाल बाबू को एक बार देखते जायँ, सिर्फ यही मेरी विनती स्वीकार करें।'—कहकर प्रत्युत्तर की प्रतीक्षा किये बगैर ही पुनः उसने मुँह फिरा लिया। रासबिहारी बहुत पहले ही असली मामला समझ गए थे, वे उसी क्षण बोल उठे—'कमाल है! जिसे तुमने बुलाया है, उसका अपमान करने की ताकत है किसमें।'

उसके बाद बेटे को तरह-तरह से फटकारते हुए बीच-बीच में बार-बार इसी बात को दुहराने लगे कि बीमारी की गुरुता की कल्पना करके उत्सुकता से विलास के हिताहित का ज्ञान नष्ट हो गया है, और साथ ही एकमात्र अद्वितीय निराकार परब्रह्म के उद्देश्य के सम्बन्ध में अनेक अध्यात्मिक और गूढ़ तात्विक रहस्यों का उद्घाटन उन्होंने कर दिखाया। नरेन्द्र कुछ बोला नहीं। पिता और पुत्र के निकट से तात्विक रहस्य और अपमान का बोझ चुपचाप अपने दोनों कन्धों पर लटकाकर उठ खड़ा हुआ, तथा छड़ी और छोटे बेग को हाथ में लेकर उसी प्रकार चुपचाप बाहर हो गया। रासबिहारी पीछे से पुकारकर बोले—'नरेन्द्र बाबू, आपके साथ एक बहुत जरूरी बात करनी है—' कहकर झटपट उठ खड़े हुए और बेटे को अप्रतिद्वन्द्वी एकमात्र अद्वितीय रूप में विजया के कमरे में अधिष्ठित करके द्रुत वेग से उसका अनुसरण करते हुए नीचे उतर गये।

नरेन्द्र को बगल के एक कमरे में बिठाकर भूमिका के बहाने वे बोले—'पाँच आदमियों के बीच तुम्हें बाबू कहूँ या जो कुछ कहूँ बेटा, पर यह नहीं भूल सकता, कि तुम मेरे उसी जगदीश के लड़के हो। वनमाली, जगदीश दोनों जने स्वर्ग सिधार गये, सिर्फ मैं ही पड़ा हुआ हूँ, किन्तु हम तीनों जने क्या थे, उसका आभास उसी दिन दे दिया था, पर खुलकर बता नहीं सकता नरेन—''मेरी छाती मानो फटी जा रही है।'

वस्तुतः उस दिन माइक्रोस्कोप की कीमत चुकता करते समय उन्होंने बहुत-सी बातें कही थीं। नरेन्द्र निस्तब्ध होकर सुनता रहा।

अचानक रासबिहारी बाबू उस दिन की बातें मानों याद करके बोल उठे—'उस कामकाजी यन्त्र को बेचने के कारण मैं सचमुच तुम पर नाराज हो गया था नरेन।' जरा हँसकर बोले—'पर देखो बेटा, 'नाराज हो गया था' यह बात है बड़ी रूखी। 'नाराज नहीं हुआ', ऐसा कहना ही व्यावहारिक दृष्टि से अच्छा है—कहने-सुनने सब तरफ से निराप-है—लेकिन जाने दो।'—कहकर एक निश्वास छोड़ पुनः बहुत कुछ मानो अपने आपसे ही कहने लगे—'मेरे लिये जो असाध्य है, उसके लिये दुखित होना व्यर्थ है। न मालूम कितने लोगों के लिये मैं बुरा हूँ, न मालूम कितने गालियाँ देते हैं। मित्रगण कहते हैं—अच्छा, हम लोगों को मालूम है कि तुम कभी झूठ नहीं बोल सकते रासबिहारी, बोलने को हम कहते भी नहीं, पर जरा घुमा-फिराकर बोलने से ही अगर गाली-गुप्ते से छुटकारा मिल जाय तो ऐसा ही क्यों नहीं करते! मैं सुनकर सिर्फ अवाक् होकर विचार करने लगता हूँ बेटा,—जो कभी हुआ ही नहीं उसे बनाकर, घुमा-फिराकर कैसे बोला जा सकता है! मैं स्वयं जानता हूँ कि ये लोग मेरा भला ही चाहते हैं परन्तु ईश्वर ने जिस कला से मुझे वंचित कर दिया, वह असाध्य साधन मैं करूँ ही किस तरह! जाने दो बेटा, अपनी तारीफ करना मैं कभी पसन्द नहीं करता—इससे मुझे बड़ी नफरत है। कहीं तुम दुखी न हो जाओ, इसीलिये ये बातें कहनी पड़ीं।'—फिर उदास नेत्रों से छत की कड़ियों की ओर क्षण भर ताकते रहने के बाद नजर नीची करके बोले—क्या तुम और एक बात जानते हो नरेन! इस दुनिया में रहते मुझे काफी समय बीत गया, बाल भी सफेद हो गये, पर क्या कहने से, क्या बोलने से यहाँ सुख-सुविधा प्राप्त होती है, वह अब तक भी इस पके सिर में नहीं आया! नहीं तो 'तुमसे असन्तुष्ट हो गया था', यह बात तुम्हारे मुँह पर कहकर तुम्हारा दिल आज दुखाता ही क्यों!'

नरेन्द्र नम्रता के साथ बोला—'जो सच है वही आपने कहा—इसमें दुखी होने की तो कोई बात नहीं।'

रासबिहारी गरदन हिलाते-हिलाते बोले—'नहीं नहीं, ऐसी बात न कहो नरेन—कड़ी बातें आखिर दिल में लगती ही हैं! जो सुनता है उसे तो बुरा मालूम होता ही है, कहने वाले को भी कम बुरा नहीं महसूस होता बेटा! हे जगदीश्वर!'

नरेन्द्र मुँह नीचा किये चुपचाप बैठा रहा। रासबिहारी अन्तर के मर्मोच्छ्वास को संयत करके बाद में बोलने लगे—'लेकिन उसके बाद चुपचाप बैठा न रह सका। सोचा यह क्या बात है। उसने बहुत दुख से ही अपनी इस आवश्यक वस्तु को बेचा होगा। उसकी कीमत जितनी भी हो, पर वचन जब दे दिया गया है, तब और सोच-विचार से फायदा क्या, कीमत देने में देर करना भी ठीक नहीं। मैंने मन ही मन सोचा—मेरी बिजया बिटिया की जब इच्छा होगी, जितने दिन में इच्छा होगी रुपया देगी, पर मैं जाता हूँ, स्वयं जाकर रुपये दे आता हूँ। वह बेचारा जब इस रुपये से ही विदेश जायगा, तब एक दिन की भी देर करना ठीक नहीं। तिस पर वह मेरे जगदीश का पुत्र है!'

नरेन्द्र ने उस वक्त की कटु कथाएँ याद करके व्यथा के साथ पूछा—'क्या उनकी दाम देने की इच्छा नहीं थी?'

वृद्ध गम्भीर होकर बोले—'नहीं, सो बात तो मेरे मन में उठती नहीं नरेन! लेकिन तुम्हें तो मालूम होगा—नहीं, रहने दो।'—कहकर वे सहसा मौन हो गये।

चार सौ रुपये पर जाँच कराने की बात एक बार नरेन्द्र की जिह्वा पर आ गई, किन्तु साथ ही साथ कुछ क्लेश महसूस होने की वजह से उसने इस सम्बन्ध में कोई बात न छेड़ी।

रासबिहारी ने इस बार अपने मतलब की बात छेड़ी। उनको आदमी की पहचान थी। नरेन्द्र की आज की बातचीत तथा व्यवहार से उन्हें घोर सन्देह हो गया था कि अब भी उसे असली बात का पता नहीं है; और

ऐसे अन्यमनस्क एवं उदासीन स्वभाव के मनुष्यों को बिल्कुल आँख में अँगुली घुसेड़कर दिखाये बगैर स्वयं पता लगाकर ये कभी कुछ जानना नहीं चाहते। बोले—'विलास के आचरण पर आज मुझे जितना खेद है, उतनी ही लज्जा भी मालूम पड़ रही है। उस माइक्रोस्कोप की ही बात कहता हूँ। विजया एक बार उसकी राय लेकर यदि उसे खरीदती, तो फिर कोई बात उठ ही नहीं पाती। तुम्हीं बताओ, यह क्या उसका कर्तव्य न था?'

विजया के कर्तव्य को ठीक तौर पर न समझने के कारण नरेन्द्र जिज्ञासु दृष्टि से ताकने लगा। रासबिहारी बोले—'उसकी बीमारी की खबर पाते ही विलास कितना विकल हो उठा है, यह मैं जानता हूँ ऐसा होना स्वाभाविक भी है—सारे भले-बुरे की जिम्मेवारी तो सिर्फ उसी के सिर पर है। चिकित्सा और चिकित्सक की व्यवस्था करना भी तो उसी का काम है! उसकी राय बगैर कोई काम हो नहीं सकता। विजया स्वयं भी तो आखिरकार यह समझ गई, पर यदि दो दिन पहले ही सोच लिया होता तो यह अप्रिय घटना घटती ही नहीं। बिल्कुल बच्ची भी नहीं है—सोचना तो उचित था?'

क्यों उचित था, यह उस समय तक भी नरेन्द्र की समझ में न आया, इसीलिये वह वृद्ध के प्रश्न में सम्मति जाहिर न कर सका। किन्तु फिर भी उसका अन्तःकरण आशंका से आन्दोलित हो उठा। और कोई भी ऐसी बात, जो समझी जा सके, उसके कंठ से न निकली। सिर्फ वह दोनों शंकित नेत्रों को वृद्ध के मुख पर निबद्ध करके चुपचाप ताकता रहा।

रासबिहारी बोले—'पर बेटा, तुम विलास के मन की हालत को ख्याल करके अपने मन में किसी प्रकार की ग्लानि न रखना। और मेरा एक अनुरोध तुमसे यही है नरेन, इन दोनों की शादी तो बैशाख में ही होगी, अगर कलकत्ते में ही रहो, तो इस शुभकार्य में अवश्य सहयोग देना पड़ेगा, यह मैं अभी से कहे देता हूँ।'

नरेन्द्र कुछ कह न सका, सिर्फ गर्दन हिलाकर उसने जताया—'अच्छा।'

तब रासबिहारी पुलकित-चित्त से बहुत-सी बातें कहने लगे। पहली बात यह कि यह विवाह ईश्वर की इच्छा से हो रहा है, और दूसरी बात यह कि यह सम्बन्ध वर-कन्या के जन्मकाल से ही स्थिर हो गया था, और इस सम्बन्ध में विजया के स्वर्गीय पिता से क्या-क्या बातें हुई थीं इत्यादि, अति प्राचीन इतिहास का वर्णन करते-करते सहसा वे कहने लगे—'अच्छी बात है, अभी क्या कलकत्ते में ही तुम्हारा रहना होगा? कोई काम-वाम मिलने की आशा—'

नरेन्द्र ने कहा—'हाँ! एक बिलायती दवा की दूकान में मामूली-सा काम मिल गया है।'

रासबिहारी खुश होकर बोले—'बहुत अच्छा, बहुत अच्छा। दवा की दूकान—नफे का कारोबार है। अच्छी तरह टिक जाओ तो आखिरकार दोनों हाथ से बटोरोगे।'

नरेन्द्र ने इस इशारे पर कोई खुशी जाहिर न की। बोला—'जी हाँ।'

सुनकर रासबिहारी अब कुतूहल को अधिक न दबा सके। जरा आगा-पीछा करके उन्होंने पूछा—'तो फिर तनखाह क्या दे रहा है?'

'बाद में अधिक भी दे सकता है। अभी तो सिर्फ चार सौ रुपये देता है।'

'—चार सौ!'—रासबिहारी का मुँह अपना-सा बन गया, आँखें ऊपर की ओर तानकर बोले—'अहा, बहुत अच्छा—बहुत अच्छा! सुनकर बड़ी खुशी हुई।'

इस तरफ दिन चढ़ता जा रहा था, यह देखकर नरेन्द्र उठ खड़ा हुआ। दयाल बाबू के शरीर में दो-चार चेचक के दाने दिखाई पड़े थे, उन्हें एक-बार देखने जाना पड़ेगा। उसने पूछा—'परेश की अब क्या हालत है, आप बता सकते हैं?'

रासबिहारी बाबू ने बग़ैर उदासी के बताया—'उसे उसके गाँव के घर भेज दिया गया है—उसकी हालत कैसी है, बता नहीं सकता।'

दोनों ही कमरे से बाहर हो पड़े। रासबिहारी को एकबार और ऊपर जाना था। बेटा इन्तजार कर रहा होगा। उसने चिकित्सा की क्या व्यवस्था की, इसकी भी खबर लेनी जरूरी है। बरामदे के अन्त तक आकर नरेन्द्र क्षण भर के लिये एकबार स्थिर होकर खड़ा हो गया, उसके बाद धीरे से वापस आकर रासबिहारी से बोला—'आप मेरी ओर से विलास बाबू से यह बात कह दीजियेगा कि ज्वर की अधिकता से नितान्त सामान्य कारणवश भी मनुष्य का हार्दिक आवेग उच्छ्वसित हो उठता है। विजया के सम्बन्ध में डाक्टर के मुख से निकली, इस बात पर वे अविश्वास न करें।'—इतना कहते ही मुँह फिराकर लम्बे-लम्बे डेग बढ़ाता हुआ चल पड़ा।

स्नान नहीं, भोजन नहीं, सिर पर कड़ी धूप—मैदान से होकर नरेन्द्र दिघड़े की तरफ़ चला जा रहा था। पर उसे कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा था। इसीलिये चलते-चलते वह अपने आपसे ही बार-बार प्रश्न करने लगा—'मुझे क्या गरज पड़ी है? किसी औरत ने अपने एक सामान्य व्यक्ति को देखने के लिये मुझसे अनुरोध किया है, इस कारण जिसे कभी आँखों से देखा भी नहीं उसे ही देखने को क्यों इस धूप में दौड़ा जा रहा हूँ! यह अनुचित अनुरोध करने का उसे रंचमात्र भी अधिकार न था'—यह स्मरण होते ही उसका सर्वांग जलने लगा और इस अनुरोध की रक्षा करना भी अपने सम्मान के लिये हानिकर है'—यह भी बार-बार वह अपने आपसे बोलने लगा, पर मुड़कर वापस न जा सका। कदम-ब-कदम वह दीघड़े की ओर ही अग्रसर होने लगा और थोड़ी देर बाद ही उस नितान्त अनुचित अनुरोध को निभाने के लिये अपने घर के दरवाज़े पर आ पहुँचा।

१७

कागज के एक टुकड़े पर नरेन्द्र ने अपने नाम के साथ अपनी विलायती डाक्टरी उपाधि को जोड़कर अन्दर भेज दिया। पढ़कर दयाल बाबू अत्यन्त भयभीत हो उठे। इतना बड़ा डाक्टर पैदल चलकर उन्हें देखने आया है, यह उन्हें अपने तईं एक अनुचित अहंकार एवं अपराध की तरह प्रतीत हुआ, और उन्हीं को वंचित करके स्वयं उस घर में निवास कर रहे हैं—इस शर्म के मारे वे किस तरह मुँह दिखायेंगे यह समझ न पाये। क्षण भर के बाद ही एक गौरांग दीर्घकाय, दुबला-पतला युवक जब उनके कमरे में आ घुसा, तब वे मुग्ध नेत्रों से अवाक् होकर ताकते रह गये। उन्हें मालूम पड़ा—रोग चाहे उनका जो भी हो, जितना भी बड़ा हो अब भय नहीं—इस बार वे बच गये। 'वास्तव में बीमारी अत्यन्त मामूली है, चिन्ता का कोई कारण नहीं'—आश्वासन पाकर वे उठ बैठे। यहाँ तक कि डाक्टर साहब को गाड़ी पर बिठाने के लिये स्टेशन तक उनके साथ वे जा सकेंगे या नहीं—यह सोचने लगे। विजया स्वयं बिछौने पर पड़ी हुई भी उन्हें भूली नहीं; उसीने अनुरोध करके उन्हें भेजा है—सुनकर कृतज्ञता और आनन्द से दयाल की आँखों में आँसू छलछला आये। देखते ही देखते इस नवीन चिकित्सक और प्राचीन आचार्य के मध्य बातचीत जम गयी। नरेन्द्र के हृदय में आज अनेक ग्लानियाँ इकट्ठी हो गई थीं; किन्तु इस वृद्ध के सन्तोष, सहृदयता और आन्तरिक पवित्रता के संस्पर्श से आधे के करीब हृदय का परिष्कार हो गया। बातचीत के सिलसिले में उसने समझ लिया कि यद्यपि इस व्यक्ति का धर्म-सम्बन्धी अध्ययन नितान्त ही सामान्य है, तथापि यह वृद्ध 'धर्म' नामक वस्तु को हृदय से प्यार करता है और उस अकृत्रिम प्रेम ने ही मानो धर्म की सत्य दिशा की ओर उसकी दृष्टि को असाधारण रूप से स्वच्छ कर दिया है। किसी धर्म के विरुद्ध उनकी शिकायत नहीं,

और मनुष्य के विशुद्ध होने पर प्रत्येक धर्म से वह विशुद्ध तत्त्व प्राप्त कर सकता है—यही उनका निष्कपट विश्वास था। इस प्रकार का सम्प्रदाय-विरुद्ध मत विलासविहारी के कानों तक पहुँचने पर उनका आचार्य-पद बहाल रह सकता या नहीं इसमें सन्देह है, किन्तु वृद्ध की शान्त, सरल एवं विद्वेष-विहीन बातें सुनकर नरेन्द्र मुग्ध हो गया। रासविहारी और विलासविहारी की भी उन्होंने बड़ी प्रशंसा की। वे जिनकी भी बातें करते, उनके सदृश साधु पुरुष संसार में किसी और को देखा ही नहीं—यही कहते। मनुष्य पहचानने की वृद्ध की इस अद्भुत क्षमता को देख नरेन्द्र मन-ही-मन हँसा! अन्त में विलास-सम्बन्धी बात-चीत के सिलसिले में उन्होंने आगामी बैशाख में विवाह का उल्लेख करते हुए बड़ी तृप्ति के साथ बताया कि उस अवसर पर उन्हें ही आचार्य बनना पड़ेगा यही विजया की अभिलाषा है। और इसी विवाह को ब्राह्म-समाज में विवाह का वास्तविक आदर्श उपस्थित करना है—इस प्रकार की सम्मति प्रकाश करने से भी वे बाज न आये।

किन्तु वृद्ध यदि सौभाग्य और आनन्दातिरेक से इतना विभोर न हो उठे होते, तो बड़ी आसानी से देख पाते कि उनकी अन्तिम बात किस प्रकार उनके श्रोता के मुख पर स्याही पर स्याही उड़ेलती जा रही थी।

स्नान-भोजन के लिये अत्यन्त आग्रह करके भी वे नरेन्द्र को राजी न कर सके। डेढ़ घन्टा बाद नरेन्द्र जब वास्तविक श्रद्धा भाव से उन्हें नमस्कार करके बाहर हो गया, तो कहाँ पर उसे व्यथा है, क्यों उसका चित्त इस तरह उद्भ्रान्त और अव्यवस्थित हो उठा है, सारा संसार क्यों ऐसा तिक्त और नीरस हो गया है—यह समझने से वह बाकी न रहा। नदी पार होते ही बायीं ओर काफी दूर स्थित जमीनदार की अट्टालिका पर दृष्टि पड़ते ही पुनः उसकी आँखें जल उठीं। वह मुँह फेरकर सीधे मैदान के रास्ते से रेलवे स्टेशन की तरफ लम्बे-लम्बे डेग बढ़ाता चलने लगा। आज इस प्रकार अचा-

तक इतनी बड़ी चोट खाये बगैर शायद इतनी जल्दी वह अपने मन को पहचान न पाता। अब तक वह जानता था कि इस जीवन में उसका हृदय एकमात्र विज्ञान को ही प्यार करता है। वहाँ किसी भी समय कोई और वस्तु स्थान नहीं प्राप्त कर सकती—इस पर इस प्रकार निःसंशय विश्वास करने के कारण ही संसार की अन्यान्य समस्त कामना की वस्तुएँ उसके लिये बिल्कुल तुच्छ हो गयी थीं। पर आज चोट खाकर जब उसे मालूम पड़ा कि उसका हृदय उसके अनजाने ही और एक वस्तु को उसी तरह अत्यन्त प्यार कर रहा है, तब व्यथा और विस्मय से वह सिर्फ चौंक ही नहीं गया, बल्कि अपनी आँखों में आप ही छोटा भी बन गया। आज किसी भी बात का वास्तविक अर्थ समझते उसे देर न लगी। विजया के समस्त आचरण, सारी बातचीत एक छिपा उपहास था, और उसी को लेकर विलास के साथ न जाने वह कितनी हँसी होगी—कल्पना करते ही उसका अंग-अंग लज्जा से बार-बार सिहरने लगा। नहीं तो जिसे उसका सर्वस्व लेकर उसे घर से निकाल बाहर करते रत्ती भर भी दुविधा न हुई, उसी के आगे गिड़गिड़ाकर अपने शेष सम्बल को बेचने की दुर्बुद्धि किस महापाप के फल से उसे उत्पन्न हुई थी! अपने को हजारों धिक्कार दे-देकर केवल यही कहने लगा कि यह मेरे लिये ठीक ही हुआ। जो निर्लज्ज उस निष्ठुर रमणी की एक छोटी-सी बात पर अपना सारा काम-धन्धा छोड़कर इतनी दूर दौड़ा आ सकता है, यह दण्ड उसके लिये उपयुक्त ही है। अच्छा हुआ, विलास ने उसे अपमानित करके घर से बाहर निकाल दिया।'

स्टेशन पहुँचने पर देखा कि जो माइक्रोस्कोप इन सारे अनर्थों का मूल है, उसीको लिये कालिपद खड़ा है। वह निकट आकर बोला—'डाक्टर बाबू, माँजी ने आपके पास इसे भेजा है।'

नरेन्द्र तीखे स्वर में बोला—'क्यों?'

क्यों का मतलब कालिपद को मालूम नहीं था। किन्तु चीज यह डाक्टर बाबू की है, और इसीको लेकर जो सारी अप्रिय घटनाएँ घटी हैं, सामने और आड़ से किसी भी तरह कालीपद से छिपी न थी। उसने बुद्धिमत्ता के साथ हँसकर कहा—'आपने लौटाना जो चाहा था!'

नरेन्द्र मन ही मन और अधिक क्रुद्ध होकर बोला—'नहीं, मैं नहीं चाहता। मेरे पास दाम देने को रुपये नहीं हैं!'

कालिपद ने समझा, यह मान की बात है। वह बहुत पुराना नौकर है, रुपये-पैसे के सम्बन्ध में विजया के मन के भाव और आचरण के अनेक दृष्टान्त उसने आँखों से देखे थे। वह अपने ज्ञान को जरा और फैला, जरा हँसकर, जरा अवज्ञा के स्वर में बोला—'ओह, इसका बहुत बड़ा जो दाम है। माँजी के लिये दो-चार सौ रुपया क्या चीज है! लेते जाइये आप। जब रुपया जुट जाय, तब दाम भेज दीजियेगा।'

रुपये के सम्बन्ध में अपने प्रति विजया के इस अयाचित विश्वास से नरेन्द्र का क्रोध जरा कम तो हो गया, पर उसके कण्ठ-स्वर की तिक्तता दूर न हो सकी। इसीलिये उसने दो सौ के बदले चार सौ रुपये देने की अपनी असमर्थता बताते हुए कहा—'नहीं नहीं, तू लौटा ले जा कालिपद, मुझे ज़रूरत नहीं है। दो सौ के बदले चार सौ मैं नहीं दे सकूँगा', तब कालिपद अनुनय के ही स्वर में बोल उठा—'नहीं डाक्टर बाबू, सो नहीं होगा—आप साथ लिये जायँ—मैं गाड़ी में रखने के बाद ही जाऊँगा।'

इस चीज के बारे में उसकी अपनी भी एक खास गरज़ थी विलास को वह फूटी आँखों नहीं देखता, उसके प्रति अनेक ईर्ष्या के कारण ही नरेन्द्र के प्रति उसे एक प्रकार से सहानुभूति उत्पन्न हो गई थी। इसीलिये दरबान के द्वारा भेजने के लिये विजया की आज्ञा के बावजूद, कालिपद स्वयं प्रार्थना करके इतनी दूर उस भारी बक्से को लादकर लाया था। नरेन्द्र. मन ही मन आगा-पीछा कर रहा है यह सोचकर वह जरा और नजदीक खिसक आया, गला साफ़ करके बोला-

'आप लिये जायँ डाक्टर बाबू। माँजी अच्छी हो जाने पर दाम भी छोड़ दे सकती हैं।'

यह इशारा सुनते ही नरेन्द्र आग-बबूला हो उठा—'इतना बड़ा घमण्ड! उसने बुलाया, और उसके विलास ने अपमान किया—यह शायद उसी यत्किंचित् कृपा का पुरस्कार है!'

परन्तु प्लेटफार्म पर और भी आदमी थे, इसी कारण इस बार कालिपद की एक बहुत बड़ी ग्रहदशा कट गयी। नरेन्द्र ने किसी प्रकार अपने को सम्हालकर बाहर रास्ता की तरफ इशारा करता हुआ सिर्फ बोला—'चले जाओ मेरे सामने से।'—कहते ही मुँह फिराकर एक तरफ चला गया। कालिपद हक्का-बक्का-सा होकर कठपुतली की तरह खड़ा रहा। मामला क्या है, वह समझ न सका। पन्द्रह मिनट बाद गाड़ी के आने पर नरेन्द्र जब उसमें बैठ गया, तब कालिपद ने आहिस्ते-आहिस्ते उस फर्स्ट क्लास डब्बे की खिड़की के सामने जाकर पुकारा—'डाक्टर बाबू!'

नरेन्द्र दूसरी ओर ताक रहा था, मुँह फिराते ही कालिपद के उदास चेहरे पर नज़र पड़ी। नौकर के प्रति नाहक कटु व्यवहार से वह मन-ही-मन ज़रा पछताया था; इसीलिये ज़रा हँसकर सदय स्वर में बोला—'फिर क्यों आया रे।'

वह कागज का एक टुकड़ा और पेंसिल निकालकर बोला—'अपना पता ज़रा अगर—'

'—मेरा पता लिखाकर तू करेगा क्या रे?'

'—मैं कुछ नहीं करूँगा—माँजी ने कहा—'

माँजी के नाम पर इस बार नरेन्द्र अपने को भूल गया। अचानक वह एक भयानक धमकी देकर बोल उठा—'निकल जा सामने से, कह रहा हूँ—पाजी बदमाश कहीं का!'

कालिपद चौंककर दो पग पीछे हट गया, और उसके दूसरे ही क्षण सीटी बजाकर गाड़ी चल पड़ी।

वापस आकर ऊपर के कमरे में जब उसने प्रवेश किया, तब विजया खाट की एक पाटी पर सिर रखे आँखें बन्द किये पीठ के बल लेटी हुई बैठी थी। पैर की आहट पा उसने ज्योंही आँखें खोलीं कालिपद ने कहा —'वापस कर दिया उन्होंने लिया नहीं।'

विजया की आँखों में व्यथा या वेदना किसी का भी चिह्न दिखायी नहीं पड़ा। कालिपद हाथ का कागज़ और पैंसिल मेज पर रखते-रखते बोला—'बाप रे, ऐसा गुस्सा! पता पूछते ही तड़पकर मानो मारने को तैयार हो गये।' इसके जवाब में भी विजया ने कोई बात न कही।

रास्ते भर कालिपद यही सोचते-सोचते आ रहा था, कि मालिक के आग्रह करने पर वह जवाब में क्या क्या कहेगा? पर उस तरफ से रत्तमात्र भी उत्साह न पाकर उसने आँख उठाकर देखा—विजया की दृष्टि वैसी ही निर्विकार है, वैसी ही सूनी है। अचानक उसके मन में हुआ, मानो सब कुछ जान-बूझकर ही विजया ने उसे इस निरर्थक काम में लगाया था। इसीलिये कुछ देर हतबुद्धि की तरह चुपचाप खड़े रहने के बाद अन्त में आहिस्ते-आहिस्ते बाहर हो गया।

१८

पाँच-छः दिनों में ही विजया की बीमारी तो हट गयी, पर शरीर सुधरने में देर होने लगी। विलास ने अच्छे डाक्टरों की बलवर्द्धक दवाएँ और पथ्य के प्रबन्ध में कोई त्रुटि न रखी, परन्तु कमज़ोरी मानो दिन प्रतिदिन बढ़ती ही जाने लगी। इधर फाल्गुन का अन्त हो रहा था, बीच में सिर्फ़ चैत्र का महीना बाकी रह गया है; वैशाख के प्रथम सप्ताह में ही लड़के को ब्याह देंगे—रासविहारी का यही संकल्प था। किन्तु दूल्हे महोदय जितना ही दिन-प्रति-दिन परिपुष्ट और कान्तिमान होने लगे, दुलहिन जी उतनी ही शिथिल और मलिन होती जा रही है यह देख रासविहारी प्रतिदिन एकबार आकर चिन्ता प्रगट कर

जाने लगे। प्रयत्न में किसी भी ओर से कोई त्रुटि नहीं हो रही है—फिर यह क्या! वही माइक्रोस्कोप-सम्बन्धी घटना बाहर से न जाने किस प्रकार जरा अतिरञ्जित होकर ही पिता-पुत्र के कानों में पहुँची थी। सुनकर छोटे बाबू जितना ही उछल-कूद करने लगे, बड़े बाबू उतना ही उन्हें ठंडा करने लगे। अन्त में बेटे को उन्होंने खास तौर से सावधान कर दिया कि इन छोटी-मोटी बातों के पीछे दौड़ना सिर्फ निरर्थक ही नहीं, अपितु उसके अस्वस्थ शरीर पर होहल्ला मचाने पर हित के विपरीत घटना का घटित होना असम्भव नहीं। विलास दुनिया के और लोगों की चाहे जितनी ही अवज्ञा-अनादर करे, पर पिता की परिपक्व बुद्धि का वह मन-ही-मन कायल था। क्योंकि इहलौकिक व्यवहार में इस बुद्धि की उत्कृष्टता के इतने अत्यधिक दृष्टान्त मौजूद थे कि उसकी प्रामाणिकता के सम्बन्ध में सन्देह करना एक प्रकार से असम्भव था। इसलिये इसे लेकर उसके हृदय में चाहे जहर का जितना भी उफान उठ रहा हो, खुला विद्रोह करने का साहस उसे नहीं होता। पर अब उससे अधिक नहीं सहा गया। उस दिन अचानक अत्यन्त तुच्छ बात को लेकर कालिपद से भिड़ पड़ा। और पहले यह मारता हूँ वह पीटता हूँ करके अन्त में उसकी तनख्वाह चुका देने के लिये गुमाश्ते को हुक्म देकर उसे बर्खास्त कर दिया।

सुबह-शाम थोड़ा-बहुत टहलने की व्यवस्था विजया के लिये वैद्यों ने की थी। उस दिन सबेरे नदी तीर पर जरा टहल फिरकर घर पर उसके वापस आते ही कालिपद रुँधे गले से बोला—'माँजी, छोटे बाबू ने मुझे जवाब दे दिया।'

विजया ने आश्चर्यान्वित होकर पूछा—'क्यों?'

कालिपद रो पड़ा, बोला—'मालिक बाबू स्वर्ग सिधार गये, मगर उनसे कभी गाली-गुफ्ता नहीं सुना माँजी, मगर आज'—कहकर बार-बार वह आँसू पोंछने लगा। उसके बाद रुलाई खत्म करके उसने जो कुछ कहा उसका सारांश यही था कि यद्यपि उसने कोई अपराध नहीं

किया फिर भी छोटे बाबू उसे फूटी आँखों नहीं देख सकते। डाक्टर बाबू के पास वह बक्स देने जाने की बात क्यों मैंने उनसे नहीं बतायी, क्यों मैं उन्हें घर में बुला लाया था—इत्यादि, इत्यादि।

विजया कुर्सी पर अत्यन्त कठोरता के साथ बैठी—बहुत देर तक एक बात भी न बोली। बाद में उसने पूछा—'वे हैं कहाँ!' कालिपद ने कहा—'कचहरी-घर में बैठे कागज देख रहे हैं।'

विजया कुछ देर इधर-उधर करके बोली—'अच्छा कोई जरूरत नहीं—अभी तू जाकर काम कर!'—कहकर खुद भी चली गई। घण्टे भर बाद खिड़की से उसने देखा—विलास कचहरी-घर से बाहर होकर घर चला गया। क्यों आज वह खबर लेने अन्दर नहीं आया सो वह समझ गई।

दयाल बाबू निरोग होकर पुनः बाकायदा कामपर आने लगे थे। शाम से पहले घर वापस जाने के समय किसी-किसी दिन विजया उनके साथ हो जाती, और बातें करते-करते काफी दूर तक उन्हें पहुँचाकर फिर वापस आ जाती।

नरेन्द्र के प्रति दयाल बाबू का अन्तःकरण सम्मान और कृतज्ञता से बिल्कुल परिपूर्ण हो गया था। बीमारी की बात उठाने पर वृद्ध इस नवीन चिकित्सक की उच्छ्वसित आवेग से प्रशंसा करते-करते सहस्रमुख बन बैठते। विजया चुपचाप सुना करती, पर किसी रूप में आग्रह नहीं दिखाती, इसलिये दयाल बाबू मुँह खोलकर कह नहीं सकते थे कि उनकी बड़ी इच्छा है कि उसीको बुलवाकर एक बार विजया की बीमारी के बारे में सलाह ली जाय। आन्तरिक रहस्य का अब भी उन्हें पूरा पता न था, इस कारण विजया की मौन उपेक्षा से मन ही मन व्यथित होकर हजारों प्रकार से इशारा द्वारा प्रकट करना चाहते—'चाहे वह लड़का ही क्यों न हो; पर जिन नामी विज्ञ वैद्यों का दल तुम्हारी झूठी चिकित्सा करके पैसा और समय नष्ट कर रहा है, उन

सबों की अपेक्षा वह बहुत अधिक प्रवीण है, यह मैं सौगन्द खाकर कह सकता हूँ।'

किन्तु इस गुप्त रहस्य का आभास मिलने में उन्हें अधिक दिन न लगे। पाँच-छः दिनों के बाद ही एक दिन सहसा वे विजया के कमरे में आकर बोले—'कालिपद को तो मैं अब और अपने घर रख नहीं सकता बिटिया।'

विजया को यह आशंका थी ही; फिर भी उसने पूछा—'क्यों?'

दयाल बाबू बोले 'तुम जिसे अपने घर न रख सकी। उसे मैं किस बूते पर रखूँ बिटिया, जरा सोचो तो?'

विजया मन-ही-मन अत्यन्त क्रुद्ध होकर बोली—'पर वह भी तो मेरा ही घर है।'

दयाल लज्जित होकर बोले—'सो तो है ही। हम सभी तो तुम्हारे ही आश्रित हैं बिटिया। परन्तु—'

विजया ने पूछा—'उन्होंने क्या आपसे रखने को मना कर दिया है?'

दयाल चुप रह गये। विजया समझ गई, बोली, 'तो फिर मेरे ही पास कालिपद को भेज दें। वह मेरे पिताजी का नौकर है, मैं उसे बिदा नहीं कर सकती।'

दयाल बाबू क्षण भर मौन रहकर सकुचाते हुए बोले—काम लेकिन अच्छा न होगा बेटी। उनके विपरीत चलना तुम्हारा कर्तव्य नहीं।'

विजया सोचकर बोली—'तो फिर मुझे क्या करने को कहते हैं आप?'

दयाल बोले—'तुम्हें कुछ नहीं करना होगा। कालिपद खुद ही घर जाना चाहता है। मैं कहता हूँ, कुछ दिन के लिए वह हट ही क्यों न जाय?'

विजया बहुत देर तक चुप रहने के बाद एक लम्बी साँस लेकर बोली —'तो फिर चला ही जावे। पर जाने के पहले उसे यहाँ एक बार भेज दें।'

दीर्घ-निःश्वास के शब्द से चौंककर वृद्ध मुँह उठाते ही इस तरुणी के मलिन मुख पर एक घनी घृणा का चित्र अंकित देख स्तंभित हो गये। उस दिन इस सम्बन्ध में और कोई बात करने की उनकी हिम्मत नहीं पड़ी।

इसके बाद चार-पाँच दिन तक दयाल दिखाई नहीं दिये। कचहरी-घर से खबर लेने पर विजया को पता चला कि वे काम पर भी नहीं आते। सुनकर उद्विग्न चित्त से सोचने लगी कि आदमी भेजकर खबर लेनी चाहिये या नहीं—कि इसी समय दरवाजे के बाहर उन्हीं के खाँसने की आवाज सुनकर विजया खुश हो उठ खड़ी हुई, और आदर के साथ उन्हें कमरे में लाकर बिठाया।

दयाल बाबू की धर्मपत्नी सदा से रुग्ण रहती है। अचानक उन्हीं की बीमारी में व्यस्त रहने के कारण कई दिन वे बाहर नहीं निकल सके। स्वयं रसोई बनानी पड़ती। अब उनके निश्चिंत चेहरे को देखकर विजया समझ गई, खास कोई भय नहीं। फिर भी उसने पूछा—'अब वे कैसी हैं?'

दयाल बोले—'आज अच्छी हैं। नरेन्द्र बाबू को चिट्ठी लिखी थी, कल शाम को आकर दवा दे गये हैं। कैसी अद्भुत चिकित्सा है उनकी, बिटिया, चौबीस घन्टे के अन्दर ही मानो बीमारी बारह आना अच्छी हो गई है!'

विजया मुँह दबाकर हँसती हुई बोली—'अच्छी नहीं होगी? आप लोगों का उनपर विश्वास क्या साधारण है!'

दयाल बोले—'सो बात सच है। पर विश्वास तो यों ही होता नहीं बिटिया! हमने परीक्षा करके देख लिया है न! मालूम पड़ता है जैसे घर में उसके पैर रखते ही सब ठीक हो जायगा।'

'अवश्य ठीक हो जाती होगी'—कहकर विजया फिर जरा हँसी। इस बार दयाल बाबू स्वयं भी जरा हँसकर बोले—'वे सिर्फ उन्हीं की चिकित्सा नहीं कर गये बिटिया, एक और व्यक्ति की भी व्यवस्था कर गये हैं।'—कहकर उन्होंने मेज पर कागज का एक टुकड़ा खोलकर रख दिया।

यह था एक नुस्खा। ऊपर विजया का नाम लिखा था। लिखावट पर दृष्टि पड़ते ही वे कतिपय अक्षर मानो आनन्द के तीर बनकर विजया की छाती में आ चुभे। पलमात्र के लिये उसका सारा चेहरा सुर्ख होकर एकाएक पीला पड़ गया। वृद्ध अपनी सफलता पर इस प्रकार आनन्द-विभोर हो उठे थे कि उस ओर उन्होंने दृष्टिपात तक न किया। वे बोले—'पर तुम्हें उपेक्षा नहीं करने दूँगा बिटिया। इस औषधि की एक-बार परीक्षा करके देखना ही पड़ेगा सो कहे देता हूँ।'

विजया अपने को सम्हालती हुई बोली—'पर यह तो अन्धेरे में ढेला फेंकने के—'

वृद्ध गर्व से प्रदीप्त होकर बोले—अच्छा, यह बात है! तो इन्हें क्या तुम नेटिव (देशी) डाक्टर समझ रही हो बेटी, जो दक्षिणा पाते ही व्यवस्था लिख देते हैं! ख्याल रखो, यह विलायत की बड़ी परीक्षा पास किया हुआ डाक्टर है। रोगी को अपनी आँखों देखे बगैर ये कुछ नहीं करते! इन्हें अपनी जिम्मेवारी का पूरा ज्ञान है बिटिया!'

अकृत्रिम विस्मय से विजया दोनों नेत्र विस्फारित करके बोली—'अपनी आँखों से देखकर कैसे! किसने कहा कि मुझे देख गये हैं! यह तो सिर्फ आपके मुँह की बात सुनकर ही उन्होंने दवा लिख दी है।'

दयाल बाबू बार-बार सिर हिलाकर कहने लगे—'नहीं, नहीं, नहीं। ऐसा कभी नहीं हो सकता। कल जब तुम अपने बगीचे की रेलिङ्ग पकड़े खड़ी थी, उस वक्त ठीक तुम्हारे सामने के रास्ते से ही वे पैदल गुजरे हैं। तुम्हें अच्छी तरह देख गये हैं—शायद तुम अन्यमनस्क थी इसीसे—'

विजया एकाएक चौंककर बोली—'वे क्या साहबाना पोशाक में थे? सिर पर हैट था।

दयाल बाबू कौतूहल के आवेग में बड़े जोर से हँसकर बोलने लगे—'कौन कहेगा कि असली साहब नहीं? कौन कहेगा कि हमारे बंगाली भाई हैं! मैं खुद भी एकाएक चौंक गया था बिटिया!'

सामने से गये हैं, ठीक आँखों के आगे से गये हैं, उसे ताकते-ताकते गये हैं—और उसने एक बार से अधिक दृष्टिपात तक नहीं किया। पुलिस का कोई अंग्रेज कर्मचारी होगा यह सोचकर बल्कि अवज्ञा से उसने निगाह नीची कर ली थी। उसके हृदय में कैसा तूफान उठा उसका बूढ़े ने कोई ख्याल ही नहीं किया। वे अपने आप ही कहते गये—'बीच में सिर्फ चैत का महीना रह गया है। बैशाख के पहले हफ़्ते में, या अधिक से अधिक दूसरे हफ़्ते में ब्याह होगा। कहा—'बिटिया का शरीर सुधर नहीं रहा है डाक्टर बाबू, कोई ऐसी दवा दें, जिससे—' उनके मुँह की बात यहीं अधूरी रह गई।

इस तरह अचानक उन्हें रुकते देख विजया ने मुँह उठाकर उनकी दृष्टि का अनुसरण करते ही देखा—विलास कमरे में प्रवेश कर रहा है। कोई बात चल रही थी, उसके आने से बन्द हो गई—कमरे में पैठते ही यह महसूस करके विलास का चेहरा क्रोध के मारे काला हो उठा। किन्तु अपने को यथासाध्य सँभालकर नजदीक की एक कुर्सी खींचकर बैठ गया। ठीक सामने ही वह नुस्खा पड़ा था, दृष्टि पड़ते ही उसे हाथ से उठा शुरू से आखिर तक तीन-चार बार पढ़कर यथा-स्थान रखता हुआ बोला—'नरेन्द्र डाक्टर का नुस्खा देख रहा हूँ। आया कैसे—डाक से आया है क्या?

किसी ने इस बात का जवाब नहीं दिया। विजया जरा मुह फेरकर खिड़की के बाहर की ओर देखती रही।

विलास ईर्ष्या से जल उठा, जरा हंसकर बोला—'डाक्टर तो नरेन डाक्टर है! इसीलिये शायद उन लोगों की दवा नहीं खाई जाती,

शीशियों की दवा शीशियों में ही सड़ती रहती हैं, उसके बाद फेंक दी जाती है! सो जो हुआ सो हुआ, पर इस कलियुगी धन्वन्तरि ने यह कागज भेजा कैसे जरा सुनूं तो! डाक से ही भेजा होगा?'

इस प्रश्न का भी किसी ने जवाब नहीं दिया!

तब उसने दयाल की तरफ देखकर कहा—'आप तो अभी-अभी लम्बा लेक्चर झाड़ रहे थे—सीढ़ी पर से ही सुनाई पड़ रहा था—मैं पूछता हूँ, आप को कुछ पता है!'

इस जमीनदारी के सिरिश्ते में विलासविहारी के नीचे काम शुरू करते समय से ही दयाल बाबू मन-ही-मन उससे बाघ की तरह डरते थे कालिपद के मुँह भी; सुनने को कुछ बाकी न था। इसलिये नुस्खे को हाथ में लेने के वक्त से ही उसका हृदय बाँस के पत्ते की तरह थर-थर काँप रहा था। अब प्रश्न सुनकर मुँह के बीच जिह्वा इस प्रकार निस्पन्द हो गई कि कोई बात निकली ही नहीं।

विलास क्षणभर स्थिर रहने के बाद धमकाता हुआ बोला—'एकाएक भीगी बिल्ली क्यों बन गये! पूछता हूँ पता है आप को!'

नौकरी का भय बालबच्चेदार दरिद्र को किस तरह नीचा बना देता है उसे देखने से भी कष्ट होता है। दयाल चौंक उठे, अस्फुट स्वर में बोले—'जी हाँ, मैं ही लाया हूँ।'

'ओह—अच्छा! तो कहाँ पाया उसे आपने!'

दयाल ने तब काँपते-काँपते किसी तरह सारी बातें कह सुनाईं।

विलास स्तब्ध भाव से कुछ देर बैठे रहने के बाद बोला—'गये साल का हिसाब आपको साफ करने को कहा था, क्या वो साफ हो गया!'

दयाल का मुँह सूख गया था. बोले—'जी, दो दिन में ही साफ कर छोड़ूँगा।'

'—साफ क्यों नहीं हुआ?'

'—घर में बड़ी मुसीबत आ पड़ी थी, स्वयं रसोई बनानी पड़ती थी—आ ही नहीं सका।'

प्रत्युत्तर में विलास ने कुत्सित एवं कटु स्वर में दयाल की जड़ता की नकल उतारते हुए हाथ चमकाकर कहा—'आ ही नहीं सका। तो फिर और क्या चाहिये, मुझे तो निहाल कर दिया!'—कहकर तीव्र स्वर में बोला—'मैंने उसी वक्त पिताजी से कह दिया था, इन बूढ़े टट्टुओं से मेरा काम नहीं चलेगा।'

इतनी देर बाद विजया ने मुँह फेर कर देखा। उसके मुख का भाव प्रशान्त, गम्भीर था; पर दोनों आँखों से मानों आग बरस रही थी। धीमे पर कठोर कण्ठ से बोली—'दयाल बाबू, को यहाँ कौन लाया है, पता है? आप के पिताजी ने नहीं—मैंने।'

विलास ठिठक गया। उसके इस प्रकार का कण्ठस्वर उसने कभी नहीं सुना था, इस प्रकार की चितवन भी कभी नहीं देखी थी। पर झुकने वाला पात्र वह था नहीं। इसीलिये पलमात्र स्थिर रहने के बाद जवाब दिया—'कोई भी लावे, मुझे जानने की जरूरत नहीं। मैं काम चाहता हूँ, काम से मेरा मतलब है।'

विजया बोली—जिसके घर आफत हो, वो कैसे काम पर आ सकता है।

विलास उद्धत भाव से बोला—'ऐसे तो सभी मुसीबत की दुहाई देते हैं। लेकिन ये सुनने से मेरा काम तो नहीं चलता। मैंने जरूरी काम साफ करने को हुक्म दिया था, हुआ क्यों नहीं, यही कैफियत मैं चाहता हूँ! मुसीबत की बात नहीं जानना चाहता।'

विजया के होठ काँपने लगे। बोली—'सभी झूठे नहीं होते—सभी झूठमूठ मुसीबत की दुहाई नहीं देते; कम-से-कम मन्दिर का आचार्य नहीं दे सकता। इसे जाने दीजिये, पर मैं पूछती हूँ आप से, जब आपको पता है कि जरूरी काम होना ही चाहिये, तो स्वयं क्यों नहीं कर छोड़ते? आपने चार रोज का नागा क्यों किया? कौन सी मुसीबत आ पड़ी थी, आप तो जरा सुनायें?'

विलास विस्मय से भौंचक्का-सा होकर बोला—'मैं खुद वही साफ कया ?'

विजया बोली—'हाँ हरब किया है। हर महीने दो सौ रुपये आप लेते हैं। रुपये तो मैं यों ही नहीं देती, काम करने के लिये देती हूँ।'

विलास ने कल की पुतली की तरह सिर्फ कहा—'मैं नौकर हूँ! मैं तुम्हारा मुलाजिम हूँ!'

असह्य क्रोध के मारे विजया का हिताहिता-ज्ञान करीब-करीब लुप्त हो चुका था, उसने और तीखे स्वर में उत्तर दिया—'काम करने के लिये जिसे तनखाह दी जाती है, उसे उसके अलावा और कहा ही क्या जाता है? आपके अनेक उपद्रव मैं चुपचाप सहती आ रही हूँ; पर जितना भी सहती गई हूँ, उपद्रव उतना ही बढ़ता गया है। जायं, नोचे चले जायं। मालिक-नौकर का सम्बन्ध छोड़ आज से आप के साथ मेरा कोई और सम्बन्ध नहीं रहेगा। इस नियम के अधीन काम कर सकते हों तो करें, नहीं तो आपको मैंने जवाब दे दिया, मेरे दफ्तर में घुसने की कोशिश न करें।'

विलास उछलकर खड़ा हो गया, दायें हाथ की तर्जनी कँपाते-कँपाते चीत्कार करके बोला—'तुम्हारा इतना दुःसाहस!'

विजया बोली—'दुःसाहस मेरा नहीं आप का है। मेरे ही 'स्टेट' में नौकरी करेंगे, और मुझ ही पर अत्याचार करेंगे! मुझे 'तुम' कहने का अधिकार आपको दिया किसने? मेरे नौकर को मेरे घर से बर्खास्त करने का, मेरे अतिथि का मेरे ही सामने अपमान करने का—यह सब दुःसाहस आपको हुआ कैसे?'

विलास क्रोध से पागल होकर चीत्कार से कमरे को कंपाता हुआ बोला—'यह अतिथि के बाप का सौभाग्य ही था कि उस दिन उसे हाथ नहीं लगाया—उसका एक हाथ तोड़ नहीं दिया। नीच, बदमाश जुआ-चोर, गुंडा कहीं का। फिर कभी उसे देख पाया तो—'

चीत्कार शब्द से डरकर गोपाल, कन्हाईसिंह को बुला लाया था। दरवाजे के निकट उसका चेहरा देखते ही विजया लज्जित हो गयी, कण्ठ-स्वर को संयत एवं स्वाभाविक बनाकर बोली—'आपको पता नहीं, पर मुझे पता है, वह आपका ही कितना बड़ा सौभाग्य था कि उन पर हाथ छोड़ने का दुःसाहस आपको नहीं हुआ। वे उच्च शिक्षा-प्राप्त एक बड़े डाक्टर हैं। उस दिन उन पर हाथ छोड़ने पर भी शायद वे एक पीड़ित महिला के घर में झगड़ा न खड़ाकर बर्दाश्त करके चले जाते। पर मेरे इस उपदेश को भूलने की गलती कभी न कीजियेगा, कि भविष्य में उनके अंग में हाथ लगाने का शौक अगर आपको हो, तो पीछे से लगाइयेगा, नहीं तो अपने जैसे और पाँच-सात आदमियों को साथ लेकर ही सामने जाइयेगा। लेकिन काफी चिल्ल-पों हो चुका, अब नहीं। नीचे से नौकर-चाकर व दरबान तक डरकर ऊपर पहुँच गये हैं। जाइये नीचे चले जाइये।' कहकर प्रत्युत्तर की प्रतीक्षा तक न करके बगल के दरवाजे से दूसरे कमरे में चली गयी।

१६

पुत्र के मुख से घटना का विवरण सुनकर क्रोध, असन्तोष और आशाभंग की व्यथा से रासविहारी के ब्रह्म-ज्ञान का पर्दा क्षण-भर में ही फाश हो गया। वे तीखे और कटु स्वर में बोल उठे—बेटा, हिन्दू जो हमें नीच कहते हैं, वो झूठी नहीं। ब्रह्म-समाजी होऊँ, या जो होऊँ—हूँ तो केवट ही! ब्राह्मण-कायस्थ का लड़का होने पर तू सभ्यता सीखता, अपने भले-बुरे का ज्ञान तुझे होता। जाओ, अब एक खेत से दूसरे खेत में हल और बैल लिये भटका करो। उठते-बैठते पंछी की तरह रटा-रटाकर तुझे पढ़ाया कि आसानी से एक बार काम हो जाने दो, उसके बाद जो मर्जी में आवे करना; पर तुझे सब्र न रहा, तू गया उसे तंग करने! वह ठहरी राय-

वंश की लड़की ! सुप्रसिद्ध हरिराय की पोती, जिसके डर से बाघ और बछड़े एक घाट पानी पीते थे तू हाथ बढ़ाकर गया था उसे नाथने—मूरख कहीं का ! मान-प्रतिष्ठा गयी, इतनी बड़ी जमीनदारी की आशा गई, महीने-महीने दो-दो सौ रुपया वेतन के नाम से मिला करता, वो भी गया,—खेतिहर के बच्चे जा अब खेती-बेती करके पेट पाल। मेरे पास आये हैं आँख लाल-पीला करके उसके नाम शिकायत करने ; जा जा—सामने से चला जा अभागे, हरामजादे, शैतान !'

उक्त घटना का न घटना ही अच्छा होता सो विलास भी समझ गया, ऊपर से पितृदेव की यह भीषण उग्र-मूर्ति देख, उसकी सारी प्रगल्भता जाती रही। फिर भी कोई कैफियत देने की कोशिश करते ही क्रुद्ध पिता बड़े वेग से अपने कमरे में जा घुसे। किन्तु क्रोध में आकर वे लड़के को जो भी कह दें, काम के वक्त रासविहारी क्रोध से उत्तेजित होकर कभी जल्दबाजी करके अपने काम को मिट्टी में नहीं मिलने देते, आलस्य में आकर कभी अपने अभीष्ट को नष्ट नहीं होने देते। इसीलिए वे उस दिन धीरज धरकर विजया को शान्त होने का अवसर दे दूसरे दिन अपनी सहज शान्ति और गम्भीरता लिये बैठकखाने में दिखाई दिये, और कुर्सी खींचकर बैठ गये।

विजया का क्रोधोन्माद धीरे-धीरे लुप्त हो गया, वह अपनी असंयत उद्दण्डता एवं निर्लज्ज प्रगल्भता स्मरण करके लज्जा से मरी जा रही थी। घर के नौकर-चाकर और कर्मचारियों के सामने ऊंचे स्वर में नाटक का जो यह अभिनय कर बैठी, वह शायद इसी बीच नाना रूप से पल्लवित एवं अति रंजित होकर गाँव के घर-घर में पुरुषों की बात चीत का विषय बन गया है, और नदी-तालाब के घाट पर औरतों के हंसी-मजाक की सामग्री बन गई है। यह कुत्सित कल्पना करके उस समय से घर से बाहर होने की उसे हिम्मत ही नहीं पड़ रही थी। खासकर यह सोचकर उसकी लज्जा और सौ गुनी बढ़ गई, कि आज जिसे उसने

नौकर कहकर सबके सामने अपमानित करने में संकोच नहीं किया, दो दिन बाद 'स्वामी' कहकर उसी के गले में बरमाला डालने की बात चारों तरफ फैल चुकी थी।

इसीलिये रासविहारी जब धीरे-धीरे कमरे में प्रवेश करके चुपचाप प्रसन्न-मुख से आसन पर बैठे, उस समय विजया मुँह उठाकर उनके मुंह की तरफ ताक भी न सकी। पर इसीलिये वह प्रत्येक क्षण प्रतीक्षा कर रही थी और जिन युक्ति-तर्कों की तरंग और अप्रिय प्रसंग उठेंगे, उसका एक कच्चा मसौदा कल से ही सोच रखी थी, इसलिये वह एक प्रकार से स्थिर होकर ही बैठी रही। किन्तु वृद्ध ने ठीक उल्टा सुर अलापना शुरू करके विजया को एकबारगी ही चकित कर दिया। वे क्षणभर स्तब्ध भाव से बैठे रहकर एक निश्वास छोड़कर बोले—'बेटी विजया, जब से सुना है, बड़ी खुशी हुई सो बताने के लिये मैं कल ही दौड़ा आता, बशर्ते कि उस अम्ल की पीड़ा ने बिछौना पर न डाल दिया होता। बहुत दिन जीओ बिटिया, बहुत दिन जीओ, मैं यही सोचता हूँ! यही तो तुमसे आशा करता हूँ।'—कहकर एक बहुत लम्बी साँस छोड़ कर बोले—'उस सर्व शक्तिमान मंगल-मय के चरणों में यही प्रार्थना है कि सुख में, दुख में; भले में, बुरे में; जो धर्म है, जो न्याय है उसीके प्रति अविचल श्रद्धा रखने की शक्ति मुझे प्रदान करें।' यह कह कर उन्होंने दोनों हाथ सिर से लगा आँखें मूंद शायद उसी सर्वशक्तिमान को प्रणाम किया।

बाद में आँखें खोल अचानक उत्तेजित भाव से बोलने लगे—'पर यह बात मेरी समझ में किसी भी तरह नहीं आ रही है विजया, कि विलास मेरे जैसे एक भोले-भाले उदासीन आदमी का लड़का होकर इतना बड़ा पक्का व्यवहारिक व्यक्ति कैसे बन बैठा? जिसके बाप को आज भी संसारी कामों का ज्ञान, हानि-लाभ का ख्याल उत्पन्न न हो पाया, वह इतनी छोटी-सी उम्र में ही इस प्रकार का दृढ़ कर्मी बन कैसे गया? क्या उनका (ईश्वर का) खेल है, क्या संसार का रहस्य है, किसी

भी तरह समझा नहीं जा सकता बिटिया !'—कहकर और एक-बार मुद्रित नेत्रों से उन्होंने सिर झुकाया

विजया चुपचाप बैठी रही। रासविहारी पुनः जरा मौन रहकर बोलने लगे—'पर किसी भी चीज का अति तो अच्छा नहीं होता। जानता हूँ, कार्य ही विलास की जान है। इसमें तो वह बिल्कुल अन्धा है। कर्तव्य की अवहेलना उसकी छाती में शूल की तरह चुभती है; लेकिन इसीलिए क्या प्रतिष्ठित व्यक्तियों की मान-प्रतिष्ठा का ख्याल भी न रखा जाय? दयाल बाबू जैसे आदमी की गलती भी माफ नहीं की जा सके? जानता हूँ अपराध छोटे बड़े, धनी गरीब का विचार नहीं रखता। लेकिन इसलिए क्या उसे अक्षर-अक्षर मानकर चलना पड़ेगा? सब जानता हूँ। काम न करना भी अपराध है, बगैर खबर दिये काम से गैरहाजिर रहना भी जबर्दस्त गलती है; आफिस की डिसिप्लिन तोड़ना भी आफिस मास्टर के लिए बड़ा भारी अपराध है; पर दयाल बाबू को भी—नहीं बिटिया, हम बूढ़े आदमी ठहरे, हममें वह तेज नहीं, जोर नहीं—साहब लोग विलास की कर्तव्य-निष्ठा की जितनी ही तारीफ करें—उसे जितना भी बड़ा समझें—पर हम तो किसी भी तरह अच्छा नहीं कह सकते। अपना लड़का ही है तो क्या इस मुंह से झूठ तो निकल सकता नहीं बिटिया! मैं कहता हूँ, काम न हो दो दिन बाद ही होता, न हो दस रुपया नुकसान ही होता; पर इसीलिये क्या मनुष्य की गलती या कमजोरी माफ न की जाय? तुम्हारी जमीनदारी के भले-बुरे में ही विलास अपने को भुलाये रहता है, सो उसकी प्रत्येक बात से ही समझा जा सकता है। लेकिन मुझे गलत मत समझो बिटिया। मैं खुद संसार से विरक्त होता हुआ भी ये मानता हूँ कि जमीन-जायदाद की रक्षा करना गृहस्थ का परम धर्म है; इससे बड़ा धर्म्म इसे बढ़ाना है, क्योंकि बिना इसके संसार का कल्याण नहीं किया जा सकता। और विलास के हाथ से तुम दोनों की जमीनदारी अगर दूनी, चौगुनी, यहाँ तक कि दस गुनी भी हो जाय तो

सुनकर मुझे आश्चर्य न होगा—और देखता हूँ हो भी वही रहा है। सब ठीक है, सब सच है—लेकिन इसी कारण जमींदारी की तरक्की में कहीं ज़रा-सी बाधा पहुँचते ही धीरज खो बैठना, यह भी बुरा है। मैं इसीलिए उस अद्वितीय निराकार के श्रीचरणों में बार-बार भीख माँग रहा हूँ बिटिया कि उसकी उदण्डता के लिये तुमने जो दण्ड उसे दिया है, उसीसे वह आगे के लिये सचेत हो जाय। हाय काम! हाय काम! संसार में क्या सिर्फ़ काम ही करने आया हूँ। काम के पीछे क्या दया-ममता को भी तिलाञ्जलि दे दी जाय! अच्छा ही हुआ बिटिया, आज तुम्हारे हाथों ही अपनी सर्वोत्तम शिक्षा प्राप्त करने का सुअवसर उसे मिला।'

विजया कुछ भी न बोली। रासविहारी मानो कुछ देर अपने आप में ही निमग्न रहने के बाद मुँह उठाये। ज़रा हँसकर कोमल स्वर में बोलने लगे—मेरी दो सन्तानों में एक तो प्रचण्ड-कर्मा है, और दूसरे का हृदय मानो स्नेह, ममता और करुणा का निर्झर है! एक जिस तरह कार्य के पीछे पागल रहता है, और एक उसी तरह दया ममता के पीछे पागल! मैं कल से स्तब्ध होकर सिर्फ़ यही सोच रहा हूँ, ईश्वर जब इन दोनों को एक साथ मिलाकर अपना रथ चलायेंगे, तब इस दुखमय संसार में स्वर्ग उतर आएगा! मेरी एक और प्रार्थना है बिटिया, इस अलौकिक वस्तु को आँखों से देखने के लिए वे मुझे एक दिन के लिए भी जीवित रखें।' कहकर इस बार उन्होंने मेज से माथा भिड़ाकर प्रणाम किया। सिर ऊँचा कर बोले—और आश्चर्य तो यह है, धर्म के प्रति भी तो उसका अनुराग ऐसा-वैसा नहीं! मन्दिर स्थापना को लेकर जी-जान से कितनी मिहनत कर रहा है। जो उसे नहीं पहचानता वह यही समझेगा कि विलास का ब्रह्म-धर्म के अतिरिक्त शायद संसार में और कोई उद्देश्य ही नहीं है। सिर्फ़ इसीलिये शायद वह बचा है—इसके अलावा शायद वह और कुछ जानता ही नहीं! पर मेरी कैसी भूल है बिटिया। अपने लड़के की बात से इस प्रकार अभिभूत हो पड़ा हूँ, कि तुम्हें ही समझा रहा हूँ। मानो मेरी अपेक्षा

तुम उसे कम जानती हो ! मानो मेरी अपेक्षा तुम उसकी कम हित-चिन्तक हो !'—कहकर मन्द-मन्द मुस्काते हुए बोले—'मुझे इतनी खुशी भी तो है इसलिये ही बिटिया। मैं तुम्हारे हृदय के भीतरी भाग को आइने की तरह स्पष्ट देख रहा हूँ। तुम्हारा कल्याण का हाथ बहुत उज्ज्वल दीख रहा है। और भी कहूँ—तुम्हें छोड़ यह काम कर ही सकता कौन है, करेगा ही कौन ? उसके धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष सकल विषयों की तुम्हीं तो एक मात्र सगिनी हो; तुम्हारे ही हाथ में तो उसका सारा कल्याण निर्भर करता है। उसकी शक्ति, तुम्हारी बुद्धि ! वह भार वहन करके चलेगा, तुम मार्ग दिखाओगी। तभी तो दोनों का जीवन एक साथ सार्थक होगा बिटिया ! इसलिए ही तो आज मैं फूला नहीं समाता ! आज जो आँखों के सामने देख पाया हूँ, विलास को अब भय नहीं, उसके भविष्य के लिए अब मुझे रत्ती भर भी आशंका नहीं। पर पूछता हूँ—इतना विचार, इतना ज्ञान, भविष्य-जीवन को सफल बना छोड़ने की इतनी बड़ी बुद्धि इस मस्तिष्क में अब तक कहाँ छिपाये रखी थी बिटिया ? आज तो मैं एकबारगी ही अवाक् हो गया हूँ।'

विजया का सर्वाङ्ग चञ्चल हो उठा, किन्तु वह चुपचाप बैठी रही। रासबिहारी घड़ी की ओर देखकर चौंक उठे, बोले—'उफ्, दस बज गये एक बार दयाल बाबू की धर्मपत्नी को भी देखने जाना है !'

विजया ने आहिस्ते से पूछा—'अब वे कैसी हैं ?'

'—अच्छी ही हैं'—कहकर वे दरवाजे की ओर दो-तीन कदम आगे बढ़कर अचानक रुककर बोले—पर असली बात तो अब भी नहीं कही, आपने इस बूढ़े चाचा का एक अनुरोध तुम्हें रखना पड़ेगा विजया ! कहीं रखोगी ?

विजया मन ही, मन डर गयी। उसके मुख का भाव छिपी आँखों से देखकर रासबिहारी बोले—' सो नहीं होगा, चाचा का यह अनुरोध भतीजी को रखना ही पड़ेगा। कहो रखोगी ?

विजया अस्फुट स्वर में बोली—'कहिये।'

तब रासविहारी बोले—'उसने सिर्फ खाना-सोना ही नहीं परित्याग किया है, बल्कि पश्चाताप से जला जा रहा है यह भी जानता हूँ, लेकिन तुम्हें इस क्षेत्र में जरा कठोर बनना पड़ेगा। कल क्षोभ के मारे वह आ नहीं सका, पर आज रुक नहीं सकता—आयेगा जरूर, लेकिन माफी माँगते ही माफ कर दोगी, सो नहीं होगा—यही मेरा जबर्दस्त अनुरोध है। जिस अपराध का दण्ड उसे तुमने दिया है, आखिरकार वह दण्ड उसे एक दिन और भुगतना पड़े।'

यह कहकर विजया के चेहरे पर विस्मय का चिह्न देख वे जरा हँसे। स्नेह-सने स्वर में बोले—'तुम स्वयं ही कितना कष्ट पा रही हो, वो मुझसे छिपा थोड़े ही है बिटिया! तुम्हें मैं क्या नहीं पहचानता! तुम मेरी ही तो लाड़िली हो! बल्कि उससे भी अधिक व्यथा पा रही हो, सो भी मैं जानता हूँ। पर अपराध का दण्ड पूरी तरह भुगते बगैर भी तो प्रायश्चित नहीं होता! इस गम्भीर दुख को और एक दिन बर्दाश्त किये बगैर उसे छुटकारा नहीं। अगर कठोर नहीं हो सकती हो तो उसके साथ भेंट ही मत करो। आज वह विफल होकर लौट जाय। यह यन्त्रणा और कुछ दिन उसे भोग करने दो—यही मेरा जबर्दस्त अनुरोध है विजया।'

रासविहारी के चले जाने पर विजया अकृत्रिम विस्मय से हक्की बक्की सी बैठी रही। उनसे इन सब बातों की, इस प्रकार के व्यवहार की उसे बिल्कुल ही आशा न थी। बरन ठीक विपरीत आशंका से उनके आने के साथ ही साथ उसने अपने को मन ही मन कठोर करने की चेष्टा की थी। विलास अकेले चोट खाकर चला गया है, पर प्रतिघात के समय वह अकेला ही नहीं आयगा, और उस वक्त रासविहारी के साथ निबटने की एक बहुत जबर्दस्त घड़ी उसके सामने आयेगी, उसकी समस्त बीभत्सता की नंगी मूर्ति

की कल्पना द्वारा चित्रित करने के समय से विजया के मन में तिल भर भी शान्ति न थी।

अब बूढ़ा के धीरे-धीरे बाहर हो जाने से, सिर्फ उसकी छाती पर से भय का एक भारी पत्थर ही नहीं उतर गया—वह जो किसी समय इस व्यक्ति पर आन्तरिक श्रद्धा करती थी सो बात भी याद पड़ गयी; और क्यों इतनी बड़ी श्रद्धा धीरे-धीरे खत्म हो गयी उसके धुँधले आभास साथ-साथ याद आकर उसे पीड़ित करने लगे। इस प्रकार का एक सन्देह उसके हृदय के मध्य झाँकने लगा कि शायद वह इस वृद्ध का वास्तविक संकल्प न समझ कर ही उनके प्रति मन ही मन बुरा विचार रखती है, और फलस्वरूप उसके स्वर्गीय पिता की आत्मा अपने लंगोटिया मित्र के प्रति इस अपराध से क्षुब्ध हो रही है। वह बार-बार अपने आप ही बोलने लगी—'वे तो वास्तविक अपराध के समय अपने लड़के को भी माफ नहीं करते। बल्कि मैं उसे आसानी से क्षमा करके उसके दण्ड भोग के परिमाण को कम न कर दूँ, वे बार-बार यही अनुरोध कर गये हैं।'

और एक बात—वृद्ध के समस्त अनुरोध-उपरोध, बात-चीत के मध्य जो इंगित सबसे अधिक गुप्त रह कर भी सबसे अधिक परिस्फुट हो उठा था, वह विलास का निःसीम प्रेम, और इसी का अनिवार्य फल था—प्रबल ईर्ष्या।

यह चीज विजया से छिपी थी सो बात नहीं, पर बाह्य अलाड़ेन से मानो नई तरंगे छलक-छलक कर उसके हृदय से टकराने लगीं। अब तक जो सिर्फ उसके हृदय की पेंदी में ही स्थिर होकर पड़ा था, वही बाहरी आघात से फूल कर उसके हृदय पर पसरने लगा। इसीलिये रासबिहारी के चले जाने के बहुत देर बाद तक भी उनके वार्तालाप की झंकार अपने दोनों कानों में लिये विजया उसी प्रकार चुपचाप खिड़की से बाहर ताकती हुई विभोर होकर बैठी रही। ईर्ष्या संसार में सदा से निन्दित है, फिर भी उसी निन्दित वस्तु

ने आज विजया की आँखों में विलास की अनेक निन्दाओं को फीका कर दिया, और जिन्हें शत्रु कल्पना करके इन दोनों पिता-पुत्रों की हजारों प्रतिहिंसा की विभीषिका कल से ही उसे प्रति क्षण निष्क्रिय एवं निर्जीव किये जा रही थी, आज पुनः उन्हें ही अपना आदमी समझने का अवसर पाकर मानो उसकी जान में जान आ गयी।

कालिपद आकर बोला—'माँ जी, तो फिर अब मेरा जाना तो हुआ नहीं, क्या घर पर एक और खत लिख दूँ ?'

विजया इतस्ततः करके बोली—'अच्छा—'

कालिपद चला जा रहा था, विजया उसे पुकार कर सलज्ज दुविधा के साथ बोली—'मेरी सलाह तो यह है कालिपद, चिट्ठी जब लिख ही दी है; तो महीने भर के लिए एक-बार घर से हो आओ। उनकी भी बात रह जाय, तुम्हारा एकबार घर जाना भी—बहुत दिनों से तो गये नहीं—क्या राय है ?'

कालिपद मन ही मन आश्चर्यान्वित हुआ, किन्तु राजी होकर बोला—'अच्छा, महीने भर को हो आता हूँ माँ जी।'—यही कह कर उसके चले जाने पर इस कमजोरी से विजया को मानो एक तरह से बड़ी लज्जा होने लगी, किन्तु इसी कारण उसे एक बार फिर पुकार कर मना करने की भी हिम्मत उसे न पड़ी। इसमें भी शर्म महसूस होने लगी।

२०

घेरे की दीवार के एक किनारे कुछ कमरों को लेकर विजया की जमीनदारी का काम-काज चलता, उसके सामने एक घनी छायादार लीची का पेड़ रहने के कारण रहने वाले मकान के ऊपर के बरामदे से उन कमरों का कुछ भी दिख नहीं पड़ता। इसके अलावा, पूरब तरफ की दीवार में जो छोटा-सा दरवाजा था, उसमें से होकर

यातायात करने पर कौन कर्मचारी कब जाता-आता है इसका पता पाने का कोई उपाय न था।

उस दिन से दयालबाबू घर में फिर नहीं आये। काम करने दफ्तर में आते या नहीं, शर्म के कारण यह खबर भी विजया नहीं लेती, और विलासबिहारी का इस तरफ आना जाना नहीं होता, सो बगैर किसी से पूछे ही स्वयंसिद्ध की तरह मान लिया था। बीच में सिर्फ एक दिन सबेरे दस मिनट के लिये रासबिहारीबाबू भेंट करने आये थे, किन्तु साधारणरूप में बीमारी-संबन्धी दो-चार बातों के सिवा और कोई बात नहीं हुई।

मनुष्य की अन्त:करण की बात तो अन्तर्यामी ही जानते हैं, जिस प्रसन्नता और सहृदयता को लेकर उस दिन वे पुत्र के खिलाफ वकालत करके गये थे, किसी अज्ञात कारण से उनका वह भाव बदल गया है यह निश्चित समझ कर विजया उद्विग्न हो गयी थी। अन्ततः—छटपटा कर किसी तरह उसके दिन बीत रहे थे। इसी प्रकार और कुछेक दिन बीत गये।

आज तीसरे पहर विजया घर के आस-पास नदी के तीर पर जरा टहलने के इरादे से अकेली बाहर हो रही थी कि बूढ़े नायबजी बही-खाते का एक बड़ा-सा फाइल बगल में दबाये सामने आ खड़े हुए और अत्यन्त भक्तिभाव से नमस्कार करके बोले—'सरकार कहीं बाहर जा रही हैं! कन्हाईसिंह कहाँ है?'

विजया मुस्कुराती हुई बोली—'यहीं नजदीक में ही जरा नदी के तट पर टहलने जा रही हूँ। दरबान की ज़रूरत नहीं। मुझसे क्या आपको कोई जरूरत है!

नायब ने कहा—'जरा जरूरत तो थी सरकार। न हो तो कल ही सही।'—कह कर उसके लौटने का उद्योग करते ही विजया ने फिर मुस्कुरा कर पूछा—'अगर ज़रूरत थोड़ी ही है तो आज ही बताइये न! इतना बड़ा पुलिन्दा लेकर कहाँ चले हैं?'

नायब ने उसे दिखा कर कहा—'हुजूर के ही पास आया हूँ। गये साल का हिसाब-किताब साफ हो गया है—मिला कर देख लें, और एक दस्तखत कर दें। इसके अलावा, छोटे बाबू का हुक्म है कि चालू साल के रोजाना जमा-खर्च पर आपकी सही लेनी चाहिये।'

विजया अतिशय विस्मित होकर वापस आ बाहर के कमरे में बैठ गयी। नायब साथ आकर मेज पर फाइल रखकर ज्योंही उसे खोलने की कोशिश करने लगा त्योंही विजया ने रोक कर पूछा—'यह हुक्म छोटे बाबू ने कब दिया?'

'—आज ही सबेरे दे गये हैं।'

'—आज सबेरे वे आये थे?'

'—वे तो रोज ही आते हैं।'

'—इस वक्त दफ्तर में हैं?'

नायब ने गर्दन हिला कर कहा—'मुझे इधर भेज कर वे अभी अभी गये हैं।'

उस दिन की घटना किसी भी कर्मचारी से अविदित नहीं थी। नायब विजया के प्रश्न का इशारा समझ धीरे-धीरे बहुत-सी बातें कह गया। विलासविहारी प्रतिदिन ठीक ग्यारह बजे दफ्तर में आ जाते हैं, किसी के साथ अधिक बोलते नहीं, अपने मन से काम करके पाँच बजने पर घर लौट जाते हैं। दयाल बाबू के घर में बीमारी जब तक बिल्कुल आराम नहीं हो जाती उन्हें आने की ज़रूरत नहीं, इस कारण उन्हें छुट्टी दी गयी है—इत्यादि अनेक बातें उसने मालिक से बतायीं।

विजया लज्जित मुख से सारी कहानी चुपचाप सुनकर समझी कि विलास ने इस नये नियम को अत्यन्त क्षुब्ध होकर ही चलाया है। फिर भी उसने नहीं कही, कि अब तक जिसकी सही लेकर काम काज चलता था, अब भी चलेगा—उसकी अपनी सही की कोई जरूरत नहीं। बल्कि बोली—'इन सबों को रहने दीजिये, कल सबेरे एकबार आकर मेरी सही ले जायँ।'—कहकर नायब को बिदा कर उसी

जगह स्तब्ध होकर बैठी रही। बाहर दिन का प्रकाश क्रमशः विलीन होने लगा; पड़ोसियों के घरों में की गई शंख-ध्वनि से शान्त आकाश अशान्त हो उठा; फिर भी उसके उठने का लक्षण दीख न पड़ा। और कितनी देर इसी भाव से वह बैठी रहती सो कहा नहीं जा सकता, किन्तु बेहरा लालटेन लिये कमरे में घुसते ही अचानक अन्धेरे में मालकिन को अकेली देख मानो चौंक उठा, विजया स्वयं भी उसी प्रकार लज्जित होकर उठ खड़ी हुई, और बाहर आते ही एक बारगी ही स्तम्भित हो गई।

जिस वस्तु पर उसकी दृष्टि पड़ी, सो उसकी सुदूर कल्पना के भी परे का विषय था। वह क्या किसी भी कारण, किसी भी बहाने इस घर में फिर कदम रख सकता है ! और उसी धूमिल अन्धकार में स्पष्ट दीख पड़ा—उस दिन का वही साहेब हैट सहित करीब साढ़े ६ फुट लम्बी देह लिये फाटक के अन्दर प्रवेश कर रहा है, और साधारण बंगालियों से अढ़ाई-गुना लंबे डेग बढ़ाता हुआ इसी ओर आ रहा है।

आज उसने उसे पुलिस का अफसर समझने की भूल न की। किन्तु आनन्द की उस अपरिमित प्रदीप्त रेखा को आकाश-पाताल-व्यापी उसकी निराशा और भय का अन्धकार लहमे भर में निगल गया। वृक्षों से घिरे टेढ़े-मेढ़े पथ पर बीच-बीच में उसका शरीर अदृश्य तो होने लगा पर पथ के कंकड़ पर उसके जूते के शब्द क्रमशः सन्निकट होने लगे। विजया ने मन-ही-मन सोचा—आदर-सत्कार के साथ उसे बिठाना भयानक अनुचित है, परन्तु दरवाजे के बाहर से ही अवज्ञा के साथ उसे विदा करना भी कठिन है।

इस संकटमयी स्थिति से निकलने का कोई उपाय उसे नहीं सूझा। जिस क्षण रास्ते की मोड़ पर कामिनी पुष्प वृक्ष के बगल में उसका लंबा सीधा शरीर उसके सामने आ पड़ा, उसी क्षण वह पीछे की ओर मुड़कर बड़े वेग से अपने कमरे में घुस गई। बूढ़ा नायब बगैर इधर-उधर देखे अपने मन से जा रहा था; अचानक साहब देखकर भयभीत

हो उठा। किन्तु साहब के प्रश्न करने पर उसे पहचान कर जान में जान आई, और आसानी से जवाब दिया—'हाँ, वे अभी बाहर के कमरे में ही हैं'—कहकर चला गया। प्रश्न और उत्तर दोनों ही विजया के कानों में पहुँचे। क्षण भर बाद ही कमरे में प्रवेश करके नरेन्द्र ने नमस्कार किया। छड़ी और टोप मेज पर रख कर मुस्कुराता हुआ बोला—'देख तो रहा हूँ, मेरी दवा ने कमाल कर दिखाया! वाह!'

क्षणभर पहले ही विजया ने मन-ही-मन सोचा था—आज शायद वह आँख उठा कर देख भी न सकेगी, एक बात का जवाब तक उसके मुँह से न निकलेगा। पर आश्चर्य तो यह है कि इस व्यक्ति का कण्ठ स्वर सुनते ही सिर्फ उसकी दुविधा ही इन्द्रजाल की तरह लुप्त हो गई, सो बात नहीं, उसके हृदय के अन्धकार में किसी अज्ञात कोने में पड़ी सुर-चढ़ी वीणा के तार पर न जाने किसने अँगुली फेर दी; और क्षण भर में ही विजया अपने समस्त विषाद भूल कर बोल उठी—'आपने कैसे जाना? मुझे देखकर, या किसी से सुनकर!'

नरेन्द्र बोला—'सुनकर। क्यों, आपने क्या दयाल बाबू से सुना नहीं, कि मेरी दवा खानी तक नहीं पड़ती, सिर्फ नुस्खे पर एक बार नजर दौड़ाते ही आधा काम हो जाता है!'—कहकर अपनी रसिकता में प्रफुल्ल हो अट्टहास से घर को कँपा दिया।

विजया ने समझा, वह दयाल के मुँह से सब कुछ सुन कर ही आज मजाक करने आया है इसीलिये इस असंगत अट्टहास से मन-ही-मन नाराज होकर चुटकी लेती हुई बोली—'ओह—इसीलिये शायद बाकी आधे को पूरा करने के लिये दया करके फिर नुस्खा लिखने आये हैं!'

ठठोली खाकर नरेन्द्र की हँसी रुक गई। बोला—'सच बता रहा हूँ, यह एक अच्छा मजाक है।'

विजया बोली—'इसीलिये शायद इतना खुश हो रहे हैं!'

नरेन्द्र का मुख गम्भीर हो गया। बोला—'खुश हो रहा हूँ!' बिल्कुल नहीं। अवश्य यह बात बिल्कुल अस्वीकार भी नहीं कर सकता,

कि सुनते ही पहले ज़रा खुशी हुई थी; पर उसके बाद की घटना सुन कर दुखी भी हूँ। विलास बाबू का स्वभाव वैसा अच्छा नहीं यह सच है—यों ही निरर्थक गुस्सा में आकर दूसरे का अपमान कर बैठते हैं; परन्तु इसी कारण आप भी असहिष्णु हो कई अपमानजनक बातें कह दें, यह भी तो ठीक नहीं। जरा सोच कर देखें, बात फैल जाने पर भविष्य में कितनी बड़ी एक लज्जा एवं क्षोभ का कारण बन जायगा। मुझ पर विश्वास करें, वास्तव में सुनकर मैं बहुत दुखी हूँ। मेरे लिये आप के आपस में इस प्रकार की एक अप्रीतिकर घटना घटित होने—'

इस व्यक्ति के हृदय की पवित्रता पर विजया मन-ही मन मुग्ध हो गई। तथापि परिहास के स्वर में बोली—'पर हँसी भी तो रोक नहीं पा रहे हैं।'—कहकर स्वयं भी हँस पड़ी।

नरेन्द्र जबरन इस बार अत्यन्त गंभीर होकर बोला—'क्यों आप बारबार वही बात सोच रही हैं? सचमुच मैं अत्यन्त दुखी हूँ। पर उस समय मुझे आप दोनों के सम्बन्ध का पता न था।' जरा चुप रहकर फिर बोला—'उसी दिन उनके पिताजी ने नीचे बिठा सारी बातें बता कर कहा—ईर्ष्या है! दयालबाबू ने भी कल यही बात कही। सुनकर मैं कितना लज्जित हो गया हूँ सो कह नहीं सकता। पर इतने लोगों के बीच ईर्ष्या करने लायक मेरे पास है ही क्या; मुझे यही तो समझ में नहीं आता। आप ब्राह्म-समाजी हैं, जरूरत पड़ने पर सब के साथ बातें करती हैं, मेरे साथ भी करती हैं। इसमें उन्हें कौन-सा दोष दिखाई पड़ गया, आज तक मुझे पता न चला। जो भी हो, मुझे आप लोग माफ करेंगे—और उसे बंगला में क्या कहते हैं, अभि—*अभिनन्दन! मैं भी आपका वही किये जा रहा हूँ, आप लोग सुखी हों।

उसने अपने व्यवहार का उल्लेख करते हुए भी विजया के उस दिन के व्यवहार के सम्बन्ध में अणुमात्र भी इंगित नहीं किया सो

---

* बधाई

विजया ने लक्ष्य किया था; पर उसकी अन्तिम बात पर विजया की आँखों में अचानक आँसू उमड़ पड़े। वह गर्दन फिराकर किसी तरह आँखों के आँसू सम्हालने लगी।

प्रत्युत्तर की प्रतीक्षा दिये बगैर ही नरेन्द्र ने पूछा—'अच्छा, उस दिन कालिपद के द्वारा एकाएक स्टेशन पर माइक्रोस्कोप क्यों आपने भेजा था, कहिये?'

विजया रुँधे गले को साफ करके बोली—'अपनी चीज आपने खुद ही लौटानी चाही थी।'

नरेन्द्र ने कहा—'लेकिन दाम की बात तो उससे कहला नहीं भेजी? वैसे तो मेरा—'

विजया ने कहा—'नहीं। बुखार में मुझसे भूल हो गई थी। पर उस भूल की सजा भी तो आपने मुझे कम नहीं दी!'

नरेन्द्र लज्जित होकर बोला—'पर कालिपद ने जो कहा—'

विजया बाधा देकर बोली—'सो मैं सुन चुकी हूँ। मगर वह कुछ भी क्यों न कहे, आप को उपहार देने का घमंड मुझे हो सकता है—यह आपने कैसे विश्वास कर लिया? और सचमुच अगर मैंने ऐसा किया भी हो तो अपने हाथ से क्यों नहीं सजा दी? क्यों नौकर के द्वारा मेरा अपमान कराया? मैंने आप का क्या बिगाड़ा था?'—कहते कहते ही उसका गला मानो रुँध गया।

नरेन्द्र ने लज्जित एवं अत्यन्त आश्चर्यान्वित होकर विजया के मुँह की तरफ देखा—वह गर्दन फिराकर खिड़की के बाहर देख रही है। उसका मुँह तो दिखाई पड़ा नहीं, दिखायी पड़ी सिर्फ उसके गले में एक हीरा की कण्ठी जो मन्द दीपालोक में रंग-बिरंगी किरणों से जगमग कर रही थी। दोनों कुछ देर मौन रहे, बाद में नरेन्द्र दुखी स्वर में धीरे-धीरे बोला—'काम मेरा अच्छा नहीं हुआ सो मुझे उसी वक्त मालूम पड़ गया था, पर गाड़ी तब चल पड़ी थी? कालिपद का क्या अपराध है? उस पर नाराज होना मेरे लिये बिल्कुल उचित नहीं था।' जरा और चुप

रहने के बाद बोला—'देखिये, यह ईर्ष्या कितनी बुरी है, इस बार मैं अच्छी तरह समझ गया हूँ। वह सिर्फ अपने ही झोंक में बढ़ती ही नहीं चली जाती है; बल्कि छूत की बीमारी की तरह दूसरों पर चोट करने से भी नहीं चूकती। इस वक्त तो मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि मुझसे ईर्ष्या करने का विलास बाबू के लिये कोई कारण हो ही नहीं सकता। उनके पिताजी भी इसके लिये लज्जा और दुख प्रगट कर रहे थे, पर आप सुनकर आश्चर्य करेंगी, कि उस वक्त मुझसे स्वयं भी कम भूल नहीं हुई थी।'

विजया ने मुँह फिराकर पूछा—'आपकी भूल कैसी?'

नरेन्द्र ने अत्यन्त सहज एवं स्वाभाविक भाव से उत्तर दिया—'मुझे नाहक उस तरह अपमानित करने पर आप जो सचमुच दुखी हो रही थीं, सो तो आपकी बात सुनकर सबों ने ही समझ लिया था। तिस पर रासविहारी बाबू ने जब नीचे जा अपने लड़के की ईर्ष्या की बात बता दुख करने को मना कर दिया तब अचानक मेरा दुख मानो और बढ़ गया। सिर्फ मन में यही होने लगा कि जरूर कुछ न कुछ कारण है; नहीं तो यों ही कोई किसी से शत्रुता मोल नहीं लेता। आज मैं आपको सच्ची बात बता रहा हूँ—उसके बाद आठ-दस दिन तक शायद चौबीस घंटे के बीच तेईस घंटे मैं आपको ही सोचता रहता। और आपकी बीमारी की हालत में कही हुई बातें ही मन को घेरे रहतीं। इसीसे तो कहा था—यह कैसी भयानक छूत की बीमारी है। काम-काज जहन्नुम में गया—दिन-रात आपकी ही बातें मन में चक्कर लगाती रहतीं। इसकी भी क्या कोई जरूरत थी, कहिये तो। और सिर्फ क्या इतना ही? दो-तीन दिन इसी रास्ते निरर्थक चक्कर लगा गया हूँ सिर्फ आपकी एक झाँकी के लिये! कई दिनों तक एक अच्छा पगला भूत मेरी गर्दन पर सवार था!'—कहकर हँसने लगा।

विजया ने न तो मुँह फिराकर देखा ही और न किसी बात का

चली गयी; और एक दूसरे व्यक्ति की हँसी लहमे भर में गायब हो गयी। जिस रास्ते वह बाहर हुई उसी तरफ अन्धेरे में निर्निमेष दृष्टि से नरेन्द्र ताकता हुआ हक्का-बक्का सा होकर सिर्फ सोचने लगा—न जाने वह पुनः कौन से नये अपराध की सृष्टि कर बैठा।

इसलिये बेहरा ने आकर जब कहा, आप जायँ नहीं, आपकी चाय तैयार हो रही है—तब नरेन्द्र घबड़ाकर ही बोल उठा—'मुझे तो चाय की जरूरत नहीं।'

'पर माँजी ने आपको बैठने को कहा है।'—कहकर बेहरा चला गया। इससे भी नरेन्द्र को कम आश्चर्य नहीं हुआ।

करीब पन्द्रह मिनट के बाद नौकर के हाथ चाय और अपने हाथ में जलपान की तश्तरी लिये विजया ने प्रवेश किया। हजार कोशिश करने पर भी वह अपने मुख पर से रुलाई की छाया पोंछने में समर्थ न हो सकी सो उस धीमी रोशनी में किसी दूसरे की आँखों से छिपी रह भी सकती थी, पर डाक्टर के अभ्यस्त नेत्रों को वह धोखा न दे सकी। लेकिन इस बार पुनः सहसा वह कोई राय जाहिर न कर बैठा। कुछ थोड़े से दिनों में ही वह बहुत सी बातों में सतर्क रहना सीख गया था। जिस दिन लगभग अपरिचित होकर भी उसने भीतर का कौतूहल और इच्छा की चञ्चलता दमन न कर सकने पर हाथ से विजया की ठोड़ी पकड़ ली थी, आज उसका वह दिन नहीं था। इसलिये वह चुप कर गया।

नौकर मेज पर चाय रखकर चला गया। विजया उसी के निकट जलपान की तश्तरी रखकर अपनी जगह जा बैठी। नरेन्द्र उसी क्षण तश्तरी अपने पास खींचकर इस प्रकार खाने में मशगूल हो गया मानो इसीलिये प्रतीक्षा कर रहा था।

पाँच-छः मिनट चुपचाप बीत जाने पर विजया ने ही पहले बात छेड़ी। नीरवता का गुप्त भार अब और न सहकर अचानक मानो

जोर करके ही हँसकर बोली—'क्यों, आपने अपने उस पगले भूत की बात तो खत्म की ही नहीं ?

नरेन्द्र शायद दूसरी ही बात सोच रहा था, इसीसे उसने मुख उठाकर पूछा—'किसकी बात पूछ रही हैं ?'

विजया ने कहा—'वही पगला भूत जो कई दिन तक आपकी गर्दन दबाये पड़ा था, उतर तो गया ?'

इस बार नरेन्द्र भी हँसता हुआ गर्दन हिलाकर बोला—'हाँ उतर गया।'

विजया बोली—'जाने दीजिये ! तब तो कहिये आप बच गये। नहीं तो क्या पता, और कितने दिन आपको घोड़-दौड़ कराता फिरता !'

नरेन्द्र चाय का प्याला मुँह से सटाकर सिर्फ़ बोला—'हाँ।'

विजया पुनः कोई एक अच्छी-सी बात बोलना तो चाह रही थी, पर अचानक कोई बात उसे मिली नहीं, सिर्फ़ आकण्ठ-उच्छ्वसित दीर्घ-निश्वास को दबाकर चुप रह गयी। दूसरे की गर्दन पर से भूत उतर जाने के आनन्द को अब और अधिक दूर तक ढोने की शक्ति उसमें रही नहीं।

पुनः कुछ देर सारा कमरा स्तब्ध हो रहा। नरेन्द्र ने धीर और स्वस्थ भाव से चाय का प्याला खत्म कर मेज पर उसे रख दिया; जेब से घड़ी निकाल कर बोला—'अब दस मिनट समय बाकी है, मैं चला।'

विजया ने मृदु स्वर में प्रश्न किया—'कलकत्ता वापस जाने के लिये शायद यही आखिरी ट्रेन है ?'

नरेन्द्र उठ खड़ा हुआ, टोप सिर पर रखकर बोला—'एक और भी तो है, पर वह डेढ़ घंटे बाद जायगी। चलता हूँ—नमस्कार' कहकर छड़ी ले बड़ा वेग से ही कमरे से बाहर हो गया।

२१

विलास ठीक समय पर दफ्तर आता और अपना काम करके घर चला जाता ; अत्यन्त जरूरी होने पर किसी कर्मचारी को भेज विजया की सलाह लेता पर आप नहीं जाता। बगैर बुलाये अपने मन से वह आयेगा नहीं यह भी विजया समझ गई थी। और उसके व्यवहार में अनुताप एवं आहत अभिमान की व्यथा के सिवा क्रोध की ज्वाला प्रगट नहीं हो पाती, इस कारण विजया का अपना क्रोध भी शान्त हो गया था।

बरन अपने व्यवहार में ही मानो किसी एक नाटक के अभिनय का आभास अनुभव करके बीचबीच में उसे बड़ी शर्म महसूस होती। जब तब उसके मन में यह भाव उठता, न जाने कितने आदमी इसी बात को ले हँसी-मजाक कर रहे हैं। इसके अलावा जो आदमी इतने दिन सबकी आँखों में सर्वे-सर्वा होकर विराजमान था, खास कर जमीनदारी के काम-काज में जिन पर रोब जमाकर जिन्हें शत्रु बना लिया था, उन सबों के निकट अचानक उसे इतना तुच्छ बनाकर विजया अपने निभृत अन्तःकरण में सचमुच व्यथा अनुभव कर रही थी। पहली स्थिति को वापस न लाकर सिर्फ इसी घटना को किसी तरह यदि पूरी उपेक्षा कर दे सकती तो वह बच जाती। इस प्रकार के भाव जब उसके मन में तरंगित हो रहे थे, उसी समय बेहरा ने आकर खबर दी, कि विलास बाबू मिलना चाहते हैं।

बिल्कुल नई बात ! विजया चिट्ठी लिख रही थी; बगैर मुँह उठाये ही बोली —'आने को कहो।' उसका अन्तःकरण अज्ञात आशंका से आन्दोलित होने लगा ; किन्तु विलास के प्रवेश करते ही वह उठ खड़ी होकर शान्त भाव से नमस्कार करके बोली—'आइये।' विलास आसन ग्रहण करके बोला—'काम की अधिकता से आ नहीं सका, तुम्हारा स्वास्थ्य तो ठीक है ?'

विजया गर्दन हिलाती बोली—'हाँ !'

'—दवा वही चल रही है ?'

विजया ने इसका जवाब दिया नहीं, किन्तु विलास ने भी प्रश्न को न दुहराकर दूसरी ही बात छेड़ी। बोला—'कल नव-वर्ष का नया दिन है। मेरी इच्छा हो रही है सबको कल सवेरे इकट्ठा करके जरा ईश्वर का नाम लिया जाय।'

उसने जो अपने प्रश्न को लेकर अधिक जिद् नहीं किया, सिर्फ इसीसे विजया की छाती पर से एक बोझ उतर गया। वह खुश होकर बोल उठी—'यह तो बड़ी अच्छी बात है !'

विलास बोला—'पर अनेक कारण से मन्दिर जाने की सुविधा मिली नहीं। अगर तुम्हारी राय हो तो मैं तो कहूँगा इसी जगह—'

विजया ने तत्क्षण सहमत होकर राय जाहिर की, यहाँ तक कि, उत्साहित हो उठी। बोली—'तो फिर घर को जरा फूल, पत्ता, लता आदि से सजा देना क्या अच्छा नहीं होगा ! आपके घर में तो फूल की कमी नहीं—अगर माली को हुक्म देकर कल भोर से ही—क्या राय है आपकी ? ऐसा क्या नहीं हो सकता ?'

विलास किसी विशेष आनन्द का आडम्बर दिखाये बगैर ही स्वाभाविक स्वर में बोला—'अच्छा, ऐसा ही होगा। मैं सारा इन्तजाम कर दूँगा।'

विजया क्षण भर मौन रहकर बोली—'कल तो वर्ष का प्रथम दिन है। अच्छा, मेरी राय है कि कुछ खाने-पीने का अगर बन्दोबस्त कर दिया जाय तो—'

विलास ने इस प्रस्ताव का भी अनुमोदन के बाद जलपान का आयोजन जिससे अच्छी तरह हो, इस सम्बन्ध में भी नायब को हुक्म कर जायगा यह बता दिया। और भी दो चार इधर-उधर की बातों के बाद उसके विदा होने पर बहुत दिन बाद आज विजया के हृदय में तृप्ति और उल्लास का मलय पवन बहने लगा। उस दिन की उस खुल्लम-

खुल्लमखुल्ला भिड़न्त के बाद से गुप्त ग्लानि के रूप में जो वस्तु उसे निरन्तर सता रही थी, उसका बोझ कितना विशाल था, आज उससे छुटकारा पाकर उसे ऐसा अनुभव हुआ जैसा कि शायद और किसी दिन हुआ ही नहीं। इसीलिये आज व्यथा के साथ सोचने लगी—इन कई एक दिनों में ही विलास पहले की अपेक्षा मानो बहुत दुर्बल हो गया है। अपमान और पश्चात्ताप की चोट ने इसकी प्रकृति को जो परिवर्तन कर दिया है उसे आँखों के सामने सुस्पष्ट देख अनजाने ही विजया के मुँह से एक लम्बी आह निकल पड़ी; और बूढ़े रासविहारी की उन दिनों की बातों पर चुपचाप बैठे मन ही मन सोच-विचार करने लगी। विलासविहारी जो उसको अत्यन्त प्यार करता है उसे भाषा, इंगित और भंगी सब प्रकार से व्यक्त किया जा चुका है, और एक दिन के लिये भी छिपे रूप में यह प्रेम-गाथा विजया के हृदय में स्थान जमा नहीं पाती। वरन सन्ध्या के सघन अन्धकार में सूने कमरे में जब उसके संग-विहीन प्राण व्यथा से व्याकुल हो उठते उस वक्त कल्पना में निःशब्द-पद संचार से धीरे-धीरे आकर जो उसके बगल में आ बैठता वह विलास नहीं एक और व्यक्ति। अलस दुपहरी में जब किताबों में मन नहीं टिकता, कसीदा काढ़ना भी असह्य प्रतीत होता, वह विशाल सूना भवन दोपहर की धूप में काटने दौड़ता उस समय सुदूर भविष्य में एक दिन इसी शून्य भवन को ही पूर्ण करके जिस गार्हस्थ्य-जीवन का सरस चित्र उसके हृदय में धीरे-धीरे प्रस्फुटित हो उठता उसके मध्य कहीं भी विलास के लिये ज़रा सी भी जगह न थी। और जो व्यक्ति सारी जगह पर कब्ज़ा जमाकर बैठता, संसार-यात्रा के दुर्गम-पथ में सहायक वा सहयोगी के हिसाब से उसकी कीमत विलास की अपेक्षा बहुत कम थी। वह जैसा अपटु था, वैसा ही निरुपाय भी। मुसीबत के दिनों में इससे किसी तरह की मदद मिलने की कोई उम्मीद नहीं। फिर भी इस निरर्थक मनुष्य का ही समस्त निरर्थक बोझ को अपने जीवन भर सिर पर लादे चल रही है

यह सोचकर की विजया का सम्पूर्ण काय और मन अपरिमित आनन्द के वेग से थर-थर काँपने लगता। विलास के चले जाने पर विजया के इस मनोभाव में आज भी कोई व्यति क्रम घटित हुई सो बात नहीं, पर आज बिना प्रार्थना के ही विलास के अपराध पर पुनर्विचार करने का भार उसने अपने हाथ ले लिया, और घटनाचक्र से उसके स्वभाव का जो परिचय अब तक उसे मिला है वास्तविक स्वभाव उसका इतना हीन नहा—बगैर किसी तर्क-वितर्क के ही अपने आप उसने यह मान लिया। यहाँ तक कि, अत्यन्त उदारता के साथ यह भाव भी आज न छिपा सकी कि विलास की मानसिक स्थिति में पड़कर संसार के अधिकांश व्यक्ति भी इससे भिन्न व्यवहार न दिखा पाते। उसने जो प्यार किया है, और प्यार के अपराध में ही उसे अपमानित और दण्डित किया गया है इसीकी बार-बार याद करके आज करुणा-मिश्रित ममता के साथ उसने उसे क्षमा कर दी।

सवेरे उठकर उसने सुना, विलास बहुत पहले से ही मजदूरों को लेकर घर सजाने के काम में लग गया है। झटपट तैयार हो नीचे आकर लज्जित भाव से बोली—'मुझे आपने बुला क्यों नहीं भेजा?'

विलास स्निग्ध स्वर में बोला—'जरूरत क्या थी!'

विजया ने जरा हँसकर प्रसन्न मुख से जवाब दिया—'मैं समझती हूँ, मैं इतनी अकर्मण्य हूँ कि इसमें भी मदद नहीं कर सकती? अच्छा, अब बतायें मैं क्या करूँ?

अनेक दिन बाद आज विलास हँसा, बोला—'तुम सिर्फ नजर रखो कि हमारे काम में कोई भूल तो नहीं होती।

'—अच्छा'—कहकर विजया मुस्कुराती हुई एक कोच पर जा बैठी। कुछ देर बाद ही उसने प्रश्न किया—'जलपान का बन्दोबस्त?'

विलास ने फिरकर देखा, बोला—'सब कुछ ठीक है—कोई चिन्ता नहीं।'

'—अच्छा, मैं क्यों नहीं उसी तरफ जाऊँ ?'

'—ठीक तो है ।'—कहकर विलास पुनः अपने काम में लग गया ।

आठ बजे दिन के अन्दर ही सारा आयोजन पूर्ण हो गया । इस बीच में विजया अनेक बार आ जाकर कई छोटी-मोटी बातों में विलास की सलाह ले गयी है—कहीं मतभेद नहीं । न जाने कब उस संचित विरोध की ग्लानि नष्ट होकर दोनों के बीच बातचीत का रास्ता इतना सहज और सुगम बन गया था कि शायद दोनों में से किसी ने ख्याल ही नहीं किया ।

विजया हँसकर बोली—'मुझको बिल्कुल अनभिज्ञ समझकर मेरी उपेक्षा तो आपने कर दी, पर मैंने भी आपकी एक भूल पकड़ ली है सो कहे देती हूँ ।'

विलास ने जरा आश्चर्यान्वित होकर पूछा—'अनभिज्ञ तो मैं बिल्कुल नहीं समझता, पर वह भूल है कैसी ?'

विजया बोली—'हम हैं तो कुल चार-पाँच आदमी पर जलपान का आयोजन हो गया है करीब बीस आदमियों का सो पता है ?'

विलास ने कहा—'सो तो है ही ! पिताजी ने अपने कतिपय इष्ट-मित्रों को निमन्त्रित किया है । वे कितने हैं, कौन कौन आयेंगे, सो तो ठीक पता नहीं ।

विजया नितान्त विस्मय-विमुग्ध होकर बोली—'कहाँ, सो तो मुझसे बताया नहीं ?'

विलास ने स्वय भी विस्मित होकर पूछा—'यहाँ से कल मेरे चले जाने के बाद पिताजी ने क्या तुम्हें पत्र के द्वारा सूचित नहीं कर दिया ?'

'—नहीं ।'

'—पर उन्होंने जो साफ बताया—' विलास ठिठक गया ।

विजया ने पूछा—'क्या बताया ?'

विलास क्षणभर स्थिर रहकर बोला—'शायद मुझे ही सुनने में भूल हुई हो। चिट्ठी लिखकर सूचित करने की बात शायद वे भूल गये।'

विजया ने प्रश्न नहीं किया, पर उसके हृदय की प्रसन्नता की चाँदनी सहसा मानो बादलों से ढक गई।

आधे घंटे बाद रासविहारी स्वयं उपस्थित हुए, एवं नौ बजे के भीतर ही उनके निमन्त्रित इष्ट-मित्रों का दल एक-एक कर दिखाई देने लगा। ये सबके सब ब्राह्म-समाजी नहीं थे, संभवतः वे रासविहारी का साग्रह अनुरोध न टाल सकने के कारण आने को बाध्य हुए थे।

रासविहारी बाबू ने सबों का बड़े आदर से स्वागत किया, और विजया के साथ जिनका साक्षात् परिचय नहीं था उनके साथ परिचय कराने के सिलसिले में निकट भविष्य में इस बालिका के साथ अपने भावी घनिष्ठ सम्बन्ध की ओर इशारा करने से भी नहीं चूके। अस्फुट स्वर में स्वागत करती हुई विजया ने उनसे बैठने का अनुरोध किया। जब वह इन रस्म अदा करने के कामों का अभिनय करने में मशगूल थी, उसी समय निकटवर्ती बगीचे के संकरे पथ पर दयाल बाबू आते दिखाई दिये। पर आज वे अकेले नहीं, एक अपरिचित तरुणी भी उनके साथ थी। तरुणी देखने में मनोहर, पर उम्र में शायद विजया से कुछ बड़ी थी। नजदीक आकर दयालबाबू ने अपनी भानजी कहकर उसका परिचय दिया। नाम है नलिनी; कलकत्ते के कालेज में बी० ए० में पढ़ती है। अभी गर्मी की छुट्टी शुरू तो नहीं हुई, पर मामी की बीमारी में सेवा-शुश्रूषा के लिये कुछ दिन पहले ही दो दिन हुए मामा के यहाँ आयी है, और गर्मी की छुट्टी यहीं बिताने का निर्णय किया है।

नलिनी को विजया ने कलकत्ते में बिल्कुल देखा नहीं हो सो तो बात नहीं, किन्तु परिचय नहीं था। फिर भी आज इतने परिचित एवं अपरिचित पुरुषों के बीच सबसे अधिक नजदीकी वही प्रतीत हुई। विजया ने दोनों हाथ बढ़ाकर उसका स्वागत किया, खींचकर उसे

कमरे में ले गईं, और बगल में बिठाकर प्रेम-प्रदर्शन करना शुरू कर दिया।

साढ़े नौ बजे उपासना शुरू होने की बात थी। अभी कुछ देर थी इसलिये सभी बराम्दे में खड़े हो वार्तालाप कर रहे थे, इसी समय, रासविहारी की ऊँची आवाज कमरे के बीच से सुन पड़ी। वे अत्यन्त आदर के साथ मानो किसी को कह रहे थे—'आओ बेटा, आओ। तुम ठहरे कामकाजी आदमी, वादा करके आ सकोगे यह मुझे उमीद न थी।'

यह सम्माननीय कामकाजी व्यक्ति कौन है जानने के लिये विजया ने ज्योंही मुँह उठाया कि देखा नरेन्द्र! पर उसे यह असंभव प्रतीत हुआ, एकाएक विश्वास हुआ नहीं। कौतूहल से नलिनी ने भी साथ ही साथ मुँह उठाकर कहा—'नरेन्द्र बाबू।'

रासविहारी ने उसे बुलाया है, और वही निमन्त्रण पूरने के लिये इस घर में प्रवेश किया है। घटना ऐसी अचिन्तनीय थी कि विजया की सारी विचार-शक्ति तक मानो अव्यवस्थित हो गयी। अब वह उस ओर मुँह उठाकर देख न सकी, पर विलासविहारी के विनयपूर्ण स्वागत के शब्द उसे स्पष्ट सुनाई पड़े, और दूसरे ही क्षण दोनों को लेकर रासविहारी कमरे के बीच में आ खड़े हुए। साथ ही साथ और भी बहुतेरे आये। उस समय वृद्ध शान्त-गम्भीर स्वर में इन दो नवयुवकों को संबोधित करके कहने लगे—'तुम दोनों अपने अपने बाप के रिश्ते से आपस में भाई होते हो, यह बात ही आज मैं तुम दोनों से खासकर बताना चाहता हूँ। विलास! वनमाली गये, जगदीश गये, मेरी भी बुलाहट आ गई है। इस संसार में हम तीनों के बीच सिर्फ शरीर को छोड़ और कोई भिन्नता न थी—इस बात को आजकल के तुम छोकड़े शायद समझोगे नहीं—समझना सम्भव भी नहीं—मैं समझाना चाहता भी नहीं। सिर्फ आज नववर्ष के इस पुनीत दिवस पर तुम दोनों से अनुरोध करना चाहता हूँ कि तुम लोग आपसी विद्रोह को

कालिमा से इस बूढ़े के बाकी कुछ दिनों को अन्धकार मत कर छोड़ना—' उनकी अन्तिम बात इस तरह काँप उठी मानो रुलाई से रुक गई हो ! नरेन्द्र अब बर्दाश्त न कर सका । वह आगे बढ़कर विलास का एक हाथ अपने दाहिने हाथ में ले आवेग के साथ बोला—'विलास बाबू, मेरे सारे अपराध आप क्षमा करें । मैं क्षमाप्रार्थी हूँ ।'

प्रत्युत्तर में विलास हाथ छुड़ा बड़े जोर से नरेन्द्र को छाती से लगाकर बोल उठा—'अपराध मैंने ही किये हैं नरेन ! मुझे ही तुम क्षमा करो ।

बूढ़े रासविहारी आँखें मूँद कंपित मृदु स्वर में बोल उठे—'हे सर्वशक्तिमान परमपिता परमेश्वर ! इस दया, इस करुणा के लिये तुम्हारे श्री चरणों में मेरा कोटि-कोटि नमस्कार !'—यह कहकर दोनों हाथ जोड़ उन्होंने कपार से भिड़ा लिया, और चादर में आँखें पोंछते हुए बोले—'आज का शुभ मुहूर्त्त तुम दोनों के जीवन में अक्षय हो ! आप लोग भी आशीर्वाद करें !' कहकर उन्होंने विस्मय-विह्वल अभ्यागत अतिथियों के प्रति दृष्टिपात किया ।

दयाल के सिवा और किसी को कुछ पता नहीं था, इसलिये इस मर्मस्पर्शी करुण अनुष्ठान का वास्तविक तात्पर्य हृदयंगम न कर सकने के कारण वास्तव में उन सबों के विस्मय की सीमा नहीं थी । रासविहारी लहमे भर में यह अनुभव करके उन सबों की ओर देख स्निग्धभाव से जरा हँसकर बोले—'मेरी तो हालत भई गति साँप-छुछुन्दर केरी' वाली है । मेरा यह भी बच्चा, वह भी बच्चा—' कहकर नरेन्द्र और विलास को आँख के इशारे से दिखाते हुए बोले—'मेरे दाहिने हाथ की जैसी पीड़ा, बाँये हाथ की भी वैसी ही । पर आप लोगों की दया से आज मेरे लिए बड़े सौभाग्य का दिन है, आनन्द का दिन है ! मैं और क्या कहूँ !'

भीतरी मामले को अच्छी तरह बगैर समझे भी प्रत्युत्तर में सबों ने एक प्रकार की हर्षसूचक ध्वनि की ।

रासबिहारी गर्दन जरा-सा हिलाकर दुपट्टे की छोर में पुनः आँखें पोंछ निकटवर्ती आसन पर चुपचाप जा बैठे। उस स्निग्ध गम्भीर मुख के प्रति देख उपस्थित व्यक्तियों में कोई भी अनुमान करने से बाकी न रहा कि उनका हृदय अनिर्वचनीय भावोद्रेक से इस प्रकार परिपूर्ण हो उठा है कि वाणी के लिए उसमें तिलभर भी जगह नहीं। दयाल बाबू अपनी सफेद दाढ़ी पर हाथ सहलाते हुए उठ खड़े हुए एवं ईश्वर उपासना के भूमिका के बहाने बोले—'जहाँ दो विरोधी हृदयों का सम्मेलन हो जाय वहीं ईश्वर का आसन बिछा रहता है। इसलिये आज यहाँ परम पिता के आविर्भाव के सम्बन्ध में दुविधा करने की कोई आवश्यकता नहीं।'

इसके बाद उन्होंने नव-वर्ष के प्रथम दिन में करीब पन्द्रह मिनट तक एक सुन्दर उपासना की। उनके निष्कपट विश्वास एवं आन्तरिक भक्ति के कारण उन्होंने जो कुछ भी कहा वह सत्य एवं मधुर होकर सबके हृदय में जा पहुँचा। सबके नेत्रों में सरलता का एक आभास दीख पड़ा; सिर्फ रासबिहारी के निमीलित नेत्रों से अश्रु की अविच्छिन्न धारा बहने लग पड़ी, अन्त हो जाने पर भी एक ही भाव से बैठे रहे। उनमें चैतन्य है भी या नहीं—बहुत देर तक तो समझ में आया ही नहीं।

एक और व्यक्ति जिसके मन की बात का आभास न मिला—वह थी विजया। बराबर वह नीची निगाह किये पत्थर की मूर्त्ति की तरह स्थिर होकर बैठी रही। उसके बाद जब उसने मुँह उठाया, तो चेहरा उसका पत्थर की तरह ही अस्वाभाविक रूप में सफेद दीख पड़ा।

दयाल की भक्ति-गद्‌गद्‌ ध्वनि की प्रतिध्वनि उस समय बहुतों के हृदय में झंकृत हो रही थी, इसी समय रासबिहारी ने आँखें खोलीं और उठकर खड़े हो रुलाई के स्वर में बोले—'साधना का मेरा वैसा बल नहीं; पर दयाल के महाकाव्य में कितना विशाल सत्य है आज मैंने उसे प्राप्त किया है। दो मिले हुए हृदयों की संधि से उस एक मात्र

अद्वितीय निराकार परब्रह्म का आविर्भाव होता है, आज अन्तःकरण के बीच प्रत्यक्ष साक्षात्कार करके जीवन सदा के लिये धन्य हो गया।'— यह कहकर वे आगे बढ़े और दयाल को छाती से चिपका कर कंपित स्वर में बोल उठे—'दयाल! भैया! यह सिर्फ तुम्हारे ही पुण्य का प्रताप है, तुम्हारा ही आशीर्वाद है।'

दयाल की आँखें छलछला आयीं, किन्तु कोई बात मुँह से न निकली, चुपचाप खड़े रहे।

बगल वाले कमरे में ही जलपान का भरपूर आयोजन हुआ था। इस समय विलास के उस तरफ संकेत करते रासविहारी उसे रोक कर समवेत अतिथियों को सम्बोधित करते हुए बोले—आप लोगों के निकट आज एक और आशीर्वाद की भिक्षा चाहता हूँ। आज यदि बनमाली जीवित होते अपनी कन्या के ब्याह की बात आप ही आप लोगों से बताते, मुझे बताना न पड़ता; लेकिन इस समय वह जिम्मेदारी मुझ पर ही आ पड़ी है। इस समय मैं वर-कन्या दोनों का पिता हूँ। मैंने इस महीने के अंतिम हफ़्ते में ही पूर्णिमा तिथि को विवाह का दिन स्थिर किया है—आप लोग हृदय से आशीर्वाद दें कि वह शुभ कर्म निर्विघ्न सम्पन्न हो।'—यह कहकर उन्होंने एक जोड़ी सोने की कंगन जेब से निकालकर दयाल बाबू के हाथ में रख दी।

दयाल बाबू उन दोनों को ले विजया की ओर आगे बढ़ हाथ बढ़ा कर बोले -'शुभ कर्म को सूचित करता हुआ काम, मन और वाणी से तुम्हारे शुभ की कामना करता हूँ बेटी, हाथ दोनों एकबार देखूँ?'

किन्तु उस आनत-मुखी मूर्ति की तरह आसीना रमणी के निकट से रंचमात्र संकेत न मिला। दयाल ने पुनः प्रार्थना की; फिर भी वह उसी प्रकार अचल भाव से बैठी रही। नलिनी बगल में ही थी, उसने अपने मामा की संकटापन्न स्थिति अनुभवकर हँसकर विजया के हाथ खींचकर आगे कर दिया, और दयाल ने अनजाने एक जोड़ी अत्याचार की हथकड़ी को आशीर्वाद की सोने की कंगन समझकर उस

मूर्छित-प्राय निरुपाय नारी के अशक्त अवश हाथों में एक-एक कर पहना दिया।

पर किसी को कुछ पता न चला। वरन विजया के इस व्यवहार को मधुर लज्जा कल्पना करके—इसे संगत एवं स्वाभाविक समझ सभी प्रफुल्ल हो उठे, और पलमात्र में शुभ कामना के कल-गुञ्जन से समस्त कमरा गुंजित हो उठा।

खाने-पीने का काम सम्पन्न होने पर दिन अधिक चढ़ जाने के कारण सभी एक-एक कर बिदा होने लगे। इस समय विजया ने किस प्रकार अपने को सम्हालकर समागत अतिथियों के सम्मान एवं मर्यादा की रक्षा की सो अन्तर्यामी के सिवा एक और जिस व्यक्ति से छिपा न रहा वह थे रासविहारी। किन्तु उन्होंने इसका आभास तक न होने दिया। जलपान समाप्त करके एक लवंग मुँह में डालते हुए मुस्करा कर बोले—'बिटिया, मैं अब चलता हूँ। बूढ़ा आदमी हूँ, धूप हो जाने पर चल न सकूँगा।'—कहकर आशीर्वाद की एक और ढेर लगा छाता तानकर धीरे धीरे बाहर हो पड़े।

सभी चले गये हैं। सिर्फ विजया और नलिनी में उस समय भी बाहर के बरान्डे में एक तरफ खड़े खड़े बात-चीत हो रही थी। विजया ने कहा—आपके साथ परिचित होकर कितनी सुखी हूँ सो कह नहीं सकती। यहाँ जब से आयी, बिल्कुल अकेली पड़ गई हूँ—ऐसा कोई नहीं जिसके साथ दो बातें करते। आपकी जब इच्छा हो, जब फुर्सत हो आइये।'

नलिनी हंसी-खुशी राजी हो गई।

तब विजया बोली—'मैं खुद भी शायद उस वक्त आपकी मामीजी को देखने जाऊँगी।' किन्तु उसी समय धूप की ओर देख जरा घबड़ा कर बोल उठी—'दयाल बाबू जरूर दफ्तर गये हैं, उन्हें बुला भेजती हूं'—कहकर बेहरा की खोज में कदम बढ़ाने की कोशिश करते ही नलिनी

रोकती हुई बोली—'वे तो इस समय घर जायगें नहीं, बिल्कुल शाम को लौटेगें।'

विजया लज्जित होकर बोली—'यह बात पहले क्यों नहीं बताई आपने ? मैं दरबान को बुलाती हूँ, आपके—'

नलिनी ने कहा—'नहीं दरबान की जरूरत नहीं, नरेन्द्र बाबू का इन्तजार कर रही हूँ। वे अपने मामाजी से मिलने गये हैं, अभी आ जायेंगे।'

विजया ने अत्यन्त आश्चर्यान्वित होकर पूछा—'आपके साथ क्या उनका परिचय है ? कैसे, मैं तो यह जानती न थी।'

नलिनी बोली—'परिचय बिल्कुल न था। सिर्फ परसों मामाजी की चिट्ठी पाकर स्टेशन पर आकर देखती हूँ कि वे खड़े हैं उन्हीं के साथ यहाँ आई हूँ।'

विजया बोली—'ये बात है ? अब समझी ?'

नलिनी ने कहा—'हाँ, पर यही अद्भुत व्यक्ति हैं। दो दिन में ही ऐसे बन गये हैं मानो कितने दिन के परिचित हों। इस वक्त हमारे यहाँ ही स्नान-भोजन करके शाम के वक्त उनका कलकत्ते जाना निश्चित हुआ है। मेरी मामीजी तो उन्हें बिल्कुल अपने बच्चे की तरह प्यार करती हैं !'

विजया गर्दन हिलाकर सिर्फ बोली—'हाँ, अद्भुत व्यक्ति हैं।'

नलिनी कहने लगी—'उनके साथ भी कभी किसी को मनमुटाव हो सकती है, यह आँखों से बगैर देखे शायद विश्वास ही न कर पाती। मैं बहुत खुश हूँ कि आज विलास बाबू के साथ उनका मेल हो गया है। मगर उनके पिताजी भी क्या ही अद्भुत व्यक्ति हैं! मेरे तो मन में होता है, हमारे समाज के सभी व्यक्तियों को उन्हीं की तरह बनने की कोशिश करनी चाहिये। रासबिहारी बाबू का आदर्श जिस दिन ब्राह्म-समाज के घर-घर में प्रतिष्ठित होगा, उसी दिन समझूंगी कि ब्राह्म-

धर्म सफल हुआ, सार्थक हुआ! क्या राय है आपकी? क्या मैं ठीक नहीं कह रही?'

थोड़ी दूर सामने ही दिखाई पड़ा—नरेन्द्र टोप हाथ में लिये बड़े वेग से इसी तरफ आ रहा है। विजया नलिनी के प्रश्न की उपेक्षा कर के सिर्फ उसी ओर उसकी दृष्टि आकृष्ट करके बोली—'यही तो वे आ रहे हैं।'

नरेन्द्र निकट आकर विजया को लक्ष्य करके बोला—'यही तो, इसी बीच दोनों में गहरा प्रेम भी हो गया। वास्तव में आज वर्ष का प्रथम दिन मेरे लिये अत्यन्त मंगलमय सिद्ध हुआ! सबेरे का वक्त आश्चर्यजनक ढंग से बीता। देखकर आशा होती है यह वर्ष मेरे लिये अच्छा ही होगा। पर आप इस प्रकार उदास क्यों दीख रही हैं, कहिये तो?'

विजया असन्तुष्ट स्वर में बोली—'एक ही दिन में यह प्रश्न कई बार करने की ज़रूरत क्या है, बताइये तो?'

नरेन्द्र हंसकर बोला—'क्या और एक बार मैंने पूछा है? रहने दीजिये। अच्छा, आप इतना जल्द नाराज क्यों हो जाती हैं? यह आपका बहुत बड़ा दोष है।'—कहकर हंसने लगा।

विजया ने स्वयं भी किसी तरह हंसी दबा नकली गंभीरता से जवाब दिया—'इस संबन्ध में सब क्या आपकी ही तरह निर्दोष हो सकता है? फिर भी देखिये, कालिपद सरीखे ऐसे भी बहुत से निन्दक हैं जो आप जैसे साधू महात्मा को भी अत्यन्त क्रोधी कहकर कलंकित करते हैं।'

कालिपद के नाम से नरेन्द्र बड़े जोर से हंस पड़ा। हंसी रुकने पर बोला—'आप भयानक गर्वीली हैं। किसो भी तरह किसी का अपराध क्षमा नहीं कर सकती।' ऐसे भी बहुत से—'ये बहुत से हैं कौन जरा सुनूं तो? कालिपद और आप स्वयम्, ये ही तो?'

विजया गर्दन हिलाती बोली—'और स्टेशन पर जिन्होंने देखा वे भी।'

नरेन्द्र ने कहा—'और!'

विजया ने कहा—'और जिन-जिन ने सुना है वे भी!'

नरेन्द्र ने कहा—'तब तो मेरे सम्बन्ध में दुनिया भर के लोगों का मत यही है!'

विजया ने पहले की गंभीरता कायम रखकर ही जवाब दिया—'हाँ। हम सबों का मत यही है।'

नरेन्द्र ने कहा—'तो फिर धन्यवाद। अब आपके अपने सम्बन्ध में उन सबों का क्या मत है जरा सो तो बताइये।'—कहकर हँसने लगा।

इस संकेत से विजया का मुँह पल भर के लिये लाल हो उठा। किन्तु दूसरे ही क्षण हँसकर बोली—'अपनी तारीफ आप नहीं करते, पाप लगता है। सो बल्कि आप ही बतलाइये। पर अभी नहीं, नहाने-खाने के बाद।'—कहकर जरा रुकी, फिर बोली—'मगर दिन तो बहुत चढ़ गया है—इस काम से यहीं पर निबट लेना क्या अच्छा नहीं!'—कहकर उसने नलिनी के मुख की तरफ देखा।

नलिनी ने कहा—'लेकिन मामीजी जो इन्तजार करती रहेंगी।'

विजया ने कहा—'मैं अभी आदमी भेजकर खबर दिये देती हूँ।'

नलिनी कुंठित हो उठी। बोली—'मुझे जाना ही पड़ेगा। मामीजी बीमार हैं, घर में सारी दुपहरी को उनके नजदीक किसी के न रहने से ठीक न होगा।'

बात सच्ची है, इसीलिये वह अब और जिद् न कर सकी। किन्तु उसके मुंह की ओर देख कुछ सोचकर नलिनी उसी क्षण बोल उठी—'लेकिन न हो तो आप यहीं स्नान-भोजन करें नरेन्द्र बाबू, मैं जाकर मामीजी को खबर दे दूँगी। सिर्फ जाते वक्त एक बार उनसे मिलकर जायें।'

और मुझे क्या आपने ऐसा अकृतज्ञ नराधम समझ लिया है, कि इस धूप में मैं आप को अकेली छोड़ दूँगा ?'—कहकर नरेन्द्र मुस्कुराता हुआ विजया के मुँह की ओर आँख उठाकर बोला—'आपके निकट एक दिन तो अच्छी तरह खाना-पीना बाकी है ही—उस दिन न हो तो सबेरे-सबेरे आकर भोजन का बदला चुकाने की कोशिश करूँगा। अच्छा, नमस्कार।' नलिनी से बोला—'अब देर न करें, चलें।'—कहकर हाथ का टोप सिर पर रख लिया।

नलिनी नीचे उतरकर नजदीक आई, पर एक और व्यक्ति जो कठपुतली की तरह खड़ी रही, उसकी आँखों में शान पर चढ़े चाकू की चिनगारी निकलने लगी सो दोनों में से किसी ने लक्ष्य नहीं किया; लक्ष्य करने पर शायद नरेन्द्र दो-एक कदम आगे बढ़कर ही पुनः मुड़कर खड़े हो हँसकर बोलने का साहस नहीं करता—'अच्छा, एक काम क्यों न करता जाऊँ ? जो चीज शुरू से ही इतने दुखों की जड़ है, जिसको लेकर देश भर में मेरी निन्दा है, मुझको ही क्यों नहीं आज आनन्द के दिन बकशीस के रूप में दे देतीं ? वे दो सौ रुपये कल-परसों जिस दिन हो सकेगा भेज दूँगा।'—कहकर फिर एक बार हँसने की कोशिश तो की, किन्तु उत्साह न पाकर ऐसा न कर सका बरन उस पक्ष से प्रत्युत्तर में बिल्कुल अप्रत्याशित कड़ा जवाब मिला। विजया ने कहा—'दाम लेकर देने को मैं उपहार नहीं कहती, बेचना कहती हूँ। उस प्रकार के उपहार से आप सन्तुष्ट भले ही हो जायँ पर मेरी शिक्षा तो एक और ही प्रकार की हुई थी। इसीलिये आज आनन्द के दिन में उसे बेचने की इच्छा नहीं होती।'

इस आघात की कठोरता से नरेन्द्र स्तंभित हो गया। यों ही तो विजया के दिल का उसे कोई कूल-किनारा नहीं मिलता, तिस पर आज उसके हृदय में जो अग्नि जल रही थी, उसकी ज्वाला जब अचानक अकारण ही बाहर निकल पड़ी, उस वक्त नरेन्द्र उसे पहचान न सका। वह क्षणभर उसके कठोर चेहरे की ओर चुपचाप ताकता रहा,

फिर अत्यन्त व्यथित स्वर में बोला—'मैं अपनी नितान्त दीनावस्था को भूलता भी नहीं, छिपाने की कोशिश भी नहीं करता, जो आप उसकी याद दिला रही हैं।'

नलिनी की ओर इशारा करके बोला—'इनसे भी मैंने अपना सारा इतिहास कह सुनाया है। पिताजी तरह-तरह के कष्ट झेलकर मर गये। उनकी मृत्यु के बाद घर-द्वार जो कुछ भी था सारा सर्वस्व देन-पावन में बिक गया, किसी से मैं कुछ छिपाता नहीं। उपहार का नाम तो मैंने लिया नहीं। अच्छा, कहिये तो, यह सब क्या आप से मैंने बताया नहीं?'

नलिनी ने लज्जित होकर सहमति प्रगट की—'हाँ।'

विजया का मुख व्यथा, लज्जा और क्षोभ से विवर्ण हो उठा—वह सिर्फ विह्वल स्तब्ध की तरह दोनों की तरफ चुपचाप ताकती रही।

उसकी उस निःसीम वेदना को मथता हुआ नरेन्द्र उदास होकर पुनः बोला—'मेरी बात पर अक्सर आप बहुत नाराज हो उठती हैं। शायद आप सोचती होंगी कि मैं अपनी अवस्था का उल्लघन करके अपने आप को आप के समान और समकक्ष के रूप में प्रगट करना चाहता हूँ—हो भी सकता है, प्रत्येक बात में आप का वजन ठीक रख नहीं पाता होऊँ; पर यह मेरे अन्यमनस्क स्वभाव का दोष है। लेकिन जाने दीजिये, बेअदबी अगर मैंने की हो आप मुझे माफ करें।'—कहकर मुँह फिराकर चलना शुरू कर दिया।

२२

सारे रास्ते के बीच दोनों जने में सिर्फ यही बात हुई। नलिनी ने पूछा—'क्या उपहार देने की बात आपने कही थी?'

नरेन्द्र ने थके स्वर में कहा—'और किसी दिन यह बात आप से बताऊँगा—पर आज नहीं।'

उस बाँस के पुल के निकट पहुँचकर नरेन्द्र सहसा खड़ा हो गया, बोला—'आज मुझे माफ कीजिये, मैं लौटता हूँ।' किन्तु नलिनी को अति विस्मित देख पुनः बोला—'इस प्रकार अचानक लौट जाना मेरे लिये कहाँ तक अनुचित हो रहा है सो मैं जानता हूँ। लेकिन फिर भी क्षमा करना होगा—आज मैं किसी भी तरफ जा नहीं सकता। अपनी मामीजी से कह दीजियेगा मैं और किसी दिन आकर—'

उसके संकल्प में इस आकस्मिक परिवर्तन से नलिनी को जितना आश्चर्य हुआ था, अब उसके कण्ठस्वर और मुख की ओर देख उसे और अधिक आश्चर्य हुआ। शायद, इसीलिये इस सम्बन्ध में और अधिक अनुरोध न करके उसने सिर्फ इतना बोली—'आप का भोजन तो हुआ नहीं। पर कब आयेंगे?'

'—परसों आने की कोशिश करूँगा'—कहकर नरेन्द्र जिस रास्ते आया था उसी रास्ते बड़े वेग से रेलवे स्टेशन की ओर चल पड़ा।

खेतों को पार करना जब कुछ ही बाकी रह गया था, इसी समय उसने देखा कि कोई एक छोकड़ा हाथ ऊँचा किये उसी की तरफ जी-जान से दौड़ता हुआ आ रहा है। वह उसीको इशारा कर रहा है यह अनुमान करके नरेन्द्र ठिठककर खड़ा हो गया। कुछ देर बाद ही परेश आ पहुँचा, हाँफते-हाँफते बोला—'माँजी ने तुमको बुलाया है। चलो।'

'—मुझको?'

'—हूँ—चलो न।'

नरेन्द्र निश्चल होकर कुछ देर खड़ा रहा, संदिग्ध स्वर में बोला—'अरे तुझे समझने में भूल हुई है—मुझको नहीं।'

परेश बड़े वेग से गर्दन हिलाता हुआ बोला—'हूँ—तुम्हीं को। तुम्हारे सिर पर साहेब का टोप जो है। चलो।'

नरेन्द्र ने पुनः कुछ देर चुप रहकर पूछा—'मेरी माँजी ने क्या कहा तुझसे?'

परेश ने कहा—'माँजी उसी बड़ी छत पर से दौड़ी हुई नीचे आईं, और बोलीं—परेश, दौड़ता चला जा—यही सीधे जाकर बाबू को पकड़ ला। सिर पर साहेब का टोप है—जा, दौड़ता जा—तुझे एक अच्छा परेता खरीद दूँगी। चलो न।'

इतनी देर बाद उसकी बेचैनी का कारण समझ मे आया। वह परेता के लोभ से ही इस धूप में इंजिन की तरह दौड़ा आ रहा है। इसलिये किसी भी तरह छोड़ सकता नहीं। उसे एक बार मन में आया कि लड़के को स्वयं एक परेते की कीमत देकर यहीं से लौटा दें। लेकिन आज ही इस प्रकार बुला भेजने का कारण क्या है, यह कौतूहल भी किसी प्रकार रोक न सका। पर जाना ठीक है या नहीं यह निर्णय करने में उसे कुछ और देर लगी, और अंत में कुछ निर्णय हुआ भी नहीं; फिर भी अनिश्चित कदम उसके उसी ओर धीरे-धीरे बढ़ने लगे। रास्ते भर बुला भेजने का कारण ही ढूँढ़ निकालने में बेचैन रहा, पर बुला भेजना ही जो सबसे बड़ा कारण है इस पर उसकी दृष्टि न पड़ी। बाहर के कमरे में कदम रखते ही देखा—विजया खड़ी है। दो गीले उत्सुक नेत्र उसके मुख पर निबद्ध करके तीखे स्वर में बोली—'बगैर खाये-पीये इतने वक्त चले क्यों जा रहे हैं! मैं तो झूठमूठ का नाराज होती हूँ, मैं ही बहुत बुरी हूँ—और आप!'

नरेन्द्र अत्यन्त विस्मित होकर बोला—'इसके मानी! किसने कहा आप बुरी हैं, किसने बताई ये सब बातें आपसे!'

विजया के होंठ काँपने लगे। बोली—'आपने कहा है। क्यों नलिनी के सामने मुझे इस तरह अपमानित किया? मुझे अपमानित भी किया, तिस पर मुझे सजा देकर बगैर खाये चले जा रहे हैं? क्या बिगाड़ा है मैंने आपका!'—कहते-कहते ही उसके दोनों नेत्र अश्रुपूर्ण हो उठे। शायद इसीको सम्हालने के लिये वह उसी क्षण उस तरफ की खिड़की के सामने जाकर बाहर की ओर देखती हुई नरेन्द्र की ओर पीठ करके खड़ी हो गई। नरेन्द्र हतबुद्धि की तरह अवाक होकर देखता रहा। इस

अभियोग का कोई जवाब भी है यह भी मानो वह ढूँढ़ न पाया, या इसका कारण क्या है यह भी न समझ सका।

बेहरा के जताने पर कि नहाने का पानी रख दिया गया है—विजया लौटकर आई और शान्त भाव से बोली—'अब देर न करें, जायँ नहा लें।

नहा-धोकर नरेन्द्र भोजन के लिये बैठा। विजया एक पंखा हाथ में लेकर उसके निकट आकर जब बैठी, तो अत्यन्त छिपे तौर पर उसका सर्वाङ्ग आन्दोलित होकर मानो लज्जा की आँधी बह गई। हवा करने को तैयार देख नरेन्द्र संकुचित होकर बोला—'मुझे हवा की जरूरत नहीं, पंखा आप रख दें।'

विजया मन्द मुस्काकर बोली—'आपको जरूरत न रहने पर भी मुझे तो जरूरत है। पिताजी कहा करते—औरतों को खाली हाथ कभी नहीं बैठना चाहिये।'

नरेन्द्र ने पूछा—'आपने तो अभी भोजन किया नहीं?'

विजया बोली—'नहीं। पुरुषों को खिलाये बगैर हमारा खाना उचित नहीं।'

नरेन्द्र खुश होकर बोला—'अच्छा, ब्राह्म-समाजी होने के बावजूद आपको आचार-विचार तो हमारे जैसे ही हैं।'

विजया ने यह बात नहीं बताई कि बहुतेरे ब्रह्म-समाजियों के घर में ऐसे नहीं, बल्कि ठीक उल्टे आचार-विचार हैं। सिर्फ उसके पिता ही इन सब हिन्दू आचार-विचारों को अपने घर में कायम रख गये थे। बल्कि बोली—'इतना आश्चर्य करने की तो कोई बात नहीं। हम न तो बिलायत से आई हैं, और न काबुल सा ही आचार-व्यवहार सीख आई हैं। वरन् इस तरह न होना ही आश्चर्य है।'

नौकर ने दरवाजे के पास आकर कहा—'माँजी, मुंशीजी हिसाब का बहीखाता लिये नीचे खड़े हैं। अभी क्या जाने को कह दूँ?'

विजया ने गर्दन हिलाकर कहा—'हाँ, आज हिसाब देखने का वक्त मुझे नहीं मिलेगा, उन्हें कल आने को कह दो।'

नौकर के चले जाने पर नरेन्द्र विजया के मुँह की तरफ आँख उठाकर बोला—'यही मुझे सबसे अधिक आनन्द देता है।'

'—कौन सा ?'

'—नौकरों का यह सम्बोधन।'—कहकर हँसता हुआ बोला—'आप ब्राह्म-महिला भी हैं, आधुनिक विचार की भी हैं और बहुत बड़े आदमी भी हैं। इस प्रकार के आधुनिक विचार के अनेक घरों में आज कल चिकित्सा करने मुझे जाना पड़ता है। उनके नौकर-चाकर औरतों को कहते हैं—मेम साहेब। असली मेम साहिबाएँ इन्हें जिन आँखों से देखती हैं, उसे जानकर ही शायद वेतन भोगी नौकरों के द्वारा मेम साहेब कहलवाकर अपनी मर्यादा बनाये रखती हैं।'—कहकर एक जबर्दस्त मजाक के तौर पर बड़े जोर के हँसी के कहकहे से सारा घर भर दिया। विजया स्वयं भी हँस पड़ी। नरेन्द्र की हँसी रुकने पर उसने फिर कहा—घर के नौकर-चाकरों के मुँह से 'माँजी' सम्बोधन से मेम साहेब का सम्बोधन ही मानो अधिक इज्जत का है। पहले दिन तो समझ में ही नहीं आया कि बेहरा मेम साहेब कहता है किसे ? आप जानती हैं नौकर ने क्या कहा ? उसका कहना था—मैंने बहुतेरे साहेबों के घर नौकरी की है, असली मेम साहेब क्या होता है सो भी खूब समझता हूँ। पर करूँ क्या डाक्टर बाबू ? नया हिन्दुस्तानी दरबान मालकिन को 'माईजी' बोल पड़ा था, इसलिये मेम साहेब ने उसे एक रुपया जुरमाना कर दिया। नौकरी बच गई यही उसका भाग्य ! इस तरह का गुस्सा अच्छा, आपने तो ऐसे बहुतों को देखा होगा ? क्यों ?'

विजया ने हंसकर गर्दन हिला दी।

नरेन्द्र ने कहा—'मुझे यही एक दिन देखना बाकी रह गया है कि इन मेम साहेबों के बाल-बच्चे माँ को माँ कहकर या मेम साहेब कहकर

पुकारते हैं !'—कहकर अपनी रसिकता के आनन्द में और एक बार घर उड़ा देने की कोशिश की !

विजया मुस्कुराती हुई बोली—'खाने-पीने के बाद दिन भर दूसरों की बात करके खुश होते रहें मुझे कोई आपत्ति नहीं ; पर मुझे क्या आज आप खाने नहीं देंगे ?'

नरेन्द्र शर्मिन्दा होकर झटपट दो-चार कौर निगलने के बाद ही सब भूल गया। बोला—'मैं भी तो चार-पाँच साल बिलायत में था, लेकिन ये देशी साहेब—'

विजया तर्जनी उठाकर बनावटी शासन करने के ढंग से बोली—'फिर दूसरों की निन्दा !'

'—अच्छा, अब नहीं'—कहकर पुनः खाने में मन देते ही बोला—'पर अब खाया जा नहीं रहा है—'

विजया घबड़ाकर बोली—'वाह, कुछ भी खाया नहीं। नहीं, अभी उठ नहीं सकते। अच्छा, न हो तो दूसरों की निन्दा करते-करते ही अन्यमनस्क होकर खायं मैं कुछ न बोलूंगी।'

नरेन्द्र हँसना हो चाहता था कि अचानक अत्यन्त गम्भीर हो उठा। बोला—'आप इतने पर भी कहती हैं खाया नहीं, पर मेरे कलकत्ते का रोज का खाना अगर देख लें तो अवाक् हो जायँ। देख नहीं रही हैं, इन कई महीनों में ही कितना कमजोर हो गया हूँ। मेरे बासे का ससुरा महराज जैसा पाजी है, ऐसा ही बदमाश जुट पड़ा है नोकर। सुबह सात बजे रसोई बनाकर रख छोड़ता है और कहाँ चला जाता है सो पता नहीं। मुझे किसी दिन लौटते दो बज जाते हैं, किसी दिन चार। वही ठंडा सूखा भात—दूध किसी दिन बिल्ली पी जाती है, तो किसी दिन खिड़की से घुसकर कौआ सबको जहाँ-तहाँ बिखेर जाता है—उसे देखते ही घृणा होती है। महीने का आधा तो बिल्कुल बगैर खाये ही बीतता है।'

गुस्से से विजया का मुँह लाल हो उठा; बोली—'ऐसे नौकर-चाकरों को निकाल बाहर क्यों नहीं करते। अपने घर में इतने रुपये माहवार पाकर भी अगर इतनी तकलीफ हो, तो फिर नौकरी करने से फायदा ही क्या है ?'

नरेन्द्र ने कहा—'एक तरह से आपकी बात सही है। एक दिन बक्से में से किसी ने दो सौ रुपये निकाल लिए; एक दिन खुद ही सौ रुपये का नोट कहीं भूल आया। अन्यमनस्क आदमियों की तो पग-पग पर मुसीबत है न!' जरा ठहरकर बोला—'फिर भी मुसीबत में ही मेरे बहुत से दिन कटे हैं, इसीलिए यह भी वैसा खलता नहीं। सिर्फ जोर की भूख लगने पर सहा नहीं जाता।'

विजया मुँह नीचा करके चुपचाप बैठी रही। नरेन्द्र कहने लगा—'वास्तव में नौकरी मुझे अच्छी लगती भी नहीं, कर भी नहीं सकता; आवश्यकता मेरी बहुत ही मामूली है। आप जैसा कोई बड़ा आदमी दोनों वक्त कुछ खिला देता, और मैं अपने काम में लगा रहता तो और कुछ नहीं चाहता—पर ऐसा बड़ा आदमी क्या अब रह गया है ?'—कह कर एक बार और ऊँची हँसी की तरंग से कमरे को भर दिया। विजया पहले की तरह मुँह नीचा किये चुपचाप बैठी रही। नरेन्द्र ने कहा—'पर आपके पिताजी अगर जीवित होते तो शायद इस समय मेरा अनेक उपकार होता—वे जरूर मुझे इस गरीबी से रिहा कर देते।'

विजया ने उत्सुक दृष्टि से देखकर पूछा—'कैसे आपने समझा ? उन्हें तो आप पहचानते थे नहीं ?'

नरेन्द्र ने कहा—'नहीं, मैंने भी उन्हें कभी देखा नहीं, उन्होंने भी शायद मुझे कभी नहीं देखा। पर फिर भी मुझे खूब प्यार करते। किसने मुझे रुपये देकर बिलायत भेजा था जानती हैं ! उन्होंने ही। अच्छा, हमारे ऋण के बनिस्बत वे आपसे कभी कुछ कह नहीं गये !'

विजया बोली—'कहना तो सम्भव है। पर आपका ठीक इशारा क्या है, यह समझे बगैर तो जवाब दे नहीं सकती।'

नरेन्द्र क्षणभर मन-ही-मन सोचकर बोला—'रहने दीजिये। अब यह बात छेड़ना ही बिल्कुल वाहियात है।'

विजया व्यग्र होकर बोली—'नहीं, बतायें! मैं सुनना चाहती हूँ।'

नरेन्द्र पुनः सोचकर बोला—'जो हो हवाकर खत्म हो गया, उसे सुनकर अब होगा क्या, कहिये!'

विजया जिक्र करती हुई बोली—'नहीं, सो होगा नहीं। मैं सुनना चाहती हूँ, आप कहिये।

उसका अतिशय आग्रह देख नरेन्द्र हँसा; बोला—कहना बेकार है, सिर्फ यही नहीं—कहते मुझे खुद भी शर्म महसूस हो रही है शायद आप समझेंगी कि मैं चालाकी से आपके सेंटिमेंटों (मनोभाव) को उकसाकर—'

विजया अधीर हो उठी, बीच में ही बोल पड़ी—'मैं अब आपकी और खुशामद कर नहीं सकती—पैरों पड़ती हूँ, कहिये।'

'—खाने-पीने के बाद।'

'—नहीं इसी वक्त—'

'—अच्छा कह रहा हूँ, कह रहा हूँ। पर एक बात पहले पूछना चाहता हूँ—मेरे मकान के बारे में क्या उन्होंने कभी कोई बात आपसे नहीं कही!'

विजया अधिकतर असहिष्णु हो उठी, किन्तु कोई उत्तर नहीं दी। नरेन्द्र दबी हँसी हँस कर बोला—'अच्छा, नाराज मत होइयेगा मैं कहता हूँ। विलायत-यात्रा के समय ही पिताजी से मालूम हुआ कि आपके पिताजी ही मुझे भेज रहे हैं। आज तीन दिन हुए दयाल बाबू ने मुझे पत्रों का एक पुलिन्दा दिया। जिस कमरे में बहुत-सी टूटी-फूटी चीजें पड़ी हैं उन्हीं में एक टूटे दराज़ के बीच वे चिट्ठियाँ पड़ी थीं—पिताजी की चीज़ समझकर दयाल बाबू ने मेरे हाथ में ही उसे

दिया। पढ़कर देखा—दो चिठ्ठियाँ आपके पिताजी की लिखी थीं। शायद पता होगा आपको अन्त समय में पिताजी ने कर्ज़ के शोक में जुआ खेलना शुरू कर दिया था। शायद उसीका इशारा एक चिट्ठी के शुरू में किया गया है। उसके बाद नीचे की ओर एक जगह उपदेश के मिस से उन्होंने सान्त्वना देते हुए पिताजी को लिखा है—मकान के लिये चिन्ता न करो—नरेन मेरा भी तो लड़का है, मकान उसी को दहेज में दे दिया।'

विजया मुख उठाकर बोली—'उसके बाद ?'

नरेन्द्र ने कहा—'इसके बाद और कई दूसरी बातें हैं। फिर भी यह पत्र बहुत दिन पहले का लिखा है। पूरी सम्भावना है, उनका यह अभिप्राय बाद में बदल गया होगा, इसी कारण आपसे कोई बात बता जाने की ज़रूरत उन्होंने महसूस नहीं की।'

पिता की अन्तिम अभिलाषा विजया के स्मृति-पट पर अक्षरशः अंकित हो उठी, उसने एक लम्बी साँस ली। कुछेक क्षण स्थिर रह कर बोली—'तो फिर मकान पर दावा करेंगे, कहिये !'—कहकर हँस दी।

नरेन्द्र स्वयं भी हँसा। इस प्रस्ताव को अद्भुत परिहास समझ कर बोला—'दावा ज़रूर करूँगा, और आपको भी गवाह रखूँगा। आशा है, आप सच्ची बात ही कहेंगे।'

विजया गर्दन हिलाती हुई बोली—'ज़रूर। पर मुझे गवाह क्यों रखेंगे ?'

नरेन्द्र ने कहा—'नहीं तो साबित होगा कैसे ? मकान सचमुच मेरा है यह बात तो अदालत में साबित करनी चाहिये।'

विजया गम्भीर होकर बोली—'दूसरी अदालतों की ज़रूरत नहीं—पिताजी का आदेश ही मेरे लिये अदालत है। वह मकान मैं आपको लौटा दूँगी।'

उसका चेहरा एवं कंठस्वर बिलकुल रहस्य की तरह तो नहीं प्रतीत हुआ, पर उसके सिवा और हो ही क्या सकता है सो भी नहीं कहा जा सकता। खासकर विजया के परिहास का ढंग इतना निगूढ़ होता है कि सिर्फ मुख देखकर ही कुछ कहना अत्यन्त कठिन है। इसीलिये नरेन्द्र स्वयं भी नकली गम्भीरता के साथ बोला—'तो फिर उनकी चिट्ठी आँखों से देखे बगैर ही शायद मकान दे देंगी?'

विजया बोली—'नहीं, चिट्ठी मैं देखना चाहती हूँ। लेकिन यही बात अगर उसमें है तो उनका हुक्म मैं किसी भी तरह टाल नहीं सकती।'

नरेन्द्र ने कहा—'उनका यह अभिप्राय अन्त तक कायम था इसका ही क्या सबूत है?'

विजया ने उत्तर दिया—'नहीं था—इसका भी तो कोई सबूत नहीं।'

नरेन्द्र ने कहा—'पर यदि मैं नहीं लूं! दावा न करूँ?'

विजया ने कहा—'सो आपकी इच्छा। पर इस क्षेत्र में आपकी बुआजी के लड़के भी तो हैं। मुझे विश्वास है, अनुरोध करने पर दावा करने से वे इन्कार न करेंगे।'

नरेन्द्र ने हँसकर कहा—'मेरा भी यह विश्वास है यहाँ तक कि हलफ लेकर बोलने को राजी हूँ।'

विजया ने इस हँसी में योग दिया नहीं, चुप रह गयी।

नरेन्द्र ने फिर कहा—'अर्थात् मैं लूँ या न लूँ, आप देंगी ही।'

विजया बोली अर्थात् पिताजी की दान की हुई वस्तु मैं हड़प नहीं सकती यही मेरी प्रतिज्ञा है।'

उसके संकल्प की दृढ़ता देख नरेन्द्र मन-ही-मन विस्मित हुआ, मुग्ध हो गया। किन्तु कुछ देर चुपचाप रहने के बाद स्नेहसने स्वर में बोला—'उस मकान को जब एक अच्छे काम में दान कर दिया है, तो मेरे न लेने पर भी हड़प कर जाने का पाप आपको लगेगा नहीं। इसके

अलावा, वापस लेकर करूंगा ही क्या ? मेरा कोई नहीं जो उसमें वास करेगा। मुझे कहीं-न-कहीं बाहर काम करना ही पड़ेगा। इससे तो जो व्यवस्था अभी हुई है वही सबसे अच्छी है। एक और बात यह है कि विलास बाबू को किसी भी तरह राजी कर सकती नहीं।'

इस अन्तिम बात पर विजया मन-ही-मन जल-भुन गयी, बोली—'अपनी चीज में दूसरे को राजी करने की कोशिश करने लायक फालतू वक्त मेरे पास नहीं। लेकिन आप तो एक और काम कर सकते हैं। मकान की जब आप को जरूरत नहीं, तो उसकी कीमत मुझसे ले लें। इस तरह नौकरी भी आप को करनी नहीं पड़ेगी, अपना काम भी मजे में कर सकेंगे। आप राजी होवें नरेन बाबू।'—यह नितान्त विनयपूर्ण अनुनय का स्वर अचानक तीर की तरह नरेन्द्र की छाती में चुभकर उसे चचल बना दिया; और यद्यपि विजया के अवनत मुख पर अंकित विनय का यह प्रच्छन्न इंगित पढ़ लेने का सुअवसर उसे मिला नहीं, तथापि यह जो परिहास नहीं सत्य है, यह भी समझते देर न लगी। पिता के ऋण-परिशोध में उसे गृहहीन बनाकर यह बालिका सुखी नहीं, बल्कि व्यथित हो रही है, किसी एक बहाने से उसके दुख का बोझ हल्का करना चाहती है—यह निश्चित रूप में समझकर उसका हृदय भर गया। किन्तु इसी कारण ऐसा प्रस्ताव स्वीकार कर लेना भी ठीक नहीं, गरीब होने के कारण उसकी भीख वह लेगा ही कैसे ? एक और भी बड़ी बात है। जो सांसारिक कार्य पहले उसे बिल्कुल ही जटिल प्रतीत होते, आज कतिपय कार्य इस व्यक्ति के समक्ष नितान्त सहज बन गये हैं। उसे स्पष्ट दिखाई दिया कि विजया विलास के सम्बन्ध में आवेग में कुछ भी क्यों न कह जाय, उसकी रुकावट ठुकराकर अन्त में यह संकल्प किसी भी तरह कार्यान्वित कर नहीं सकेगी। इससे सिर्फ उसकी लज्जा और व्यथा बढ़ेगी, कुछ होगा नहीं।

कुछ देर उसके अवनत मुख की ओर सस्नेह नेत्रों से ताकता रहा, पुनः परिहास-तरल स्वर में बोला—'आपके मन की बात

मैं जानता हूँ। गरीब को किसी बहाने कुछ दान करना चाहती हैं, यही न ?'

ठीक यही बात आज ही एक बार हो गई है। उसी की पुनरावृत्ति से विजया व्यथा से म्लान हो आँखें उठाकर बोली—'इस बात से मुझे कितनी पीड़ा होती है आपको पता है ?'

नरेन्द्र मन-ही-मन हँसा और पूछा—'तो फिर सच्ची बात क्या है जरा बताओ ता ?'

विजया ने कहा—'मैं बराबर सच्ची बात ही कहती आ रही हूँ; आपका मन पापी है इसी से आपको विश्वास नहीं हो रहा। आप गरीब हों या बड़े आदमी इससे मुझे क्या ? मैं तो सिर्फ पिता जी का आदेश पालन करने के निमित्त ही आपकी चीजें आपको वापस देना चाहती हूँ।'

नरेन्द्र सहसा नितान्त गम्भीर होकर बोला—'उसमें भी जरा झूठ रह गया है—खैर, रहने दीजिये। पर बहुत लम्बी-लम्बी प्रतिज्ञाएं तो उन्होंने की हैं; पिताजी के आदेशानुसार यदि वापस देना चाहती हैं तो और भी कितनी चीजें देनी पड़ेंगी यह पता है ? सिर्फ एक दुकान ही नहीं।'

विजया ने कहा—'अच्छी बात है। ले लें, अपनी सारी जायदाद वापस ले लें।

इस बार नरेन्द्र ने हंसकर गर्दन हिलायी। बोला—'खूब चिल्ला-चिल्लाकर तो मुझे दावा करने को कह रही हैं। अगर मैं न करूँ तो—मेरी बुआजी के लड़कों से दावा करने को कहेंगी यह भी भय दिखा रही हैं। परन्तु उन्हीं के आदेशानुसार मेरा दावा कहाँ तक पहुँच सकता है, क्या पता है आपको ? सिर्फ वह मकान और कुछेक बीघे जमीन ही नहीं, इससे भी बहुत, बहुत ज्यादा।'

विजया उत्सुक होकर बोली—'पिता जी ने आपको और क्या दिया है ?'

नरेन्द्र बोला—उनकी वह चिट्ठी भी मेरे पास है। उसमें सिर्फ इतना ही दहेज देकर मुझे विदा नहीं कर दिया। यहाँ जो कुछ भी आप देख रही हैं सब उस दहेज के अन्दर आ जाता है। मैं सिर्फ उस मकान के लिये ही दावा कर सकता हूँ यह बात नहीं। यह मकान, यह कमरा, वे सब के सब मेज-कुर्सी-आइना-दिवालगीर-खाट-पलंग घर के नौकर-नौकरानी-अमला-कर्मचारी, यहाँ तक कि इनके मालिक, तक पर दावा कर सकता हूँ यह पता है क्या! पिताजी-का आदेश, पिताजी का आदेश—देंगी ये सारी चीजें?

विजया सिर से पैर तक काँप उठी, किन्तु वह बगैर कोई जवाब दिये कठपुतली की तरह बैठी रही। नरेन्द्र बड़े गर्व से भात का कौर मुँह में डालकर चुटकी लेता हुआ बोला—क्यों, दे सकेगी, है हिम्मत! न हो तो एक बार विलास बाबू के साथ एकान्त में सलाह कर लीजियेगा!—कहकर हो-हो करके जोर से हँसने लगा।

किन्तु इस बार विजया के मुँह उठाते ही उसकी हँसी का कहकहा मानो चपत खाकर रुक गया। विजया के चेहरे पर खून का नामो निशान नहीं रहा। इस तरह के पीले चेहरे की ओर देखते ही नरेन्द्र विकल होकर घबड़ा उठा, बोला—'आप पागल तो नहीं हो गयीं? मैं क्या सचमुच इन चीजों पर दावा करने जा रहा हूँ, या करने पर ही पाऊँगा? ऐसा करने पर बल्कि मैं ही पकड़कर पागल-खाने में बन्द कर दिया जाऊँगा।'

विजया ने ये सारी बातें मानो सुनी ही नहीं। बोली—'देखूं कहाँ है पिता जी की चिट्ठी?'

नरेन्द्र आश्चर्यान्वित होकर बोला—वाह, मैं क्या उसे जेब में लिये फिरता हूँ? और उसे देखने से आप का लाभ ही क्या है?

'—वह कुछ भी हो। दरवान के हाथ वे दोनों चिट्ठियाँ आज ही दे दीजिये। वह आप के साथ कलकत्ते जायगा।'

'—इतनी जल्दी है आपको ?'
'—हाँ।'

२३

निद्रा-विहीन रात्रि की समस्त थकावट लिये विजया ने सबेरे नीचे के बैठकखाने में प्रवेश करते ही देखा—जमीनदारी सम्बन्धी खरूआ-जिल्द के अनेक बही-खाते मेज पर थाक लगा-लगाकर रखे हैं, और बूढ़ा मुंशी खड़ा इन्तज़ार कर रहा है। उसने अदब के साथ कहा—'सरकार, आज इनका लौटना जरूरी है।'

उससे दो घन्टे बाद आने का अनुरोध करके विजया सब से ऊपर की बही उठाकर खिड़की से सटे कोच पर जा बैठी। मन लगाने की शक्ति उसमें थी ही नहीं—उसकी उद्भ्रान्त दृष्टि बारम्बार हिसाब के अंक को छोड़ खिड़की से बाहर जहाँ-तहाँ दौड़ रही थी। अचानक नजर पड़ी, बगीचे के एक तरफ एक पेड़ के नीचे खड़े हो वृद्ध रास-बिहारी परेश से क्या कुछ पूछ रहे हैं। अँगुली उठा कभी नीचे के कमरे की ओर, कभी छत की ओर निर्देश कर रहे हैं। दोनों की एक बात भी बगैर सुने विजया ने लहमे भर में वृद्ध के क्रूर इंगित का मर्म हृदयंगम कर लिया।

थोड़ी देर बाद लड़के को उन्होंने छोड़ दिया और दफ्तर की ओर चले गये। परेश घर की तरफ आ रहा था, विजया ने खिड़की में से हाथ के इशारे से उसे अपनी ओर बुलाकर पूछा—'तुझसे क्या पूछ रहे थे रे!'

परेश ने कहा—'अच्छा माँजी, मुंशीजी से पैसा लेकर मैं पतंग परेता खरीदने चला गया था न! डाक्टर बाबू के जाते वखत मैं क्या घर में था माँजी ?'

विजया ने कहा—'नहीं।'

परेश ने कहा—'तो फिर ! बड़ा बाबू जी कहता है कि क्या बात हुई थी सो बता ससुरे, नहीं तो सिपाही से बंधवा कर छड़ी से पिटवाऊँगा। मैंने कहा—नया दरवान ने तुमको झूठ बताया है। माँजी ने कहा—परेश, दौड़ा जा, डाक्टर बाबू को बुला ला, तुझे अच्छा परेता खरीद दूँगी—इसी से न दौड़ा गया ? मगर बड़ा बाबूजी से बताना मत माँजी। तुमसे बताने को मना कर दिया है।'

'—नहीं बताऊँगी'—कह कर आश्वासन दे विजया ने परेश को बिदा किया और अपनी जगह वापस आ पुनः बही खोलकर बैठ गयी। किन्तु इस बार उसकी आँखों के सामने बही की लिखावट बिल्कुल लिप-पुत कर एकाकार हो गई। सिर्फ रात्रि जागरण से नहीं, बल्कि अत्यन्त क्रोध के मारे उन दो आरक्त नेत्रों से आग बरसने लगी। थोड़ी देर बाद ही रास विहारी दरवाजे के बाहर छड़ी की आवाज करके मृदु-मन्द-गति से प्रविष्ट हुए और विजया की दृष्टि आकृष्ट करने के लिए जरा-सा खाँसकर कुर्सी पर बैठ गये।

विजया ने बही से आँख उठा कर कहा—'आइये। आज इतने सवेरे ही !'

रासविहारी ने उसी क्षण इस प्रश्न का उत्तर न देकर बड़ी उत्कण्ठा के साथ पूछा—'तुम्हारी आँखें तो बड़ी बुरी तरह लाल दीख रहा हैं। बेटी ठंड- ड तो नहीं लग गई ?'

विजया गर्दन हिलाकर बोली—'नहीं।'

रासविहारी इसे बगैर सुने बेचैनी ज़ाहिर करने लगे। बोले—'बगैर बताये तो जानूँगा नहीं। बिटिया रात को अच्छी तरह नींद नहीं आई, या किसी तरह का—'

'—नहीं, मुझे कुछ नहीं हुआ।'

'—पर इस तरह आँखें लाल होने का कारण तो कोई एक—'

विजया ने अब प्रतिवाद नहीं किया। वह काम में मशगूल हो गई, यह देख रासविहारी ठहर गये। जरा देर चुप रह कर बोले—'धूप के

डर से ही सबेरे आ गया बिटिया । दस्तावेज के कागज-पत्र एक बार देखने हैं । सुना है कि चौधरी लोग घोष पांड़े की सीमा को लेकर एक मुकद्दमा दायर करने वाले हैं ।'

जमीन्दारी सम्बन्धी अत्यावश्यक दस्तावेज बनमाली बाबू अपने पास ही रखते थे । एक तो ऐसे कागजात हमेशा काम में नहीं आते, तिस पर दूसरी जगह खो जाने की भी सम्भावना होने के कारण वे कभी उन्हें अपने से अलग नहीं करते थे । कलकत्ते से घर आते वक्त विजया इन्हें साथ लाई थी, और अपने सोने के कमरे में लोहे की आलमारी में उसे बन्द कर रक्खा था । विजया मुँह उठा कर बोली—'किसने बताया कि वे मुकद्दमा करने वाले हैं ?'

रासविहारी अपनी विज्ञता का परिचय देते हुए जरा हंसकर बोले—'किसी ने नहीं बताया बेटी, मुझे हवा से खबर मिल जाती है । अगर ऐसा न होता तो इतनी बड़ी जमीनदारी इतने दिन कैसे चला पता ?'

विजया ने पूछा—'उनका दावा कितने का है ?'

रासविहारी मन-ही-मन हिसाब करके बोले—'सो तो होगा ही—बिल्कुल कम होने पर भी दो बीघे तो होंगे ही ।'

विजया अवहेलना के साथ बोली—'बस, इतना ही । तो फिर उन्हीं को लेने दीजिये । इस थोड़ी-सी जमीन को लेकर मुकद्दमे की कोई जरूरत नहीं ।

रासविहारी बहुत विस्मय का प्रदर्शन करके क्षुब्ध होकर बोले—'इस तरह की बात तुम जैसी लड़की के मुँह से सुनने की आशा नहीं रखता बेटी । आज बगैर कुछ कहे दो बीघे छोड़ दूँ तो कल दो सौ बीघों से हाथ नहीं धोना पड़ेगा यही कौन कह सकता है !'

पर आश्चर्य की बात तो यह है कि इतने बड़े तिरस्कार के बावजूद विजया विचलित नहीं हुई । उसने स्वाभाविक रूप से जवाब दिया—पर सचमुच ही हमें अभी दो सौ बीघों से हाथ धोना तो पड़ नहीं

रहा है। मैं कहती हूँ एक तुच्छ कारण लेकर मामले-मुकदमे की कोई जरूरत नहीं।'

रासविहारी को मार्मिक आघात पहुँचा। बार-बार सिर हिला-हिला कर बोलने लगे—'ऐसा किसी भी तरह नहीं हो सकता बेटी, किसी भी तरह नहीं। तुम्हारे पिता जब मुझ पर सारा भार डाल गये हैं और जब तक मेरी जिन्दगी है—बिना लड़े दो बीघे क्यों, दो अंगुल जमीन भी छोड़ने में घोर पाप लगेगा। इसके अलावा और भी अनेक कारण हैं जिनके लिये पुराने दस्तावेज़ों का एक बार अच्छी तरह देखना बहुत ज़रूरी है। ज़रा तकलीफ करो, उठो बिटिया, बक्से को ऊपर से ले आओ।'

विजया के उठने का कोई लक्षण नहीं दीख पड़ा। बल्कि उसने पूछा—'और भी कारण हैं?'

रासविहारी बोले—'हाँ।'

विजया ने कहा—'क्या कारण है?'

रासविहारी ने मन-ही-मन नितान्त नाराज होने पर भी सम्हल कर जवाब दिया—'कारण तो एक नहीं। उसका जबानी जमा-खर्च तुम्हें कहाँ तक दूँ बेटी?'

इसी समय मुंशी जी अपने बही-खाते के लिये आहिस्ते से कमरे में घुसे। विजया जरा लजाई हुई सी झटपट बोली—'इस समय तो हो नहीं सका, उस समय आकर ले जाइये।'

'—जो हुक्म'—कहकर मुंशी जा रहा था। विजया ने उसे बुलाकर कहा—'लेकिन एक काम है। दफ़्तर के उस नये दरवान को बहाल हुए कितने दिन हुए पता है?'

मुंशी ने कहा—'शायद तीनेक महीने हुए होंगे।'

विजया ने कहा—'कितने भी दिन हुए हों, उसकी अब जरूरत नहीं। अभी इस महीने के बीसेक दिन बाकी हैं, इन दिनों की भी पूरी तनख्वाह देकर आज ही उसे बर्खास्त कर दो।'

मुंशी विस्मित होकर देखता रहा। उसकी इच्छा हुई कि अपराध पूछे, पर हिम्मत न पड़ी।

विजया उसे समझकर बोली—'नहीं, अपराध के लिये नहीं। फिर भी मुझे आदमी अच्छा नहीं मालूम पड़ रहा है, इसी से हटा रही हूँ। लेकिन तनखाह पूरे महीने की दे देना।'

रासविहारी का मुँह क्षण भर के लिये लाल हो उठा था, पर दूसरे क्षण ही अपने को सम्हालकर हँसते हुए बोले—'तो फिर बिना अपराध के किसी की रोटी छीनना क्या अच्छा है बिटिया?'

विजया ने इसका कोई जवाब नहीं दिया, उसे चुप देख मुंशी को कुछ आशा बँधी, वह कहने ही जा रहा था—'तब तो उसे—'

'—हाँ, उसे बिदा कर दो, आज ही।'—कहकर विजया ने बही में मन लगाया। मुंशी को फिर भी कुछ आशा थी, थोड़ी देर इन्तजार करता रहा फिर चला गया। रासविहारी पाँचेक मिनट अवाक् रहकर अपनी प्रार्थना को दुहराते हुए बोले—'जरा तकलीफ करके उठे बगैर तो बनेगा नहीं बिटिया। उन पुराने दस्तावेजों को एक बार शुरू से आखिर तक अच्छी तरह पढ़ना निहायत जरूरी है।'

विजया मुँह उठाये बगैर ही बोली—'क्यों?'

रासविहारी गम्भीर होकर बोले—'कह तो दिया खास कारण है। फिर भी एक ही बात बार-बार दुहराने का फालतू वक्त तो मेरे पास है नहीं विजया।'

विजया अपनी बही पर आँख गड़ाये ही आहिस्ते से बोली—'वह तो ठीक बता रहे हैं; पर कारण तो एक भी नहीं दिखा रहे!'

'—बगैर दिखाये क्या तुम उठोगी नहीं?'—कहकर कुछ क्षण इन्तजार करने के बाद वे धीरज खो कर बोले—'इसके मानी हैं कि तुम मुझ पर विश्वास नहीं करतीं?'

विजया बगैर जवाब दिये ही सिर झुकाये काम करने लगी। उसकी इस नीरवता का अर्थ इतना सुस्पष्ट और इतना तीक्ष्ण

था कि क्रोध के मारे रासविहारी का मुँह काला हो उठा। वे हाथ की छड़ी मेज पर पटकते हुए बोले—'किस बूते पर मेरा इतना बड़ा अपमान करने का तुम्हें साहस हो रहा है विजया? तुम मुझपर विश्वास क्यों नहीं करतीं, जरा बताओ तो?'

विजया शान्त स्वर में बोली—'आप भी तो मुझपर विश्वास नहीं करते! मेरे पैसे से मुझपर ही जासूस लगाने पर मन का भाव कैसा हो सकता है यह तो आप जरूर समझते होंगे; और इसके बाद मेरी जायदाद के असल दस्तावेजों को हथियाने के तात्पर्य को अगर मैं कुछ और ही सन्देह करूँ, तो क्या अस्वाभाविक होगा! क्या वह आपका अपमान करना है?'

रासविहारी एक बारगी ही अवाक् हो गये और स्तंभित रह गये। उनकी इतनी बड़ी पक्की चाल कलकत्ते की विलासिता के मध्य लाड़-प्यार से पली एक अबोध बालिका से पकड़ी जा सकती है इस सम्भावना को उनके परिपक्क मस्तिष्क में जगह नहीं मिली; और उस चाल के खिलाफ मुँह पर ही बेधड़क सवाल-जवाब करेगी यह स्वप्न में भी असम्भव है।

रासविहारी बहुत देर किंकर्त्तव्यविमूढ़ की तरह बैठे रहे फिर एक बार युद्ध के लिये कमर कसकर तैयार हो गये; ऐसे स्वभाव के लोगों का जो अन्तिम शास्त्र है उसी को तरकस से निकालकर इस असहाय बालिका पर बड़ी निर्दयता से प्रहार किया। बोले—'वनमाली का मुँह रखने के लिये ही तो यह काम कर रहा हूँ। मित्र के कर्त्तव्य के नाते ही तुम्हारे चाल-चलन पर मुझे निगरानी रखनी पड़ती है। एक बिन जाने-पहचाने अभागे को खेतों के बीच से पकड़ कर जो कल सारा दिन उसके साथ बिताया, क्या इसका मतलब मैं नहीं समझ सकता? सिर्फ इतना ही? उस दिन आधी रात तक उसके साथ हँसी-मजाक करके भी तुम्हारा मन नहीं भरा जिससे उसी रात वह कलकत्ते वापस नहीं जा सका। इस बहाने उसे यहीं रहना पड़ा। इससे तुम्हें भले ही शर्म न

लगे, पर हमारा तो घर-बाहर सब जगह मुँह काला हो गया ! समाज में किसी के सामने सिर उठाने तक के काबिल न रहे ?'

बात यदि इतनी बड़ी मर्मान्तिक न होती तो शायद विजया अपमान और क्रोध के मारे साथ ही साथ चिल्लाकर प्रतिवाद करती पर इस आघात ने मानों उसे निर्जीव कर दिया।

रासविहारी छिपी आँखों से अपने ब्रह्मास्त्र की प्रचण्ड महिमा विजया के रक्त-विहीन चेहरे पर निरीक्षण करके अत्यन्त तृप्त होकर क्षण भर चुप रहे इसके बाद बोले—'नहीं, चुप रहने से काम नहीं चलेगा। इन सब संगीन मामलों का जवाब तो देना ही पड़ेगा।'

इतनी देर बाद विजया ने मुँह उठाकर देखा। उसके सूखे होंठ एकबार जरा काँप उठे उसके बाद धीरे-धीरे बोली—'मामला जैसा भी संगीन हो पर झूठी बात का जवाब मैं आप को क्या दे सकती हूँ ?'

रासविहारी ने तेज होकर प्रश्न किया—'तो फिर क्या तुम इसे झूठी बात कहकर उड़ाना चाहती हो ?'

विजया ने पुनः जरा मौन रहकर वैसे ही मृदु स्वर में जवाब दिया—'मैं उड़ाना कुछ भी नहीं चाहती चाचाजी। सिर्फ इतना ही आप से कहना चाहती हूँ कि यह झूठ है। और यह झूठ है इसे आप स्वयं औरों की अपेक्षा अधिक जानते हैं यह भी आपको बताना चाहती हूँ।'

रासविहारी एक बारगी ही ठिठक गये। वे पहली बात के लिये तो तैयार थे पर अन्तिम के लिये नहीं। किसी भी स्थिति में विजया उनके मुख पर उन्हें मिथ्यावादी एवं झूठी बदनामी करनेवाला कहकर उन पर अभियोग लगा सकती है यह उनकी कल्पना के परे थी। उनकी अपनी बात अब कोई मुँह में नहीं आई। सिर्फ विजया की ही बात को मशीन के पुतले की तरह दुहराने लगे—'यह झूठ है, इसे मैं ही सब से अधिक जानता हूँ !'

विजया उठ खड़ी हुई और बोली—'आप बुजुर्ग हैं। आप के साथ इस पर तर्क-वितर्क करने की मेरी इच्छा नहीं होती। दस्तावेज़ को अभी रहने दीजिये, मामले मुकदमे की जरूरत समझने पर आप को बुला भेजूँगी'—कहकर बगल के दरवाजे से अन्दर चली गई।

२४

विजया ने सबसे पहले यही सोचा था कि कल सबेरे ही जिस तरह भी हो भाग कर वह कलकत्ते चली जायगी और इस व्याध के फन्दे से अपनी रक्षा करेगी। पर उत्तेजना का पहला धक्का जब शान्त हो गया तो उसे दिखाई पड़ा कि इससे वह फन्दे में सिर्फ मजबूती से जकड़ ही नहीं जायगी बल्कि कलंक का धुआँ साथ ही साथ जाकर वहाँ के आकाश तक को कलुषित कर छोड़ेगा। उस वक्त कलकत्ते के समाज में ही वह कैसे मुँह दिखायेगी? और यहाँ भी वह घर से बाहर न निकल सकी। यद्यपि उसे निश्चित पता था कि रासविहारी ने उसे त्यागने के लिये नहीं बल्कि ग्रहण करने के अभिप्राय से ही इस बदनामी की सृष्टि की थी और नितान्त निराश न होने तक किसी भी तरह इस झूठी बदनामी का प्रचार बाहर नहीं करेंगे। फिर भी दो दिन बाद मुंशी ने जब हिसाब पर सही कराने के लिये विजया से भेंट की प्रार्थना की तो उसने बीमारी का बहाना करके नौकर के द्वारा बही-खाता ऊपर ही मँगवा लिया। आज अपने मुलाज़िम से मुलाकात करने में भी उसे शर्म महसूस होने लगी कि कहीं किसी छिद्र से यह बात उसके कानों में न जा पड़ी हो और उसकी आँखों में भी अवज्ञा और उपहास के भाव न छिपे हों।

एक वस्तु से जिस प्रकार वह डरती थी, हृदय से उसी प्रकार उसकी अभिलाषा भी करती थी। उसके पिता का पत्र लेकर नरेन्द्र स्वयं उपस्थित होगा। परन्तु पाँच-छः दिन बाद इस समस्या का समाधान हो गया

डाकिये से। डाक से चिट्ठी तो आई पर नरेन्द्र स्वयं नहीं आया। वह क्यों नहीं आया यह अनुमान करते उसे क्षण भर की भी देर न लगी। वह ठीक यही आशंका कर रही थी कि कहीं रासविहारी किसी बहाने यह बात नरेन्द्र के कानों में पहुँचाकर इस घर का रास्ता उसके लिये बन्द न कर दे! चिट्ठी हाथ में लिये विजया सोचने लगी। किन्तु इतनी आसानी से ही यदि उसका इस तरफ का रास्ता बन्द हो जाय, इस प्रकार अनायस ही वह भी यदि इस मिथ्या कलंक की गठरी उसीके सिर लादकर स्वयं डरकर भाग खड़ा हो, तो फिर इस बदनामी का बोझ लिये—चाहे वह जितना ही बड़ा झूठ क्यों न हो—वह चलेगी किस सहारे? तब तो यह झूठा बोझ ही परम सत्य की तरह उसे मिट्टी में मिला देगा!

इस प्रकार विह्वल भाव से स्थिर होकर बैठी वह क्या-क्या सोचने लगी इसका अन्त नहीं। उसके बहुत देर बाद वह उठ खड़ी हुई, और इस बार अपने स्वर्गीय पितृदेव के लिखे दोनों पत्र सिर से सटाकर फूट-फूटकर रोने लगी। बार-बार आँखें पोंछ चिट्ठियाँ पढ़ना चाहती, लेकिन बार बार आँसुओं के आवेग से दृष्टि धूमिल पड़ जाती। अन्त में बहुत यत्न के बाद जब उसका चिट्ठी-पढ़ना खत्म हुआ तब पिता की आन्तरिक अभिलाषा उससे छिपी न रही। एक समय उन्होंने जो सिर्फ उसी के निमित्त नरेन्द्र को मनुष्य बनाना चाहा था यह सत्य एक बारगी ही स्फटिक की नाईं स्वच्छ हो गया। यह बात रासविहारी को छोड़ चाहे और जिसे मालूम न हो, यह भी समझते देर न लगी।

और भी पाँच-छः दिन बीत गये। एक दिन सबेरे नींद खुलते ही विजया ने देखा कि घर में राज़-मजदूर लगे हैं। वे सारे मकान की सफेदी करने का उद्योग कर रहे हैं। कारण सोचते ही उसका सर्वांग शिथिल पड़ने के साथ आगामी पूर्णिमा की जिसमें अब सिर्फ सात दिन बाकी थे उसको याद आ गई।

दिन भर बड़े जोर से काम चलता रहा, किसी को बुलाकर पूछने की उसे हिम्मत न पड़ी कि किसके आदेश से यह सब हो रहा है और क्यों इस सम्बन्ध में उसकी सलाह नहीं ली गई।

सन्ध्या-समय आज बहुत दिन बाद विजया कन्हाईसिंह को साथ ले नदी-तट पर सैर करने निकली थी। अचानक दयाल बाबू आ पहुँचे, बोले—'मैं तुम्हें ही ढूँढ़ता फिर रहा हूँ बिटिया।'

विजया के आश्चर्यान्वित होकर कारण पूछने पर उन्होंने कहा—'अब तो देर नहीं; निमन्त्रण-पत्र छपाना होगा, तुम्हारे भाई-बन्धुओं को आदर के साथ लाने की चेष्टा की जायगी—इसीलिये उनके नाम-गाम—'

विजया ने कठोर होकर पूछा—'निमंत्रण-पत्र शायद मेरे ही नाम से छपेगा?'

यह विवाह सुख का नहीं दयाल मन-ही-मन यह जानते थे। संकुचित होकर बोले—'नहीं बिटिया, तुम्हारे नाम से क्यों छपेगा? रासविहारी बाबू ही जब वर-कन्या दोनों के अभिभावक हैं तो निमंत्रण-पत्र भी उन्हीं के नाम छपना निर्णय हुआ है।'

विजया ने कहा—'निर्णय क्या उन्होंने ही किया है?'

दयाल गर्दन हिलाकर बोले—'हाँ, उन्होंने ही तो किया है।'

विजया बोली—'तो फिर यह भी वे ही निर्णय करें। मेरे भाई-बन्धु कोई नहीं।'

दयाल से इसका कोई जवाब देते न बना। चलते-चलते ही बातें हो रही थीं। विजया अचानक पूछ बैठी—'जो चिट्ठियाँ आपने नरेन्द्र बाबू को दी थीं वह क्या आपने पढ़ी थीं?'

दयाल बोले—'नहीं बेटी, दूसरे की चिट्ठी मैं क्यों पढ़ूँगा।

नरेन्द्र के पिता जी का नाम देखकर ही मैंने समझा था कि यह चीज जब तक उनकी है तो उन्हीं के लड़के के हाथ में देना उचित

है। एक बार मन में जरूर हुआ था कि तुमसे पूछूं पर क्या कोई गलती हो गयी है बिटिया ?'

वृद्ध को लज्जित होते देख विजया स्निग्ध स्वर में बोली—'उनके पिताजी की चीज उन्हें देकर आपने ठीक ही किया। अच्छा, उन्होंने इस सम्बन्ध में आप से कुछ बताया नहीं ?'

दयाल बोले—'नहीं, कोई बात भी नहीं। पर कुछ जानना हो तो उनसे पूछकर मैं कल ही तुम्हें बता सकता हूँ।'

विजया विस्मित होकर बोली—'कल ही कैसे बता सकेंगे ?'

दयाल बोले—'शायद बता सकता हूँ। आज कल वे रोजाना हमारे यहाँ आते हैं न।'

विजया शंकित होकर बोली—'आप के घर में क्या फिर बीमार हो गई हैं ? यह तो आपने मुझसे बताया नहीं !

दयाल जरा हँसकर बोले—'नहीं, इस समय वे बहुत अच्छी हैं। नरेन्द्र की चिकित्सा और ईश्वर की दया।'—कहकर हाथ जोड़ उन्होंने ईश्वर के उद्देश से प्रणाम किया।

विजया के विस्मय की सीमा न रही। दयाल के मुख की ओर क्षण भर ताकती रहने के बाद उसने पूछा—'तो फिर उन्हें रोजाना क्यों आना पड़ता है ?'

दयाल प्रफुल्ल-मुख से कहने लगे—'जरूरत न होने पर भी जन्म-धरती का मोह क्या यों ही दूर हो जाता है बिटिया ! इसके अलावा, आज कल नरेन्द्र को काम-काज भी कम है, वहाँ इष्ट-मित्र भी कोई खास नहीं इसीलिये शाम का वक्त यहीं बिता जाते हैं। खासकर, मेरी स्त्री तो उन्हें बिल्कुल बच्चे की तरह ही प्यार करती हैं। लड़का भी प्यार करने लायक ही है। पर बातों-बातों में जब इतनी दूर आ ही गई बिटिया तो एक बार अपने इस घर में चलती क्यों नहीं ?'

'—चलिये' कहकर विजया साथ-साथ चलने लगी।

दयाल बोलने लगे—'मैंने तो ऐसा निर्मल, ऐसा स्वभाव का भला-आदमी अपनी इतनी उम्र में कभी देखा ही नहीं। नलिनी की इच्छा बी० ए० पास कर डाक्टरी पढ़ने की है। इस सम्बन्ध में उसे कितना उत्साहित करते हैं, कितनी मदद करते हैं इसकी सीमा नहीं।

विजया चौंक उठी। कलकत्ते से प्रतिदिन इतनी दूर आकर शाम का समय गुजारने का यह सन्देह ही अब तक उसके हृदय में जहर की तरह उबल रहा था। दयाल ने मुड़कर देखा फिर स्नेह सने स्वर में बोले—'तो फिर अब और जाने की जरूरत नहीं बिटिया। तुम थक गई हो।'

विजया ने कहा—'नहीं, चलिये—

उसकी गति की मृदुता लक्ष्य करके ही दयाल बाबू ने थकावट की बात उठाई थी; किन्तु उसका चेहरा देखने पर यह बात जबान पर भी नहीं ला सके।'

उस समय कदम-कदम पर विजया के पैरों के नीचे से धरती खिसकती जा रही थी, इसका अन्दाजा लगाना दयाल बाबू के लिये असंभव था। इसीलिये वे पुनः अपने मन से ही बोलने लगे—'नरेन की मदद से इसी बीच नलिनी ने बहुत सी किताबें खत्म कर डाली हैं। लिखने-पढ़ने में दोनों का ही बड़ा अनुराग है।'

बहुत देर चुपचाप चलने के बाद विजया ने जी जान से अपने को संयत करके धीरे-धीरे पूछा—'क्या आप कुछ और सन्देह नहीं करते?'

दयाल बाबू ने किसी प्रकार का विस्मय प्रगट नहीं किया। स्वाभाविक रूप में बोले—'कैसा सन्देह बिटिया?'

इस प्रश्न का जवाब विजया उसी क्षण नहीं दे सकी। उसकी छाती मानो फटने लगी। अन्त में बोली—'मेरा ख्याल है नलिनी के सम्बन्ध में उनका मनोभाव स्पष्ट रूप से जान लेना चाहिये।'

दयाल सहमत होकर बोले—'बात तो ठीक है पर इसका तो समय अभी आ नहीं रहा बेटी। बल्कि मेरा तो विचार है कि दोनों

का परिचय बरा और घनिष्ठ हुए बगैर सहसा कुछ न कहना ही ठीक है।'

विजया समझ गई कि यह प्रश्न दूसरे के मन में भी उठा है। क्षणभर मौन रहकर बोली—'पर नलिनी के लिये तो हानिकर हो सकता है। उनका चित्त स्थिर करने में शायद समय लगे पर इसी बीच नलिनी के--'

शर्म और व्यथा के मारे और बातें मुँह से नहीं निकलीं। किन्तु शायद दयाल बाबू ने समस्या की इस दिशा पर वैसा विचार नहीं किया। संदिग्ध स्वर में बोले—'बात तो सच है। पर मैंने अपनी पत्नी के मुख से जहाँ तक सुना है, उससे तो······खैर तुमसे तो बता दिया कि नरेन पर हमारा दृढ़ विश्वास है। उससे किसी का कोई नुकसान हो सकता है. वह भूल से भी किसी के प्रति कोई अन्याय कर सकता है, यह तो मैं सोच भी नहीं सकता।'

वे भले ही न सोच सकते हों, फिर भी ठीक उसी समय वह अन्याय कहाँ और कितनी दूर तक पहुँच चुका था यह सिर्फ अन्तर्यामी ही जानते थे।

दोनों जब दयाल बाबू के बैठकखाने में प्रविष्ट हुए उस वक्त सन्ध्या की छाया घनी होती जा रही थी। एक मेज के दो तरफ दो कुर्सियों पर नरेन्द्र और नलिनी बैठे थे। सामने एक खुली किताब थी। अक्षर के धुंधले हो उठने पर पढ़ना छोड़ उस समय धीरे-धीरे बात-चीत शुरू हो गई थी। नलिनी इस तरफ निगाह किये बैठी थी, उसीने विजया को पहले देखा और स्वागत किया। किन्तु विजया का मुँह जो व्यथा से मलिन पड़ गया था, सन्ध्या के धूमिल आलोक में दिखाई नहीं दिया। नरेन्द्र झटपट कुर्सी छोड़ उठ खड़ा हुआ और नमस्कार करके पूछा—'अच्छी तो हैं?'

विजया ने नमस्कार लौटाया, नहीं, प्रश्न का उत्तर भी नहीं दिया। मानो देखा ही नहीं इस भाव से उसकी तरफ पीठ फिराकर

खड़ी हो गई और नलिनी से बोली—'क्यों, आप तो फिर एक दिन भी नहीं गईं ?'

नरेन्द्र सामने आकर मुस्कुराता हुआ बोला—'और मुझे तो शायद पहचान भी नहीं पाईं ?'

विजया ने शान्त अवज्ञा के साथ जवाब दिया—'पहचानने पर भी क्या पहचानने की जरूरत है !'

नलिनी से बोली—'चलिये, आप की मामीजी के साथ बातें कर आऊँ ।'—कहकर क्षण मात्र एक ओर दृष्टिपात करके उसे एक प्रकार से ठेलती हुई ही ऊपर चली गई। नलिनी कई सीढ़ियाँ पार कर वहीं से पुकार कर बोली, पर चाय पीये बगैर भाग न जायँ नरेन्द्र बाबू !'

नरेन्द्र से इसका भी जवाब न बन पड़ा। विस्मय और अपमान से एकबारगी ही विह्वल होकर खड़ा रहा। वृद्ध दयाल उसकी इस अप्रत्याशित लज्जा में हाथ बटाने के लिये उदास हो वहीं चुपचाप खड़े रहे। किन्तु फिर भी किस तरह मानो उन्हें यही सन्देह होने लगा कि अभी विजया का यह बाहिरी व्यवहार वस्तुतः ठीक ऐसा ही नहीं—इस अकारण अपमान के भीतर जो वस्तु आँखों से ओझल रह गई है वह चाहे और कुछ भी हो उपेक्षा या अवहेला नहीं।

कुछ देर बाद चाय के लिये ऊपर से आवाज आई, पर आज दयाल का अनुरोध टालकर नरेन्द्र नीचे ही रह गया। लेकिन उसे अकेले छोड़ दयाल ऊपर नहीं जा रहे थे, यह देख उसी क्षण हँसकर बोला, 'मैं घर का आदमी हूँ, मेरी चिन्ता न करें दयाल बाबू। पर अपने मान्य अतिथि को ससम्मान रखना आवश्यक है। आप शीघ्र जायँ।'

दयाल दुखी एवं लज्जित भाव से ऊपर जाने को तैयार हुए। बोले—'तो फिर तुम जरा बैठोगे ?'

नौकर लालटेन रख गया था। नरेन्द्र खुली किताब नजदीक खींचता हुआ गर्दन हिलाकर बोला—'जी हाँ, जरूर बैठूँगा।'

करीब आध घंटे बाद फिर तीनों जने नीचे आ गये, नरेन्द्र किताब रखकर उठ खड़ा हुआ। आज उसके बैठे न रहकर चले जाने पर ही इन्हें विश्राम अनुभव होता। कारण, उसके अकेले बैठकर इन्तजार करने से ही सबों पर एक ही साथ मानो लज्जा और संकोच का चाबुक लग गया।

नलिनी सलज्ज मृदु स्वर में बोली—'आपके लिये चाय लाने को कह दिया है, आती ही होगी नरेन्द्र बाबू!'

पर विजया ने उससे किसी प्रकार की बात न की, यहाँ तक कि आँख उठा कर देखा तक नहीं और धीरे से निकल गई। कन्हाई सिंह जो दरवाजे के निकट बैठा था लट्ठ हाथ में लेकर उठ खड़ा हुआ। विजया ने बाहर आकर देखा आकाश में बादल का नाम नहीं, नवमी का चाँद ठीक सामने ही स्थिर है। उसे मालूम पड़ने लगा—पैरों के नीचे घास-पात से लेकर निकट-दूर जो कुछ दिखाई पड़ रहा है—आकाश, मैदान, अन्य गाँवों की धूमिल वनरेखा, नदी, जल—सभी इस निःशब्द चाँदनी में चमक रहे हैं। किसी के साथ किसी का संबन्ध नहीं, परिचय नहीं—मानो कोई उन्हें सोये में उनके स्वतंत्र संसार से लाकर जहाँ-तहाँ उन्हें बिखेर गया है और इस समय नींद खुलने पर वे परस्पर अपरिचित मुखों के प्रति अवाक् होकर ताक रहे हैं। चलते चलते उसकी आँखों से आँसू बहने लगे। उन्हें पोंछते-पोंछते वह बराबर कहने लगी—अब मुझसे नहीं सहा जाता; सहा नहीं जाता!

घर आते ही खबर मिली कि रासबिहारी किसी काम से शाम से ही बाहर के कमरे में इन्तजार कर रहे हैं। सुनते ही उसका मन कड़वा हो उठा और बगैर कुछ कहे ही बगल की सीढ़ी से ऊपर अपने कमरे में चली गई। पर उससे यह छिपा नहीं था कि हज़ार देर होने

पर भी यह परम सहिष्णु व्यक्ति धीरज नहीं खोता। जब वे इन्तजार में बैठे हैं तो रात चाहे जितनी भी हो जाय, भेंट किये बगैर किसी भी तरह टलेंगे नहीं।

थोड़ी देर बाद ही दरवाजे के पास खड़े हो परेश ने बता दिया कि बड़े बाबू आ रहे हैं और प्राय: साथ ही साथ उनकी चप्पल और छड़ी की आवाज एक साथ सुनाई पड़ी।

विजया ने कहा—'आइये।'

कमरे में प्रवेश करके रासविहारी कुर्सी पर बैठ कर बोले—'अभी यही इन सबों से कह रहा था कि इतने नौकरों-चाकरों के बीच किसी को यह होश नहीं रहा कि घर से दो लालटेन लेकर जायँ! दयाल को भी तो यह सोचना चाहिए था कि खेतों में सिर्फ चाँदनी पर ही निर्भर न रह कर एक लालटेन साथ देना जरूरी है। इसीलिये सोचता हूँ, हे ईश्वर इस दुनिया में अपने-पराये का खूब भेद रच रखा है!' यह कहकर एक लम्बी साँस छोड़ी पर विजया ने कुछ नहीं कहा। तब रासविहारी एक बार खांसकर, जरा इतस्तत: करके जेब से एक कागज निकालते हुए बोले—'जो करना चाहिये सब मैंने कर रखा है सिर्फ तुम्हें अपना नाम लिख देना होगा बिटिया। फिर इसे कल ही भेज देना चाहिये।'—कहकर उन्होंने कागज विजया के हाथ में रख दिया। विजया देखते ही समझ गई कि यह उसके ब्रह्म-विवाह का कानूनन रजिस्ट्री करवाने का जरूरी दस्तावेज है। छपी तथा हाथ की लिखावट शुरू से आखिर तक दो-तीन बार पढ़ कर अन्त में उसने मुँह उठाया। अधिक समय नहीं बीता, किन्तु इस थोड़े से समय के बीच ही उसके मनमें एक अद्‌भुत घटना घटित हुई। उसकी अब तक की इतनी बड़ी वेदना अकस्मात् एक प्रकार की कठोर उदासीनता एवं दारुण वितृष्णा में रूपान्तरित होकर दिखाई दी। उसे मालूम पड़ा संसार के सभी पुरुष एक ही सांचे में ढले हैं। रासविहारी, दयाल, विलास, नरेन्द्र—इनमें किसी के साथ कोई भेद नहीं सिर्फ

बुद्धि और अवस्था के अनुपात से थोड़ा-बहुत भेद बाहर से प्रतीत होता है नहीं तो अपनी सुख-सुविधा के निमित्त नीचता, कृतघ्नता, विशुद्ध निष्ठुरता को लेकर स्त्रियों के लिये सभी समान हैं। आज दयाल का व्यवहार ही उसे सबसे अधिक खटका था क्योंकि न जाने किस तरह उसे पूरा विश्वास हो गया था कि उसके हृदय की एक मात्र कामना की वस्तु को वह नहीं जानते । और इस दयाल के लिये ही उसने क्या-क्या नहीं किया! समस्त हृदय से श्रद्धा की, प्यार किया, बिल्कुल अपना समझा, पर अपनी भांजी के हित के आगे सब कुछ जान-बूझकर भी उन्होंने इस श्रद्धा और स्नेह की कोई मर्यादा नहीं रखी। उनकी आँखों के सामने ही जब दिन-प्रतिदिन एक अनात्मीय रमणी के मर्मान्तिक दुख का पथ प्रशस्त हो रहा था, उस समय कितनी दुविधा, कितनी करुणा उनके हृदय में उत्पन्न हुई थी! तो फिर रासबिहारी के साथ उनका मूलतः विभेद कहाँ और कितना है? और नरेन्द्र को बात की तो उसने शुरू से ही चिन्ता नहीं की थी, इस समय भी उसकी चिन्ता करने की कोशिश नहीं की। इस समय सिर्फ यह बात ही अपने आप वह बोलने लगी—'यदि सभी समान हैं तो फिर विलास के खिलाफ ही उसे शिकायत क्यों? वही तो सबसे अधिक निर्दोष है। उसी ने तो सबसे कम अपराध किया है! वस्तुतः उसी के तो व्यवहार और वाक्य में सामंजस्य देखा गया है। उसके जो कुछ अपराध हैं वे सिर्फ उसी के लिये।' जरा स्थिर होकर विजया अपने-आपको फिर समझाने लगी कि विलास का प्रेम सत्य और सजीव होने के कारण ही वह चुपचाप बर्दाश्त नहीं कर सकता, विरुद्ध शक्तियों को रोकने के लिये पूरी तरह हरबे-हथियार से लैस होकर खड़ा है। 'चले जाओ' कहते ही शिष्टता दिखा कर क्षुब्ध हो चला नहीं जाता। यही अगर अपराध है तो सजा देने का अधिकार चाहे और जिसे हो, उसे नहीं! और भी एक घटना याद आई, वह यह कठोर वास्तविक संसार। उस

दिशा में विचार करने पर विलास की योग्यता ही सबसे बड़ी देखी जाती है। उस अलौकिक नरेन्द्र की तुलना में उसे तो किसी भी तरह उपेक्षा का पात्र नहीं कहा जा सकता।'

किन्तु रासविहारी उसके गम्भीर, निर्वाक मुख की ओर देख अत्यन्त उत्कण्ठित हो उठे और बोले—'तो फिर बिटिया, इस कमरे में दवात-कलम है या नीचे से लाने को कह दूँ।'

विजया ने चौंककर देखा। अतीत की कुत्सित एवं कदर्य स्मृति पर उसकी चिन्ता की डोर ने एक पतला जाल बुनना शुरू कर दिया था, इस स्वार्थान्ध वृद्ध की निष्ठुर व्यग्रता ने चाकू की तरह गिर कर उसे पल मात्र में छिन्न-भिन्न करके नंगा कर दिया; और दूसरे ही क्षण विजया एक बारगी ही नितान्त निष्ठुर होकर बोली—'अच्छा, पूछती हूँ चाचाजी, आपका क्या यही मत है कि पाप चाहे जितना भी बड़ा हो, रुपये के नीचे सारा का सारा ढक जाता है ?'

रासविहारी प्रश्न का ठीक तात्पर्य न समझ सकने के कारण हतबुद्धि हो सिर्फ यह बोले—'क्यों, क्यों बेटी ?'

विजया अविचलित दृढ़ स्वर में बोली—'नहीं तो मेरे इतने बड़े पाप की उपेक्षा करके आप मुझे क्यों ग्रहण करना चाहते हैं ?'

रासविहारी लज्जा से व्याकुल हो उठे। हतबुद्धि की तरह बोले—'यह तो झूठी बात है। बड़ा से बड़ा दुश्मन भी तुम्हें ऐसा कलंक नहीं लगा सकता बिटिया !'

विजया बोली—'दुश्मन शायद न कभी लगा सके पर मैं पूछती हूँ, विलास बाबू क्या मुझे श्रद्धा की दृष्टि से देख सकेंगे ?'

रासविहारी बोले—'श्रद्धा की दृष्टि से देख नहीं सकेगा ! तुम्हें ! विलास ? अच्छा,—कहकर ऊँचे स्वर में पुकारने लगे—'विलास ! ओ विलास !'

विलास नजदीक में ही कहीं इन्तजार कर रहा था, अन्दर आ खड़ा हुआ। रासविहारी बोल पड़े—'जरा बात तो सुनो विलास। मेरी विजया

बिटिया कहती हैं क्या तुम उसे श्रद्धा की दृष्टि से देख सकोगे? बात तो सुना—'

किन्तु विलास सहसा कोई उत्तर न दे सका। मानो प्रश्न को उसने समझा ही नहीं इस भाव से देखता रहा।

विजया बोली—'उस दिन चाचाजी ने घर के नौकर-चाकरों से पता लगाकर मुझसे आकर कहा था कि बहुत रात तक एकान्त में नरेन्द्र बाबू के साथ हँसी-मजाक करके भी जब मेरा मन नहीं भरा तो अन्त में गाड़ी न पा सकने के बहाने वह रात यहीं बिताकर सबेरे चले गये थे। ऐसी स्थिति में—'

यह बात रासबिहारी की ऊँची आवाज में दब गई। वे बार बार बोलने लगे—'कभी नहीं! कभी नहीं! यह बिल्कुल असंभव है! यह घोर मिथ्या है—यह तो बिल्कुल ही—इत्यादि इत्यादि।'

विलास का मुँह काला हो उठा। उसने कहा—'नहीं, मैंने नहीं सुना।'

रासबिहारी पुनः चिल्लाने लगे—'कैसे सुनोगे विलास। यह भयानक झूठ जो है! अभी मैं दरबान ससुरे को—तुम देखना, परेश छोकड़े को कैसी सजा देता हूँ! मैं—'

विलास ने कहा—'सारी दुनिया भी इस बात की गवाही दे तो भी मैं विश्वास नहीं करता।'

विजया ने कठोर होकर प्रश्न किया—'क्यों नहीं करते? क्या मेरी जायदाद के लिये?'

रासबिहारी ने इस बात की ही डोर पकड़ कर पुनः बकना शुरू कर दिया था· लेकिन लड़के के मुँह की तरफ देखते ही अचानक वे रुक गये।

विलास की आँखें प्रदीप्त हो उठीं, किन्तु उसके कण्ठ-स्वर में लेश-मात्र भी उच्छ्वास या उग्रता प्रगट नहीं हुई। सिर्फ शान्त एवं स्थिर

स्वर में जवाब दिया—'नहीं। तुम्हारी जायदाद पर हमारा रंचमात्र भी लोभ नहीं।'

सारा कमरा निस्तब्ध था और इस नीरवता के भीतर से ही इतनी सी देर में सब के सारे व्यवहार का कुत्सित रूप प्रगट हो गया। यह मानो बाजार में खरीद-बिक्री को लेकर सौदा पटाने में दोनों ओर से कठिन मोल-भाव चल रहा था जिसमें लज्जा, संकोच, शोभा का कहीं स्थान नहीं—सिर्फ दो आदमी एक कोरे स्वार्थ को दोनों ओर से दृढ़तापूर्वक पकड़कर एक दूसरे से छीन लेने के लिये जी-जान से खींचा-तानी कर रहे थे।

रासविहारी अत्यन्त क्लेश से उपार्जन की हुई अपने बुढ़ापे की प्रशान्त गम्भीरता को तिलांजलि देकर जिस तरह एक नीच की तरह शोर-गुल, चिल्ल-पों कर रहे थे, विलास की भाषा और संयम के आगे वह त्रुटि उन्हें स्वयं भी खटकी। विजया भी अपनी नितान्त निर्लज्ज प्रगल्भता के लिये भीतर ही भीतर मरी जा रही थी। मुसीबत कितनी भी बड़ी क्यों न हो, कोई भी संभ्रान्त महिला इतनी दूर तक अपने को भूल कर अपने चरित्र पर पुरुषों के साथ इस प्रकार मर्यादाहीन वाद-वितण्डा में प्रवृत्त हो सकती है, क्षण भर के लिये मानो यह उसे एक असम्भव घटना प्रतीत हुई। मालूम पड़ा कि दाम्पत्य-जीवन की जो कुछ मधुरता, जो कुछ पवित्रता है, वह सबकी सब मानो उसके लिये एक बारगी ही उद्घारित होकर धूल में लोट रही है।

कमरे की सघन निस्तब्धता भंग करते हुए विलास ने ही फिर बात छेड़ी। बोला—'विजया, पिता जी जो भी करें, जो भी कहें, हम उन्हें समझ सकें या नहीं परन्तु यह बात हमें किसी भी तरह नहीं भूलना चाहिये कि जिन्होंने ब्रह्म के चरणों में आत्म-समर्पण कर दिया है वे कभी अन्याय नहीं कर सकते। मैं कहता हूँ तुमसे, तुम्हें छोड़ तुम्हारी जमीन-जायदाद पर हमारी रंचमात्र भी स्पर्धा नहीं।'

विजया ने अपने पीले मुख और मलिन नेत्र दोनों विलास के मुख पर क्षण भर स्थापित करके पूछा—'सच कह रहे हैं ?'

विलास आगे बढ़कर विजया का दाहिना हाथ अपने हाथ में लेता हुआ बोला,'मुझमें यदि कोई सत्य है विजया तो आज मैं तुमसे सच्ची बात ही बता रहा हूँ।'

क्षणभर इस प्रकार दोनों के खड़े रहने के बाद विजया ने आहिस्ते से अपना हाथ छुड़ा मेज के निकट आकर कलम उठा ली। क्षणभर के लिये उसके मन में शायद दुविधा हुई हो या न भी हुई हो कुछ निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता किन्तु दूसरे ही क्षण बड़े-बड़े अक्षरों में अपना नाम लिखकर कागज को रासविहारी के हाथ में लाकर देती हुई बोली—'यह लीजिये।'

रासविहारी ने दस्तावेज को समेट कर जेब में रख लिया और उठकर खड़े हो बनमाली के शोक में अनेक आँसू बहाते हुए निराकार परब्रह्म की निःसीम करुणा का गुणगान करके 'रात हो रही है' कहकर चल पड़े।

पितृदेव के चले जाने पर विलास पुनः एकबार गंभीर एव काठ की तरह कठोर होकर खड़ा हो गया, बोला—'मुझे पता है तुम मुझे प्यार नहीं करतीं। पर अन्य लोगों की तरह मैं भी अगर प्रेम को ही सर्वोपरि स्थान देता तो फिर आज मुक्त कण्ठ से कहे जाता, विजया! तुम जिसे प्यार करती हो, उसी की बनो! मुझमें वह शक्ति, वह उदारता, वह त्याग है! पिताजी से आजीवन मैंने झूठी शिक्षा नहीं पाई!'

क्षणभर स्तब्ध रहकर पुनः बोलने लगा, 'पर जिस सकाम रूपतृष्णा को ही प्रेम कहकर मनुष्य भूल करता है, वही क्या ब्राह्म-कुमार-कुमारियों के विवाह का चरम लक्ष्य है? नहीं, ऐसा कभी नहीं, ऐसा कभी हो नहीं सकता! इसका विराट् उद्देश्य है सत्य! मुक्ति! परब्रह्म के चरणों में युगल-आत्मा का एकान्त आत्म-समर्पण! मैं तुमसे कहता हूँ किसी दिन यह सत्य मैं अवश्य साबित कर दूँगा,

जब नरेन्द्र यहाँ नहीं आया करता था, उस समय की बातें एकबार याद करके देखो विजया !'

कोई बात कहने के लिये विजया ने मुँह ऊपर किया पर उसके होंठ काँप उठे, प्रबल वाष्पोच्छ्वास से उसका गला रुध गया, मुँह से कोई बात नहीं निकली। वह दोनों हाथ जोड़ नमस्कार कर, बगल के दरवाजे से बड़े वेग से भाग निकली।

२५

संशय की आग से विजया का हृदय कहाँतक पीड़ित एवं उद्‌भ्रान्त हो उठा था, यह अपने को हर तरह से समर्पित किये बगैर वह ठीक से समझ नहीं पा रही थी। आज सवेरे नींद खुलते ही उसने समझा, उसका मन बिल्कुल शान्त हो गया है क्योंकि मन में चंचलता का आभास तक ढूँढ़े नहीं मिला! बाहर की ओर देखते ही उसे प्रतीत होता, सारा आकाश मानो सावन के प्रभात की तरह भूरे बादलों के भार से पृथ्वी की ओर लपक कर उसे खाये जा रहा है। ऐसे दिन में बिछौने से उठना-न-उठना उसे एक सा मालूम पड़ा और दूसरे दिन सवेरे नींद खुलने में जरा सी देर होने पर भी क्यो उसका अन्तःकरण व्यथित एवं लज्जित हो उठता मन में होता, बहुत समय बीत गया होगा, लेकिन आज ऐसा महसूस हुआ ही नहीं। यहाँ तक कि उसके कौन से काम बिगड़ रहे हैं जो दो-एक घटे बिछौने पर पड़े रहने से नहीं चलेंगे! घर में नौकर-चाकर भरे हैं, विशाल जमीनदारी व्यवस्थित रूप में चल रही हैं, उसका सारा भविष्य जीवन यदि इस प्रकार आराम, इसी प्रकार शान्ति में कट जाय तो इससे बढ़ कर अच्छी चीज और है ही क्या! खिड़की में से उसने देखा कि पेड़ों के नीचे का सब्ज रंग भी किसी और ही रंग में बदल गया है, इसके पत्ते भी स्थिर गंभीर हो उठे हैं। झगड़ा-फसाद, वाद-विवाद, हो-हल्ला

निखिल ब्रह्माण्ड के मध्य अब कहीं नहीं है। एक रात में हो समस्त मानों एकाएक ऋषि मुनि का तपोवन बन गया है।

हृदय से चिपटे इस परम विषाद को शान्ति समझकर विजया पक्षाघात रोग से ग्रस्त रोगी की तरह शायद और बहुत देर बिछौने पर पड़ी रहती, पर परेश की माँ ने दरवाजे के निकट आकर शान्ति भंग कर दी। जो आदमी बहुत तड़के ही बिछौना छोड़ देता है, उसके लिये इतनी देर! उत्कण्ठित चित्त से पुकार-पुकार कर किवाड़ खुलवा कर ही उसने छोड़ा।

हाथ-मुँह धो, कपड़े बदल, तैयार होकर विजया नीचे उतर रही थी। उसने सुना कि रासविहारी आज स्वयं आकर मजदूरों की पीठ पर सवार हैं। सिर्फ दो दिन और बाकी रह गये हैं, इस बीच में ही सारा मकान साफ-सुथरा करके उसे एक बारगी ही नया बना देना है।

विजया ने जरा पहले ही सोचा था, पिछली रात को जिस जटिल समस्या का अन्त एवं उसका अन्तिम परिणाम निर्णय हो चुका है, किसी भी कारण किसी के द्वारा उसमें कोई उलट-फेर हो सकता है इसका उचित-अनुचित, भले-बुरे को लेकर अब फिर वह मन ही मन तर्क-वितर्क नहीं करेगी। वह मंगलमय की इच्छा से मंगल के लिये ही हुआ है इस विश्वास पर वह अब सन्देह की छाया भी नहीं पड़ने देगी। परन्तु सहसा उसे दिखाई पड़ा यह सम्भव नहीं। रासविहारी नीचे मौजूद हैं, उतरते ही आमना सामना हो जायगा, यह सोचते ही उसका सर्वांग विमुख होकर स्वयं ही सीढ़ी से वापस आ गया। बहुत देर तक बरामदे में चल फिर कर भी जब उसका समय नहीं कटा, तब अचानक उसे अपनी बचपन की सखी-सहेलियों की याद आ गई। बहुत दिनों से किसी से मिली नहीं थी, पत्र-व्यवहार बन्द था। उन सबों की याद करके कई एक पत्र लिखने के लिये वह अपने अध्ययन-गृह में प्रविष्ट हुई। मन में उसके न जाने कितनी वेदना संचित हुई थी। चिट्ठियों के द्वारा उससे छुटकारा पाने को

कोशिश में देखते ही देखते वह बिल्कुल विभोर हो गई। किस तरह समय बीता, कितने आँसू ढुलक पड़े, उसे कुछ भी ख्याल न था। इसी समय परेश की माँ दरवाजे के निकट आकर बोली—'एक का बखत हो गया बीबी रानी, खाओगी नहीं!'

घड़ी की ओर देखकर पुनः लिखने में मन लगाने जा ही रही थी कि परेश की माँ सलज्ज मृदु स्वर में बोली—'अरी मैया, यह तो डाक्टर बाबू आ रहे हैं!' यह कहकर ही झटपट वहाँ से खिसक गई। विजया चौंक उठी, मुँह फिराकर देखा, ठीक सीधे बरामदे की दूसरी तरफ से परशे के पीछे-पीछे नरेन्द्र आ रहा है।'

इससे पहले और भी कई बार वह ऊपर आया है, पर इस प्रकार बगैर खबर दिये अपनी ही मर्जी से आ सकेगा, विजया यह सोच भी नहीं सकती थी। उसका चेहरा सूखा है, बड़े-बड़े रूखे बाल यत्र-तत्र बिखरे हैं पर कमरे में कदम रखते ही जब वह बोल उठा कि—'उस दिन आपने मुझे पहचानना भी नहीं चाहा, क्यों?'—कहकर एक कुर्सी पर आसन जमा बैठा। उस समय उसके मुख से, उसके कण्ठस्वर से, उसके सर्वांग से हृदय की थकावट इस प्रकार प्रगट हुई कि विजया जवाब क्या देगी, निदारुण वेदना से वह एक बारगी ही चौंक गई। उत्कण्ठित व्याकुलता से उठ खड़ी हुई और बोली—'आपको क्या हो गया है नरेन बाबू! कोई बीमारी तो नहीं!'

नरेन्द्र गर्दन हिलाता हुआ बोला—'नहीं, चली गई। हुआ भी था मामूली बुखार, पर इतने ही में इतना कमजोर हो पड़ा हूँ कि पहले आ नहीं सका। पर उस दिन मैंने क्या अपराध किया था, आज बताना होगा?'

परेश खड़ा था विजया ने उससे कहा—'जा, अपनी माँ से जल्द कुछ जलपान लाने को कह दे परशे,।' नरेन्द्र से बोली—'शायद सबेरे से कुछ खाया नहीं?'

'—नहीं, पर उसके लिये मैं व्यग्र नहीं।'

'पर मैं व्यग्र हूँ'—कहकर विजया परेश के पीछे-पीछे स्वयं भी नीचे चली गई।

थोड़ी देर बाद जलपान की तश्तरी के ऊपर एक बट्टा गरम दूध लिये वह स्वयं उपस्थित हुई और चुपचाप अतिथि के सामने बैठ गई। खाने में व्यस्त होकर नरेन्द्र मुस्कुराता हुआ बोला—'आप भी एक अद्भुत व्यक्ति हैं। दूसरों के घर पहचानना भी नहीं चाहतीं और अपने घर इतना अपकपहचानती हैं कि यह एक आश्चर्यजनक बात मालूम से पड़ती है। उस दिन की घटना से मैंने सोचा खबर देने पर शायद भेंट भी नहीं करेंगी इसीलिये बगैर जनाये ही परेश के साथ चला आया। अब देख रहा हूँ मैंने ठीक ही किया।'

विजया कुछ बोली नहीं। नरेन्द्र स्वयं भी जरा देर मौन रहकर बोलने लगा—'इस मामूली बुखार ने ऐसा बेजान बना छोड़ा है कि मुझे खुद आश्चर्य हो रहा है। आप के साथ फिर जल्द मुलाकात होने की सम्भावना रहती तो मैं शायद आज नहीं आता। इस तरफ आने में मुझे सचमुच बड़ा कष्ट होता है।'

विजया उसी प्रकार मौन रही। शायद वह बात को अच्छी तरह समझ भी नहीं पाई। नरेन्द्र दूध का बट्टा खत्म कर उसे नीचे रखता हुआ बोला—'आप ने शायद नहीं सुना होगा कि मैंने यहाँ की नौकरी छोड़ दी है। आज मेरे इतनी जल्दी आने का यह भी एक कारण है' कहकर पाकेट से एक लाल रंग की चिट्ठी निकाल कर बोला, 'आपके विवाह का निमन्त्रण पत्र मुझे मिला है। पर आने का सौभाग्य मुझे नहीं होगा। उस दिन सबेरे ही हमारा जहाज कराची से चल पड़ेगा।'

विजया डर गई, बोली—'कराची से! आप कहाँ जा रहे हैं?'

नरेन्द्र ने कहा—'साउथ अफ्रिका'। पश्चिम में भी एक नौकरी मिल रही थी, किन्तु नौकरी जब करनी ही है तो बड़े देश में ही करनी

ठीक है। मेरे लिये जैसा पंजाब, वैसा ही केपकौलोनी। ठीक है न? शायद हम लोगों की अब फिर कभी मुलाकात नहीं होगी।

अंतिम बातें शायद विजया के कानों तक पहुँची ही नहीं। वह अत्यन्त उद्विग्न स्वर में प्रश्न पर प्रश्न करने लगी 'नलिनी क्या राजी हो गई? राजी होने पर भी क्या आप इतनी जल्द जा सकते हैं, मेरी तो समझ में ही नहीं आ रहा रहा? उनसे सब कुछ खुलकर बता दिया है क्या? और इतनी दूर के लिये उन्होंने अपनी राय दे ही कैसे दी?'

नरेन्द्र मुस्कराता हुआ बोला—'ठहरिये, ठहरिये। अभी किसी से सारी बाते बतायीं तो नही पर—'

बात खत्म कर देने का धीरज भी विजया का न रहा। वह बीच में ही बिल्कुल आग होकर बोल उठी—'यह किसी तरह नहीं हो सकता। आप ने क्या हमे बिस्तरा-बिछौना समझ रखा है कि हमारी मर्जी हो या नही, रस्सी से बाँधकर गाड़ी में चढ़ा देने से ही साथ साथ जाना पडेगा? यह किसी भी तरह नहीं हो सकता। उनकी मर्जी के खिलाफ उन्हें इतनी दूर आप नहीं ले जा सकते।'

नरेन्द्र का मुख मलिन हो गया। विह्वल हो कुछ देर अवाक् रह कर बोला, 'बात क्या है मुझे समझाकर तो कहिये? यहाँ आने से पहले ही दयाल बाबू से भेंट हुई थी उन्होंने भी सुनकर अचानक चौंककर इसी तरह की एक आपत्ति उठाई पर मैं समझ ही नहीं सका। इतने आदमियों के बीच नलिनी की इच्छा-अनिच्छा पर ही मेरा जाना-न-जाना क्यों निर्भर करता है, और वह भी किस लिये बाधा डालेगा यह धीरे धीरे एक पहेली बन गई है। बात क्या है जरा खुलकर मुझसे बताइये तो?'

विजया स्थिर दृष्टि से क्षणभर उसके मुँह की तरफ देखकर धीरे-धीरे बोली—'क्या उनसे आपने विवाह का प्रस्ताव नहीं किया?'

नरेन्द्र एकाएक मानो आकाश से गिरा। बोला—'नहीं, कभी नहीं!'

विजया के मुख पर एक रक्तिम आभा छिटक पड़ी, सारा चेहरा सुर्ख हो गया। किन्तु लहमे भर में अपने को सम्हाल कर बोली—'न

करने पर भी क्या करना उचित नहीं था ? आप का मनोभाव तो किसी से छिपा नहीं !'

नरेन्द्र बहुत देर तक भौंचक्का सा बैठा रहा फिर बोला—'यह बुराई किसने की है सिर्फ यही मैं सोच रहा हूँ। उन्होंने स्वयं तो की नहीं होगी, क्योंकि वह पहले से ही जानती थीं कि यह असंभव है। पर—'

विजया ने पूछा—'असंभव क्यों ?'

नरेन्द्र ने कहा—'रहने दीजिये ! फिर एक कारण यही है कि मैं हूँ हिन्दू और वे हैं ब्राह्मसमाजी। इसके अलावा, हमारी जात भी तो एक नहीं।'

विजया उदास होकर बोली—'आप क्या जात-पाँत मानते हैं ?'

नरेन्द्र ने कहा—'जरूर मानता हूँ। हिन्दुओं में जाति-भेद है, एक के साथ दूसरे की शादी नहीं होती। यह क्या आप भी नहीं मानती ?'

विजया बोली—मानती हूँ पर अच्छा नहीं समझती। आप पढ़े-लिखे होकर भी इसे अच्छा कैसे समझते हैं ?'

नरेन्द्र हँसने लगा और बोला—'डाक्टरों की बुद्धि एक तरह से कुछ मैली सी होती है। खासकर उनकी जो मेरी तरह दुरबीन के बीच से जीवाणुओं को देखकर ही समय गुज़ारते हैं। इसीलिये इस क्षेत्र में मुझे माफी ही क्यों नहीं दे देतीं ?'

विजया समझ गयी नरेन्द्र जाति-भेद के प्रश्न को बड़ी चतुरता से टाल गया। इसीलिये रुष्ट होकर बोली, 'अच्छा दूसरी जात की बात जाने दें। पर जहाँ जात एक ही है वहाँ भी क्या सिर्फ अन्य धर्म होने के कारण ही आप विवाह असंभव समझते हैं ? आप किस बात के हिन्दू हैं ! आप तो बहिष्कृत हैं। अपने निकट भी क्या किसी ब्राह्म-कुमारी को आप विवाह योग्य नहीं समझते ? इतना घमंड आप को है किस बात का ? और यही अगर आपका सच्चा मत है तो फिर यह बात शुरू में ही क्यों नहीं बता दी ?'

कहते-कहते उसकी आँखों में आँसू उमड़ पड़े और उन्हीं को छिपाने के लिये झटपट उसने मुँह फेर लिया किन्तु नरेन्द्र की आँखों को बिल्कुल धोका न दे सकी। वह कुछ आश्चर्य के साथ बोला—'पर आप अभी जो कह रही हैं यह तो मेरा मत नहीं।'

विजया मुँह बगैर मोड़े ही रूँधे स्वर में बोली—'जरूर यही आप का असली मत है।'

नरेन्द्र ने कहा—'नहीं। मेरी परीक्षा करने पर आपको पता चल जाता कि यह मेरा असली क्या नक़ली मत भी नहीं। इसके अलावा नलिनी की बात पर आप नाहक क्यों दुखी हो रही हैं? मुझे पता है उनका मन कहाँ बँधा है। और मैं क्यों पृथ्वी के एक छोर में भागा जा रहा हूँ यह भी वे समझ जायेंगी। इसलिये मेरे जाने से आप नाहक बेचैन न हों।'

विजया बिजली की तरह मुड़ कर खड़ी हो गई और बोली—'उनके मना न करने पर भी क्या अपनी खुशी से जहाँ चाहें आप जा सकते हैं? क्या यही आपका विचार है?'

नरेन्द्र के हृदय में ये बातें बिजली सी दमक उठीं पर साथ-ही-साथ दृष्टि भी जा पड़ी मेज पर पड़े लाल रंग के उस निमन्त्रण-पत्र पर! वह क्षणभर स्थिर रहकर आहिस्ते से बोला—'यह ठीक है कि आप की राय के बगैर भी मैं कुछ नहीं कर सकता। पर आपको तो मेरी सारी बातें मालूम ही हैं। मेरे जीवन की अभिलाषा भी आपसे छिपी नहीं। विदेश में वह अभिलाषा शायद किसी दिन पूरी भी हो सकती है पर इस देश में इतने बड़े अकर्मण्य दीन-दरिद्र के रहने-न-रहने से कुछ बनता बिगड़ता नहीं। मुझे जाने से रोकिये नहीं।'

विजया मुँह नीचा किये क्षणभर चुप रह कर धीरे-धीरे बोली—'आप दीन-दरिद्र तो हैं नहीं। आपके पास सब कुछ है। इच्छा करते ही आप सबका सब वापस ले सकते हैं।'

नरेन्द्र ने कहा—'इच्छा करते हो तो वापस नहीं ले सकता, पर आप जो देना चाह रही थीं, वह मुझे याद है और हमेशा याद रहेगा। पर देखिये, लेने का भी तो एक अधिकार होना चाहिये। वह अधिकार मेरा नहीं।'

विजया ने उसी प्रकार मुँह गड़ाये प्रत्युत्तर दिया—'जरूर अधिकार है! जायदाद मेरी नहीं, पिताजी की है नहीं तो उस दिन सारी संपत्ति पर दावा करने की बात मज़ाक के बहाने भी आप जबान पर नहीं ला सकते थे। पर आपकी जगह अगर मैं होती तो यों ही नहीं बैठी रहती। वे जो कुछ दे गये हैं सब पर जबर्दस्ती कब्जा करती, उसका एक तिल भी नहीं छोड़ती।'

नरेन्द्र ने कुछ नहीं कहा। विजया भी बगैर और कुछ कहे नतनेत्र हो चुपचाप बैठी रही। दो-मिनट इसी प्रकार नीरवता बिराजती रही, फिर में अचानक एक गंभीर दीर्घ निश्वास के शब्द से चौंककर विजया ने मुँह उठाते ही देखा कि नरेन्द्र का सारा चेहरा मानो किसी एक और ही तरह का बन गया है। दोनों की चार-आँखें होते ही वह एकाएक बोल उठा—'नलिनी ने ठीक ही समझा था विजया, पर मुझे विश्वास नहीं हुआ। मेरे जैसे एक अकर्मण्य अलौकिक व्यक्ति से भी किसी को कोई मतलब हो सकता है इसे असंभव समझकर हंसी में उड़ा दिया था। पर सचमुच यदि यह असंगत विचार तुम्हारे मन में हुआ था तो सिर्फ एकबार हुक्म क्यों नहीं किया? मेरे लिये तो ऐसा स्वप्न भी देखना पागलपन है विजया!'

आज इतने दिन बाद उसके मुखसे अपना नाम सुनकर विजया नख से शिख तक काँप उठी; वह बड़े जोर से मुँह को आँचल से दबाकर उमड़ती हुई रुलाई को रोकने लगी।

नरेन्द्र ने पीछे पैरों की आहट पाकर मुँह मोड़कर देखा—दयालबाबू कमरे में प्रवेश कर रहे हैं।

दयाल बाबू ने दरवाजे पर खड़े हो क्षणभर चुपचाप दोनों की ओर आँखें दौड़ाईं। उसके बाद धीरे-धीरे विजया के निकट जाकर उसके सोफे के एक किनारे बैठ उसके मस्तक पर दाहिना हाथ रखकर स्नेह-भरे स्वर में आवाज दी—'बेटी!'

उसने उनका आगमन अनुभव किया था और जी-जान से इस लज्जा-जनक क्रन्दन को रोकने की कोशिश कर रही थी किन्तु इस करुण स्वर में 'बेटी' इस संबोधन का परिणाम बिल्कुल विपरीत हुआ। उनके स्वर में अपने पिता का स्वर स्मरण होते ही उसके धीरज की बाँध टूट गई। वह लहमे भर में वृद्ध की दोनों जघों पर औंधी-मुह होकर पड़ गई, और उनकी गोद में मुँह छिपाकर रो पड़ी।

दयाल की आँखों से अश्रु की धारा बह चली। इस संसार में एक मात्र वे ही इस मर्मान्वित रुदन के आद्यन्त इतिहास से परिचित थे। उसके मस्तक पर धीरे-धीरे हाथ सहलाते हुये बोलने लगे—'सिर्फ मेरी गलती से ही यह भयानक अन्याय हुआ है बेटी, सिर्फ मैंने ही यह दुर्घटना घटाई है। नलिनी के साथ अब तक मेरी यही बात हो रही थी, उसे सब पता है। पर यह किसे पता था कि नरेन मन-ही-मन सिर्फ तुम्हीं को—पर मैं निर्बोध सब कुछ गलत समझकर तुम्हें उलटी खबर दे यह मुसीबत मोल ले आया! अब शायद और कोई प्रतिकार—'

दीवार-घड़ी में तीन बज गये। तीनों ही स्तब्ध हो रहे। उनकी गोद में विजया के दुर्दमनीय दुःख का आवेग क्रमशः शान्त हो रहा है अनुभव करके, दयालबाबू बहुत देर बाद आहिस्ते-आहिस्ते उसकी पीठ पर हाथ फेरते-फेरते बोले—'अब इसका क्या और कोई उपाय नहीं हो सकता बिटिया?'

विजया उसी प्रकार मुँह छिपाये टूटे स्वर में बोल उठी—'नहीं-नहीं, मौत के सिवाय मेरा कोई और उपाय नहीं।'

दयाल कहने जा रहे थे—'छिः, यह क्या बिटिया, मगर—'

विजया बड़े जोर के सिर हिला-हिलाकर बोली—'नहीं-नहीं, इसमें अब कोई अगर-मगर नहीं। मैंने वचन दिया है, जीते रहने पर उसे तोड़ नहीं सकती दयालबाबू! मर न सकने पर मैं...' कहते-कहते ही पुन: उसका गला रुँध गया। दयाल के मुँह से भी अब कोई बात न निकली। वे चुपचाप धीरे-धीरे उसके बालों पर हाथ सहलाने लगे।

परशे की माँ ने बाहर से बच्चे की मार्फत कहला भेजा, 'माँजी, तीन बज गया!'

संवाद सुनकर दयाल अत्यन्त बिकल हो उठे और नहाने-खाने के लिये बार-बार साग्रह अनुरोध करके उसका मुँह पकड़कर उसे उठाने की कोशिश करने लगे।

परशे ने फिर कहा—'तुम्हारी वजह से और कोई भी नहीं खा पा रहा है माँजी।'

तब आँखें पोंछकर वह उठ बैठी और किसी की ओर दृष्टिपात तक न करके धीरे-धीरे बाहर हो गई।

दयाल बोले—'नरेन, तुम्हारा भी तो नहाना-खाना अब तक नहीं हुआ?'

नरेन्द्र अन्यमनस्क होकर क्या-कुछ सोच रहा था। मुँह उठाकर बोला—'नहीं।'

'—तो फिर मेरे साथ घर चलो।'

'—चलिये'—कहकर बगैर और कुछ कहे उठ खड़ा हुआ, और दयाल के साथ कमरे से बाहर हो गया।

२६

उसी दिन संध्या-समय आसन्न विवाहोत्सव के उपलक्ष में कतिपय जरूरी बात-चीत के बाद रासविहारी और विलासविहारी के चले जाने पर विजया अपने अध्ययन-गृह में प्रविष्ट होते ही आश्चर्यान्वित हो गई। दयालबाबू इस प्रकार तन्मय होकर बैठे थे कि किसी के

आने की उन्हें खबर ही नहीं थी। वे कब आये, कबसे बैठे हैं, यह विजया को पता नहीं। किन्तु उनके उस तद्गत-भावको देख ध्यान भंग करके कौतूहल निवृत्त करने की उसकी इच्छा नहीं हुई। वह जैसे आई थी वैसे ही चुपचाप लौट गई। परन्तु घंटे भर बाद वापस आने पर भी जब उसने देखा कि वे एक ही भाव से बैठे हैं तो धीरे-धीरे सामने आकर खड़ी हो गई।

दयाल चौंककर बोले—'तुम्हारा ही इन्तजार कर रहा हूँ बेटी।'

विजया स्निग्ध स्वर में बोली—'तो फिर बुलाया क्यों नहीं?

दयाल बोले—'तुम लोग बातें कर रही थीं इससे नाराज नहीं किया। कल दोपहर को मेरे यहाँ तुम्हारा न्योता रहा बिटिया। न बिटिया, न, न करना। कहीं 'ना' कहकर टाल न दो, इस भय से ही तो इतनी दूर चलकर खुद आया हूँ। पर दोपहर को धूप में पैदल ही नहीं जा पाओगी सो कहे देता हूँ। मैंने पाल्की-कहार ठीक कर रखा है, वे आकर तुम्हें ठीक समय पर ले जायेंगे।'

वृद्ध की करुणापूर्ण बातों पर विजया की आँखें छलछला आईं; बोली—'एक चिट्ठी लिख भेजने पर भी मैं 'ना' नहीं कर सकती थी। क्यों नाहक आपने स्वयं आने की तकलीफ की?'

दयाल उठकर नजदीक आये, विजया का एक हाथ दबाकर बोले—'फिर याद रहे, इस बूढ़े बच्चे को बचन दे रही रही हो। न जाने पर फिर मुझे दौड़ना पड़ेगा, किसी भी तरह छोड़ूँगा नहीं।'

विजय गर्दन हिलाकर बोली—'अच्छा।'

किन्तु इस अतिशय आग्रह से वह मन-ही-मन विस्मित हुई। एक तो इससे पहले कभी उन्होंने निमंत्रण दिया नहीं, शाम के भोजन के बदले दोपहर भोजन की व्यवस्था, और वचन-पालन के लिये इस प्रकार बारम्बार साग्रह अनुरोध—इसे स्वाभाविक और सामान्य नहीं कहा जा सकता, इससे उसे सन्देह हुआ। आज दो-पहर के वक्त भी उस अकारण निमंत्रण का संकल्प उनके हृदय में नहीं था, सो

निश्चित; और इसी बीच सवारी वगैरह तक का बन्दोबस्त कर आने में उन्होंने आलस्य नहीं किया।

मनकी बेचैनी छिपाकर विजया ने जरा हंसकर पूछा—'कारण क्या है, क्या सुनने योग्य नहीं?'

दयालबाबू ने रञ्चमात्र भी इतस्ततः किये वगैर उत्तर दिया—'नहीं बिटिया, यह मैं तुमसे दो-पहर से पहले बता नहीं सकता।'

विजया ने कहा—'मत बताइये' लेकिन निमंत्रितों का ही नाम बताइये?

दयाल बोले—'तुम तो सबको पहचानोगी नहीं बेटी। वे मेरे आस पास के ही इष्ट-मित्र हैं। जिन्हें पहचानोगी, उनमें से एक का नाम है रासविहारी और दूसरे का नरेन।'

दयालबाबू के चले जाने पर विजया बहुत देर तक स्थिर भाव से बैठी मन ही मन इसका कारण पता लगाने लगी पर जितना ही सोचती, किसी एक अनिष्ट की आशंका से मन का अन्धकार बढ़ता ही गया।

किन्तु दूसरे दिन ढाई बजे तक भी जब पालकी नहीं आई और विजया तैयार होकर प्रतीक्षा करती रही, तब एक ओर जैसे विस्मय की सीमा न रही, दूसरी ओर वैसे ही जरा निश्चिन्तता अनुभव करने लगी। परेश की माँ साथ जायगी—इसी प्रकार की एक बात थी। उसने शायद अब तक दस दफा आकर कुछ खाने के लिए विजया से हठ किया और बूढ़े दयाल का माथा तो खराब नहीं हो गया, न्योता बिल्कुल भूल ही तो नहीं गये—यह पूछा भी। और आदमी भेज कर खबर लेने में भी विजया को शर्म महसूस हो रही थी क्योंकि सचमुच यदि किसी अंदरूनी कारण से निमन्त्रण देने की बात वे भूल गये हों तो उन्हें लज्जा के समुद्र में डुबोना होगा। इस अभूतपूर्व स्थिति-संकट के मध्य उसका दुविधा से जकड़ा हुआ मन क्या करे। जब कुछ

भी निश्चय नहीं कर पा रही थी, उसी समय परेश ने हाँफते-हाँफते आकर खबर दी—'पालकी आ रही है।'

विजया चली वह समय था तीसरे पहर का। रासविहारी अपने जन-मजदूर लेकर बिल्कुल व्यस्त थे, तड़फड़ पालकी के बगल में आकर मुस्कुराते हुए बोले—'दयाल को अचानक ऐसे आदमी को खिलाने की क्या आवश्यकता आ पड़ी, सो तो पता नहीं। शाम के बाद मुझे भी जाना होगा—विशेष रूप से कह गये हैं। लेकिन पालकी भेजने में रात कर देने पर मैं नहीं जा सकूँगा, यह देना बिटिया।'

दयाल के घर का द्वार आम्र-पल्लव से सजाया गया है, दोनों भाग में जलपूर्ण कलश देखकर विजया विस्मित हो गई। अन्दर कदम रखते ही दयाल बाबू गाँव के कई प्रतिष्ठित व्यक्तियों से बातें कर रहे थे। देखते ही आकर 'बेटी' कहकर हाथ पकड़ लिया।

पौढ़ियों पर चढ़ते-चढ़ते विजया रुष्टता के स्वर में बोली—'यही है आपका दो-पहरी भोजन का न्योता! भूख से मेरे प्राण निकल गये!'

दयाल बाबू स्नेह-सने स्वर में बोले—'आज तुम लोगों को खाना नहीं है बिटिया। नरेन तो निर्जीव होकर लेटा पड़ा है। आज एक दिन के लिये आखिरकार काने पुरोहित जी का हुक्म मानना ही पड़ेगा।'

दूसरे तल्ले पर सामने के हाल में विवाह का सारा आयोजन तैयार था। ये सब क्या है, ठीक से न समझकर भी विजया का अन्तःकरण काँप उठा। मुँह खोलकर पूछने तक की हिम्मत न पड़ी।'

दयाल बाबू अत्यन्त स्वाभाविक रूप से बोले, 'शाम के बाद ही लग्न है, आज तुम्हारा ब्याह है विजया! सौभाग्य से दिन-घड़ी सब कुछ मिला गया है। न मिलने पर भी आज ही

तुम्हारा ब्याह होता, किसी भी तरह टाला नहीं जाता। जाने दो सब कुछ सुन्दर ढंग से मिल गया है। इसी से काने पुरोहित जी हंसकर बोले—'मानो तुम लोगों के लिये ही पंचांग में आज के दिन की सृष्टि हुई थी।'

विजया का मुँह पीला पड़ गया। बोली, 'आप मेरा ब्याह क्या हिन्दू रीति से करायेंगे ?'

दयाल बोले—'हिन्दू-रीति से विवाह क्या विवाह नहीं होता बिटिया ! पर साम्प्रदायिकता मनुष्य को ऐसा बेवकूफ बना छोड़ती है कि कल दिन भर सोच-सोचकर भी इस मामूली सी बात का भी कोई कूल-किनारा ढूढ़े नहीं मिल रहा था। पर नलिनी ने मुझे क्षणभर में ही समझा दिया। बोली 'मामाजी उनके पिताजी उन्हें जिनके हाथ दे गये हैं, तुम भी उन्हें उन्हीं के हाथ में दो नहीं तो ब्राह्म-विवाह के बहाने यदि कुपात्र के हाथ दान करोगे तो अधर्म की सीमा न रहेगी। और मन का मिलना ही सच्चा ब्याह है नहीं तो ब्याह का मन्त्र बंगला में हो या संस्कृत में पुरोहित जी पढ़ायें अथवा आचार्यजी, इससे बनता-बिगड़ता क्या है मामाजी ! इतनी बड़ी जटिल समस्या गलकर मानो एकबारगी ही पानी हो गई। फिर मन ही मन कहा—हे ईश्वर! तुमसे कुछ छिपा नहीं ! इन दोनों का ब्याह मैं किसी भी मत से क्यों न करवाऊँ, तुम्हारे निकट अपराधी नहीं होऊँगा सो मैं निश्चय जानता हूँ। फिर भी बोला—पर एक बात जो है नलिनी ! विजया ने उन्हें बचन जो दे दिया है ! वे तो उसी पर निर्भर करके निश्चिन्त हैं। यह सत्य टूटेगा कैसे !

नलिनी ने कहा—'मामाजी, तुम्हें तो पता है, विजया के अन्तर्यामी कभी राजी नहीं। उनकी अपेक्षा क्या विजया का बोलना ही बड़ा हो गया ! उसके हृदय के सत्य को उसके मुँह की बात से ही बड़ा माना जायगा ?'

'—मैं तो आश्चर्य चकित हो गया, बोला—'तू ने यह सब सीखा कहाँ से बिटिया ?'

नलिनी बोली—'मैंने नरेन बाबू से ही सीखा है। वे बार बार कहते हैं, सत्य का स्थान हृदय में है मुख में नहीं। सिर्फ मुह से निकलने के कारण ही कोई वस्तु कभी सत्य नहीं हो उठती। फिर भी उसी को जो कोई सबसे आगे, सबसे ऊपर रखना चाहते हैं; सत्य से प्रेम होने के कारण नहीं, बल्कि सत्य भाषण के दम्भ से प्रेम होने के कारण वे ऐसा करते हैं।'

ज़रा चुप रहकर फिर बोले—'तुम नरेन को नहीं जानतीं बेटी। वह तुम्हें कितना प्यार करता है शायद यह भी ठीक से नहीं जानतीं। वह ऐसा लड़का है कि असत्य का बोझ तुम्हारे सिर पर रखकर तुम्हें ग्रहण करने को किसी भी तरह राजी नहीं होता। एक बार शुरू से आखिर तक उसके व्यवहार को याद करके देख लो विजया।'

विजया कुछ भी न बोली। चुपचाप सिर झुकाये कठपुतली की तरह खड़ी रही।

नलिनी अन्दर काम में मशगूल थी। खबर पाकर विजया से लिपट गई। काम में बोली—'तुम्हें सजाने का भार नरेन्द्र बाबू ने आज मुझे दिया है, चलो'—कहकर उसे एक प्रकार से जबर्दस्ती खींचती हुई ले गई।

दो घंटे बाद फूल और चन्दन से सजाकर नलिनी उसे बधू के आसन पर बिठा ज्यों ही सामने की खिड़की खोलती है कि उसके लज्जा-ललित मुख पर दक्षिण पवन एवं आकाश की ज्योत्स्ना मानो एक ही समय उसके स्वर्गीय माता-पिता के आशीर्वाद की तरह आ पड़े।

जो कन्या दान करने को बैठीं, सुनने में आया कि वे किसी एक दूर के रिश्ते से विजया की बुआ होती हैं। एक-चक्षु पुरोहित जी ने मन्त्र

पढ़ाते समय दावा किया कि दो-तीन पीढ़ी पहले वे ही थे जमीनदार-घर के कुल-पुरोहित।

विवाह-कार्य सम्पन्न हो गया है, वर-वधू को उठाने का आयोजन हो रहा है, इसी समय रासविहारी विवाह-मण्डप में आकर उपस्थित हुए। दयाल उठ खड़े हुए, ससम्मान स्वागत करके हाथ जोड़कर बोले—'आओ भैया, आओ। शुभ-कर्म निर्विघ्न सम्पन्न हो गया है। आज के दिन अब मन में किसी प्रकार की ग्लानि मत रखो भैया। इन्हें तुम आशीर्वाद दो।'

रासविहारी क्षण भर हक्के-बक्के से खड़े रहकर स्वाभाविक स्वर में बोले—'वनमाली की लड़की का ब्याह आखिर हिन्दू-रीति से ही कराया। दयाल बाबू मुझे जरा खबर दे देने से तो इसकी जरूरत पड़ती नहीं।'

दयाल जरा हतबुद्धि से होकर बोले—'सभी ब्याह तो आखिर एक ही हैं भैया!'

रासविहारी कठोर स्वर से बोले—'नहीं! लेकिन क्या वनमाली की लड़की ने अपने बाप का गाँव से आजीवन-निर्वासन-कष्ट भी एक बार सोचकर देखने की जरूरत महसूस न की!

नलिनी पास ही खड़ी थी, बोली—'उनकी लड़की ने अपने स्वर्गीय पिता के सत्य आदेश का ही पालन किया है। रीति-रिवाज की बात सोचने की फुरसत मिली नहीं। आप स्वयं भी तो वनमाली बाबू की वास्तविक इच्छा को जानते हैं। उसमें तो कोई त्रुटि नहीं रही।'

रासविहारी इस मुँह-फट लड़की की ओर एक क्रूर दृष्टि निक्षेप करके उन्हें बोले—हूँ।'—वापिस जाने को उद्यत देख नालनी आव-भगत के स्वर में बोली—वाह, आप ब्याह-शादी के घर से क्या यों ही

चले जायेंगे! सो तो होगा नहीं, आपको खाकर जाना होगा। मैंने मामाजी से कहकर कितनी तकलीफ से आपको न्योता देकर बुलाया है!'

रासविहारी कुछ बोले नहीं, सिर्फ एक और अग्नि-दृष्टि उसकी ओर निक्षेप करके धीरे-धीरे बाहर हो गये।